प्रारंभिक शिक्षा में पत्रोपाधि (डी.एल.एड.)

Diploma in Elementary Education (D.El.Ed.)

सामाजिक विज्ञान शिक्षण

द्वितीय वर्ष

(प्रायोगिक संस्करण)

प्रकाशन वर्ष–2018

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्,

छत्तीसगढ़, रायपुर

प्रकाशन वर्ष–2018

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ, रायपुर

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

सुधीर कुमार अग्रवाल (भा.व.से.)

संचालक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

पाठ्य सामग्री समन्वयक

डेकेश्वर प्रसाद वर्मा

हेमन्त कुमार साव

विषय संयोजक

ख्रीस्टीना बखला

पाठ्य सामग्री संकलन एवं लेखन

ख्रीस्टीना बखला, एस. के. वर्मा, के. एन. पाण्डेय,
नेहरूलाल प्रधान, सूर्यकांत बैरागी

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् रायपुर उन सभी लेखकों/प्रकाशकों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है जिनकी रचनाएँ/आलेख इस पुस्तक में समाहित है।

प्राक्कथन

विद्यालय में अध्ययनरत् बच्चे भविष्य में राष्ट्र का स्वरूप व दिशा निर्धारण करेंगे। शिक्षक बच्चों को कुम्हार की भाँति गढ़ता है और वांछित स्वरूप प्रदान करता है। इस गुरूतर दायित्व के निर्वहन के लिए शिक्षकों को बेहतर तरीके से तैयार करना होगा।

''शिक्षा बिना बोझ के'' यशपाल समिति की रिपोर्ट (1993) ने माना है कि शिक्षकों की तैयारी के अपर्याप्त अवसर से स्कूल में अध्ययन–अध्यापन की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इन कार्यक्रमों की विषयवस्तु इस प्रकार पुर्ननिर्धारित की जानी चाहिए कि स्कूली शिक्षा की बदलती आवश्यकताओं के संदर्भ में उसकी प्रासंगिकता बनी रहे। इन कार्यक्रमों में प्रशिक्षुओं में स्व–शिक्षण और स्वतंत्र चिंतन की क्षमता के विकास पर जोर होना चाहिए।

कोठारी आयोग (64–66) से ही यह बात की जाने लगी थी कि शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए शिक्षकों को बतौर पेशेवर तैयार करना अत्यंत जरूरी है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा–2005 ने भी शिक्षकों की बदलती भूमिका को रेखांकित किया है। आज एक शिक्षक के लिए जरूरी है कि वह बच्चों को जाने, समझे, कक्षा में उनके व्यवहार को समझे, उनके सीखने के लिए उपयुक्त माहौल तैयार करे, उनके लिए उपयुक्त सामग्री व गतिविधियों का चुनाव करे, बच्चे की जिज्ञासा को बनाए रखे, उन्हें अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करे व उनके अनुभवों का सम्मान करे।

तात्पर्य यह कि आज की जटिल परिस्थितियों में शिक्षकों की भूमिका कहीं अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण व महत्वपूर्ण हो गई है। इसी परिप्रेक्ष्य में शिक्षक–शिक्षा को और कारगर बनाने की आवश्यकता है। शिक्षक–शिक्षा में आमूल–चूल बदलाव की आवश्यकता बताते हुए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा–2005 में शिक्षकों की भूमिका के संबंध में कहा गया है कि सीखने–सिखाने की परिस्थितियों में उत्साहवर्धक सहयोगी तथा सीखने को सहज बनाने वाले बनें जो अपने विद्यार्थियों को उनकी प्रतिभाओं की खोज में, उनकी शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमताओं को पूर्णता तक जानने में, उनमें अपेक्षित सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों व चरित्र के विकास में तथा जिम्मेदार नागरिकों की भूमिका निभाने में समर्थ बनाए।

प्रश्न यह है कि शिक्षक को तैयार कैसे किया जाए? बेहतर होगा कि विद्यालय में आने के पूर्व ही उसकी बेहतर तैयारी हो, उसे विद्यालय के अनुभव दिए जाएँ। इसके लिए शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम व विषयवस्तु को फिर से देखने की जरूरत है। इसी परिप्रेक्ष्य में डी.एल.एड. के पाठ्यक्रम में बदलाव किया गया है।

पाठ्यसामग्री का लक्ष्य शिक्षण विधि से हटकर शिक्षा की समझ, विषयों की समझ, बच्चों के सीखने के तरीके की समझ, समाज व शिक्षा का संबंध जैसे पहलुओं पर केन्द्रित है। पाठयक्रम में शिक्षण के तरीकों पर जोर देने के स्थान पर विषय की समझ को महत्व दिया गया है। साथ ही शिक्षा के दार्शनिक पहलू को समझने, पाठ्यचर्या के आधारों को पहचानने और बच्चों की पृष्ठभूमि में विविधता व उनके सीखने के तरीकों को समझने की शुरुआत की गई है।

चयनित पाठ्यसामग्री में कुछ लेखक/प्रकाशकों की पाठ्य सामग्री प्रशिक्षार्थियों के हित को ध्यान में रखकर ज्यों की त्यों ली गई है। कहीं–कहीं स्वरूप में परिवर्तन भी किया गया है, कुछ सामग्री अंग्रेजी की पुस्तकों से लेकर अनुदित की गई है। हमारा प्रयास यह है कि प्रबुद्ध लेखकों की लेखनी का लाभ हमारे भावी शिक्षकों को मिल सके। इग्नू और एन.सी.ई.आर.टी. सहित जिन भी लेखकों/प्रकाशकों की पाठ्यसामग्री किसी भी रूप में उपयोग की गई है, हम उनके हृदय से आभारी हैं। हम विद्या भवन सोसायटी उदयपुर, दिगंतर जयपुर, एकलव्य भोपाल, अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन बैंगलुरू, आई.सी.आई.सी.आई. फाउण्डेशन पुणे, आई.आई.टी. कानपुर, छत्तीसगढ़ शिक्षा संदर्भ केन्द्र रायपुर के आभारी हैं जिनकी टीम ने एस.सी.ई.आर.टी. और डाइट के संकाय सदस्यों के साथ मिलकर पठन–सामग्री को वर्तमान स्वरूप प्रदान किया।

अंत में पाठ्यसामग्री तैयार करने में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े सहयोगियों का हम पुनः आभार व्यक्त करते हैं। पाठ्यक्रम तैयार करने व पाठ्य सामग्री के संकलन व लेखन कार्य से जुड़े लेखन समूह सदस्यों को भी हम धन्यवाद देना चाहेंगे जिनके परिश्रम से पाठ्य सामग्री को यह स्वरूप दिया जा सका। पाठ्य–सामग्री के संबंध में शिक्षक –प्रशिक्षकों, प्रशिक्षार्थियों के साथ–साथ अन्य प्रबुद्धजनों, शिक्षाविदों के भी सुझावों व आलोचनाओं की हमें अधीरता से प्रतीक्षा रहेगी जिससे भविष्य में इसे और बेहतर स्वरूप दिया जा सके।

धन्यवाद।

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छत्तीसगढ़,रायपुर

विषय–सूची

इकाई	विवरण	पेज न.
इकाई–I	**सामाजिक विज्ञान की प्रकृति –** ➢सामाजिक विज्ञान–विकास की संकल्पना (विकास का क्रम–पर्यावरण, सामाजिक अध्ययन, सामाजिक विज्ञान) ➢परिवार एवं समाज के प्रति बच्चे की समझ ➢समाज की तात्कालिक स्थिति ➢सामाजिक विज्ञान के घटक–संस्कृति	**01-17**
इकाई–II	**विद्यालय पाठ्यचर्या में सामाजिक विज्ञान –** ➢औपनिवेशिक शक्ति – राष्ट्रवादी विकल्प ➢स्वतन्त्रता पश्चात् सामाजिक अध्ययन की पाठ्यचर्या ➢सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या के सम्बन्ध में तात्कालिक राष्ट्रीय सोच, सोशल मीडिया और फेक न्यूज 1. संचार माध्यमों को समझना 2. विज्ञापनों को समझना	**18-35**
इकाई–III	**इतिहास शिक्षण और इतिहास की समझ –** ➢प्रारंभिक स्तर पर इतिहास की समझ ➢इतिहास अध्यापन की विधियाँ एवं महत्व	**36-56**
इकाई–IV	**प्रारंभिक स्तर पर भूगोल शिक्षण और भूगोल की समझ –** ➢ प्रारंभिक स्तर पर भूगोल की समझ ➢ भूगोल अध्यापन की विधियाँ एवं महत्व	**57-73**

इकाई–V	**राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र के एकीकृत विषय के रूप में सामाजिक एवं राजनीतिक जीवनँ –**	**74-77**
	➢प्रारंभिक स्तर पर राजनीति विज्ञान एवं अर्थशास्त्र की समझ	
	➢राजनीति विज्ञान एवं अर्थशास्त्र अध्यापन की विधियाँ एवं महत्व	
इकाई–VI	**अधिगमकर्ता की प्रकृति और स्थानीय संदर्भ की समझ –**	**78-105**
	➢अधिगमकर्ता की प्रकृति और स्थानीय संदर्भ की समझ बच्चों को संकल्पना की समझ	
	➢सामाजिक विज्ञान के ज्ञान की संरचना और कक्षा–कक्ष अन्र्तः क्रिया	
इकाई–VII	**सामाजिक विज्ञान शिक्षण रणनीतियाँ –**	**106-121**
	1. प्रजातात्रिक व्यूह रचना – विचार विमर्श या विवेचन, अन्वेषण, योजना, मस्तिष्क विप्लव, पात्र अभिनय, स्वतंत्र अध्ययन, संवेदनशील प्रशिक्षण, समाजीकृत अभिव्यक्ति	
इकाई–VIII	**सामाजिक विज्ञान में अधिगम संसाधन –**	**122-142**
	➢सामाजिक विज्ञान में	
	➢अधिगम संसाधनों के प्रकार	
	➢अधिगम, संसाधनों का प्रबंधन	
	➢विद्यालय प्रबंधन, कक्षा प्रबंधन,	
इकाई–IX	**सामाजिक विज्ञान में मूल्यांकन –**	**143-147**
	➢मूल्यांकन किसका, क्यों और कैसे? मूल्यांकन का आधार,	

इकाई – 1

सामाजिक विज्ञान की प्रकृति

सामाजिक विज्ञान विकास की संकल्पना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और मनुष्य का समाज से घनिष्ठ एवं अनिवार्य सम्बन्ध होता है। इस समाज में ही मनुष्य का जन्म, विकास एवं अभिवृद्धि होती है अर्थात् मनुष्य का जन्म और उन्नति समाज में रहकर एवं समाज के सहयोग से होती है और समाज की उन्नति भी मनुष्य के सहयोग के बिना असम्भव है। इस प्रकार मनुष्य और समाज में गहरा सम्बनध होता है। सम्बन्ध की इस गहराई एवं अनिवार्यता के कारण ही मनुष्य को सामाजिक प्राणी की संज्ञा दी जाती है। मनुष्य और समाज में कौन सर्वोपरि है? इस विषय पर अनेक वाद–विवाद होने के पश्चात् अधिकांश विद्वानों ने इस बात का समर्थन किया कि दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं अर्थात् 'एक सिक्के के दो पहलू' की भाँति हैं तथा एक–दूसरे के अभिन्न अंग हैं। मानव विकास के लिए समाज अनेक समस्याओं को उत्पन्न करता है और मानव उन समस्याओं से प्रेरित या प्रभावित होकर समाज में व्याप्त रूढ़ियों को समाप्त करने का प्रयास करता है तथा समाज की उन्नति एवं विकास के लिए नवीन दिशाओं का निर्धारण करने का प्रयास करता है। इस प्रकार मानव और समाज में इस प्रकार का आदान–प्रदान का क्रम चलता रहता है तथा यह क्रम आदि काल, जबसे इस सृष्टि में मानव का उद्भव एवं विकास हुआ था तभी से चला आ रहा है। आधुनिक सभ्यता, संस्कृति, विज्ञान, प्रौद्योगिकी (टैक्नोलॉजी) का विकास वस्तुतः इसी क्रम का परिणाम है। समाज में व्यक्ति को विकास की ओर अग्रसर करने का प्रमुख साधन विद्यालय (शैक्षिक संस्थान) है। शैक्षिक संस्थान (विद्यालय) एक ऐसी समाजिक संस्था है, जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज में व्याप्त कठिनाइयों एवं चुनौतियों का ज्ञान प्राप्त कर उनका सामना करता है। शैक्षिक संस्थान (विद्यालय) के माध्यम से ही उसे अपने आपको सामाजिक वातावरण में समायोजित करने की शिक्षा प्राप्त होती है और सामाजिक कठिनाइयों, चुनौतियों एवं समस्याओं का समाधान करने की क्षमता एवं प्रेरणा प्राप्त होती है। अतः कह सकते हैं कि व्यक्ति के सामाजीकरण का महत्वपूर्ण साधन शैक्षिक संस्थान (विद्यालय) है।

शैक्षिक संस्थनों में भाषा विज्ञान और सामाजिक विज्ञान विषयों की शिक्षा दी जाती है। इनमें सामाजिक विज्ञान एक ऐसा समूह है जिसकी विषय सामग्री मुख्यतः इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र,समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र से ली गई है। समाजशास्त्र की विषयवस्तु इन सभी विषयों के साथ अन्तर्संबंधित रूप में दिखाई देती हैं। उच्च प्राथमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान विषय का प्रमुख उद्देश्य अपने आस–पास में होने वाली विभिन्न घटनाओं को विस्तार से समझना है। अपेक्षित है कि इस विषय के अन्तर्गत बच्चों को विभिन्न क्षेत्रों और संस्कृतियों में रहने वाले लोगों और उनकी सामाजिक रीतियों से परिचित कराया जाए। सामाजिक विज्ञान की एक महत्वपूर्ण भूमिका बच्चों में करूणा, समानुभूति, विश्वास, शांति, सहयोग, सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण जैसे अन्य मानवीय मूल्यों के प्रति संवेदना जगाना है।शैक्षिक संस्थानों की शिक्षा के साथ–साथ यह अपने–अपने परिवार अपने सामाजिक वातावरण के विभिन्न भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक कारकों के साथ अन्तःक्रिया द्वारा विकसित होता है।सामाजिक विज्ञान विषय के माध्यम से बच्चों को विकास की गतिशीलता से परिचित कराना आवश्यक है, ताकि उनमें अन्य विषयों से उनके जुड़ाव को स्वतंत्र रूप से समझने की क्षमता, पर्याप्त जागरूकता और आवश्यक कौशलों का विकास हो सके।

सामाजिक विज्ञान का विकास क्रमः–राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुरूप सामाजिक विज्ञान का विकास क्रम निम्नानुसार है :–

पर्यावरण अध्ययन

भारत में शिक्षा की राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुरूप समय–समय पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम में बदलाव होते आए हैं। सामाजिक विज्ञान विषय का स्वरूप प्रारंभ से प्राकृतिक विज्ञान के रूप में रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शिक्षा और पर्यावरण पर अधिक बल दिया गया।वातावरण के प्रति चेतना जागृत करने की आवश्यकता महसूस की गई।बालक के जन्म से लेकर समाज के सभी आयु वर्गों के लिए इसकी आवश्यकता है अतः विद्यालय और महाविद्यालयों में वातावरणीय चेतना के प्रति जागृति होना चाहिए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप 2005 के अनुसार प्राथमिक स्तरों पर प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण को गणित और भाषा के अंतरंग भाग की तरह समझाए जाने की बात की गई है।

पर्यावरण अध्ययन का उद्देश्य

1. बच्चे भौतिक,जैविक,सामाजिक और सांस्कृतिक रेखाकनों के माध्यम से वातावरण को समझ सकें।
2. जेंडर संवेदनशीलता हो।
3. सामाजिक सहभागिता बढ़े।
4. विचार विमर्श की क्षमता विकसित हो।
5. प्रकृति के संरक्षण व संवर्धन और उसे क्षरण से बचाने के भाव जागृत हों।
6. गरीबी, बालश्रम, अशिक्षा,जाति और वर्ग समानता के प्रति संवेदनशीलता के भाव जागृत हो।
7. पाठ्यक्रम बच्चों के प्रतिदिन के अनुभवों और उनके संसार को प्रतिबिंबित करते हों।

सामाजिक अध्ययन

देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक नेताओं, विद्वानों, शिक्षाशास्त्रियों एवं दार्शनिकों ने एक ऐसे समाज के निर्माण की योजना तैयार की जिसमें हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं की सुरक्षा के साथ–साथ प्रत्येक व्यक्ति में आधुनिक तकनीकी युग की चुनौतियों एवं आवश्यकंताओं के अनुरूप समाज को परिवर्तित एवं विकसित करने की क्षमता एवं योग्यता उत्पन्न हो सके। इस प्रकार की योजना को साकार करने का दायित्व शैक्षिक संस्थाओं पर आना स्वाभाविक था, क्योंकि किसी भी राष्ट्र और समाज के भविष्य का निर्माण शैक्षिक संस्थाओं में ही होता है।

देश की राष्ट्रीयता के प्रति निष्ठावान बनाने के लिए, सांस्कृतिक परम्पराओं को सुरक्षित रखना आवश्यक था। देश को एक लोकतन्त्र राष्ट्र बनाने के लिए, देश के प्रत्येक व्यक्ति में लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण तथ उत्तम नागरिकता के गुणों का विकास करना आवश्यक था। देश की विभिन्नता को एकता के सूत्र में बांधने हेतु इसकी एकता एवं अखण्डता को सुरक्षित रखने के लिए सामाजिक एवं धार्मिक विशेषताओं को पहचानना एवं प्रसारित करना आवश्यक था। समाज के स्तर को ऊँचा उठाने हेतु प्रत्येक वर्ग के जीवन स्तर को उच्च करने तथा समाज एवं प्रत्येक वर्ग को धार्मिक विकास की ओर अग्रसर करने के लिए नये–नये संसाधनों एवं साधनों को समझना आवश्यक था। इन सभी जरूरतों एवं आवश्कताओं को पूरा करने के लिए विद्यालय स्तर (स्कूली छात्रों) पर एक ऐसे विषय की आवश्यकता को अनुभव किया गया जो छात्रों को मानवीय विषयों का ज्ञान कराकर उन्हें समाज उपयोगी नागरिक बना सके और तब ऐसे विषय क विकास किया गया जिसे 'सामाजिक अध्ययन' कहते हैं।

सामाजिक अध्ययन का महत्व

1. सामाजिक अध्ययन छात्रों में स्वस्थ्य दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक होता है।
2. सामाजिक अध्ययन छात्रों में सहयोगात्मक भावना का विकास करता है।
3. सामाजिक अध्ययन अनेक विषयों का केवल मिश्रण नहीं है अपितु यह विषयों का एकीकृत (समन्वित) रूप है।
4. सामाजिक अध्ययन समाज की प्रगति के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।
5. सामाजिक अध्ययन छात्रों के सामाजिक जीवन को उन्नत, सफल तथा समृद्ध बनाने में उपयोगी है।
6. छात्रों में पूर्व द्वेषों एवं पूर्वाग्रहों को दूर करके व्यापक दृष्टिकोण को विकसित करने में सहायक होता है।
7. सामाजिक अध्ययन राष्ट्र की विरासत एवं संस्कृति के लिए प्रेम तथा सम्मान एवं श्रद्धा जागृत करता है।
8. सामाजिक अध्ययन छात्रों को मानवीय सम्बन्धों का ज्ञान प्रदान करता है।
9. सामाजिक अध्ययन छात्रों में विभिन्न आदतों एवं कुशलताओं का विकास करता है।
10. सामाजिक अध्ययन द्वारा छात्रों की मानसिक शक्तियों का विकास किया जाता है।
11. सामाजिक अध्ययन का महत्व मानव की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान तैयार करने में है।
12. सामाजिक अध्ययन मानव को उसके वातावरण में व्यवस्थित होने के लिए समर्थ बनाता है।
13. सामाजिक अध्ययन छात्रों में आलोचनात्मक चिन्तन का विकास करता है।
14. सामाजिक अध्ययन के द्वारा छात्रों का सामाजीकरण एवं आधुनिकीकरण होता है।
15. सामाजिक अध्ययन के द्वारा छात्रों में अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास होता है।
16. सामाजिक अध्ययन छात्रों में अपने साथियों के लिए सहिष्णुता, सहानुभूति तथा प्रेम की भावना विकसित करता है।

सामाजिक विज्ञान का अर्थ

मानव के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित सभी विषय सामाजिक विज्ञानों की श्रेणी में आते हैं जैसे भूगोल, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र, इतिहास आदि। इन विषयों के महत्व एवं उपयोगिता को ध्यान में रखकर इनके अध्ययन को शिक्षा के विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। इन विषयों को उच्च स्तर पर पृथक्–पृथक रूप में पढ़ाया जाता है और साथ ही साथ इनमें अनुसन्धान कार्य भी किये जाते हैं। उच्च स्तर पर इनका अध्ययन– अध्यापन एवं शोधकार्य वैज्ञानिक विधि से किया जाता है। इन विषयों की पाठ्य–सामग्री एक–दूसरे से अलग होने के बावजूद ये सभी विषय मानव के सामाजिक जीवन का गहनता एवं स्पष्टता से अध्ययन करते हैं। इस सम्बन्ध में जी.डी. मिकले महोदय ने स्पष्ट किया है कि सामाजिक विज्ञान शब्द का प्रयोग ऐसे किसी अध्ययन के लिए स्वीकार किया जाता है जो मानव और समाज से

सम्बन्धित होता है। लेकिन विशिष्ट रूप से यह विषय मानव के जटिल सम्बन्धों के अध्ययन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली वैज्ञानिक विधियों के लिए काम में लिया जाता है जो व्यक्तियों को समाज में एक साथ मिलकर रहने एवं उनके परस्पर मानवीय सम्बन्धों के विकास में सहयोग प्रदान करता है।

समाज में मानव का जीवन उसकी विभिन्न क्रियाओं के आधार पर विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के लिए विषयवस्तु की उत्पत्ति एवं विकास हुआ है। सामाजिक विज्ञानों की विषयवस्तु का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, इनकी परिसीमा मे मानव का सम्पूर्ण इतिहास प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक सीमित रहता है। वर्तमान में भी अनेक विद्वान यह मानते हैं कि सामाजिक के साथ विज्ञान जोड़ा जाए, लेकिन यह उनका भ्रम है। क्योंकि विज्ञान का किसी अध्ययन की विषयवस्तु पर एकाधिकार नहीं है। विज्ञान शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि किसी भी तथ्य के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विधि, प्रविधि द्वारा प्राप्त ज्ञान के क्रमबद्ध संग्रह को विज्ञान कहा जाता है। अतः इस प्रकार स्पष्ट है कि विज्ञान का सम्बन्ध क्रमबद्धता एवं वैज्ञानिक प्रविधि या पद्धति से है।

सामाजिक विज्ञान का शाब्दिक अर्थ है – समाज का विज्ञान। सामाजिक विज्ञान अंग्रेजी भाषा के शब्द Social Science का हिन्दी रूपान्तर है जो दो शब्दों Social और Science से मिलकर बना है। सोशल का अर्थ है– मानव का उसके सामाजिक परिवेश में अध्ययन करना और साइंस का अर्थ है – मानव का उसके परिवेश में क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन करना। इस प्रकार सामाजिक विज्ञान से अभिप्राय उस विज्ञान से है जिसमें मानवीय क्रियाओं और व्यवहारों का उनके सामाजिक परिवेश में क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है।

सामाजिक विज्ञान की प्रकृति

सामाजिक विज्ञान की प्रकृति को निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. सामाजिक विज्ञान एक कला है (Social Science is an Art) – सामाजिक विज्ञान को कुछ विद्वान कला मानते हैं। उनका मानना है कि सामाजिक विज्ञान में भी सामाजिक अध्ययन की भाँति उद्देश्यों का निर्धारण होता है, इसके नियम एवं साधन निश्चित किए जाते हैं और व्यावहारिकता का ज्ञान प्रदान किया जाता है। इस आधार पर सामाजिक विज्ञान मानव का सभी दृष्टिकोणों से अध्ययन करता है और सामाजिक विज्ञान जिन सामाजिक विज्ञानों (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र एवं नागरिक शास्त्र) से विषय–सामग्री ग्रहण करता है उनका सम्बन्ध भी मानवीय व्यवहार, मानवीय सम्बन्धों, मानवीय संस्थाओं एवं मानवीय वातावरण से होता है। अतः इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सामाजिक विज्ञान एक कला है।

2. सामाजिक विज्ञान एक विज्ञान है (Social Science is a Science) – सामाजिक विज्ञान को कुछ विद्वान विज्ञान मानते हैं क्योंकि सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत विविध घटनाओं, शासन सत्ता से सम्बन्धित तथ्यों, ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं, भौगोलिक तथ्यों, प्राकृतिक घटनाओं जैसे–भूकम्प ज्वालामुखी, पृथ्वी की आन्तरिक एवं बाह्य शक्तियों आदि का अध्ययन एवं संकलन वैज्ञानिक प्रविधि से किया जाता है। इसके साथ ही राजनैतिक समस्याएँ, क्राँतियाँ आदि से सम्बन्धित तथ्यों, आर्थिक समस्याओं–बेरोजगारी, निर्धनता, भुखमरी, मांगपूर्ति, उत्पत्ति ह्रास नियम आदि आर्थिक नियमों से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन किया जाता है, इनका वर्गीकरण किया जाता है तथा कारण एवं परिणाम के आधार पर सामान्यीकरण किया जाता है। तत्पश्चात् भविष्य हेतु भविष्यवाणी की जाती है परन्तु यह भविष्यवाणी भौतिक विज्ञान की भाँति निश्चित होती है फिर भी सामाजिक विज्ञान को एक विज्ञान माना जाता है।

3. सामाजिक विज्ञान कला एवं विज्ञान दोनों है (Social Science is both art and science) – सामाजिक विज्ञान मुख्यतः मानव का अध्ययन करता है जो विश्व के विभिन्न भागों में निवासित व्यक्तियों के जीवन और संस्कृति से सम्बन्ध जोड़ता है एवं ऐसा ज्ञान, अनुभव और सोच प्रदान करता है जिसके चारों ओर सभी विषयों

को समन्वित किया जाता है। इसी आधार पर अधिकांश विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि सामाजिक विज्ञान, कला और विज्ञान दोनों है। सामाजिक विज्ञान में तथ्यों का विश्लेषण एवं संश्लेषण किया जाता है तथा कार्य करने की विधि एवं कार्यप्रणाली का अध्ययन किया जाता है। सामाजिक विज्ञान तथ्यों के कारण एवं परिणाम का सम्बन्ध स्पष्ट करता है और साथ ही सामान्यीकरण करता है और व्यावहारिकता का ज्ञान प्रदान करता है। अतः इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि सामाजिक विज्ञान, कला एवं विज्ञान दोनों है।

4 भौतिक एवं सामाजिक वातावरण का अध्ययन (Studyt of Physical and Social Environment)– सामाजिक विज्ञान एक ऐसा विषय है जिसमें मानव के भौतिक एवं सामाजिक वातावरण का अध्ययन क्रमबद्ध एवं विस्तृत रूप से करता है। यह मानव के वातावरण का अध्ययन कर उसके वातावरण के साथ अन्तर्सम्बन्ध की विस्तृत एवं क्रमबद्ध विवेचना करता है। एन.सी.ई.आर.टी. के अनुसार– "सामाजिक विज्ञान मानव तथा भौतिक एवं सामाजिक वातावरण के प्रति उनकी पारस्परिक अन्तःक्रिया से सम्बन्धित है।" इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक विज्ञान में मानव की उसके भौतिक एवं सामाजिक वातावरण की पारस्परिक अन्तःक्रिया का विस्तृत एवं क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है और उसके साथ अन्तःसम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि सामाजिक विज्ञान मूल रूप में मानव का ही अध्ययन है जो मानव को विश्व के अन्य भागों में निवासित व्यक्ति की संस्कृति, सभ्यता एवं उसके वातावरण का ज्ञान प्रदान करके उनके बीच अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करता है और ऐसा ज्ञान, अनुभव, सोच एवं अन्तर्दृष्टि को उत्पन्न करता है जिसके द्वारा चारों ओर व्याप्त सभी विषयों को समन्वित किया जा सके। सामाजिक विज्ञान ऐसा विषय है जो क्षेत्र, देश और विश्व भक्ति एवं राष्ट्रीयता की भावना का विकास करता है। यह जनतान्त्रिक नागरिकता का विकास करता है।

सामाजिक विज्ञान अध्ययन की अवधारणा

सामाजिक विज्ञान या अध्ययन की नवीन अवधारणा को निम्नांकित तथ्यों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है –

1. मानव जीवन का अध्ययन (Study of Human Life) – सामाजिक अध्ययन ज्ञान के उस क्षेत्र का नाम है, जिसमें मानव के जीवन का अध्ययन किया जाता है। सामाजिक अध्ययन में मानव के सम्पूर्ण विकास एवं सभ्यता का अध्ययन किया जाता है। इसके सम्बन्ध में जेम्स हेमिंग महोदय ने लिखा है कि सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत हम जिस तथ्य का अध्ययन करते हैं, वह मनुष्य का जीवन है, परन्तु इसका अध्ययन निश्चित स्थान तथा समय के सन्दर्भ में किया जाता है। सामाजिक अध्ययन में प्रमुख रूप से इन प्रसंगो का अध्ययन किया जाता है – ''मनुष्य ने अतीत तथा वर्तमान में अपने वातावरण से किस प्रकार संघर्ष किया, उसने अपनी शक्तियों का उपयोग या दुरूपयोग कैसे किया तथा उसने अपने संसाधनों, विकास तथा सभ्यता की आवश्यकता एकता को किस प्रकार प्रभावित किया?"

2. सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन (Study of Social Relationship) – सामाजिक अध्ययन में सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है जिसमें एक व्यक्ति–एक परिवार, समाज और राज्य के सदस्य के रूप में बंधा होता है। ये सम्बन्ध उसके व्यक्तिगत होते हैं और पारस्परिक व्यवहार पर टिके होते हैं। बालक के सामाजीकरण में इन्हीं सामाजिक सम्बन्धों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये सम्बन्ध मुख्यतः भावात्मक होते हैं, तथा बौद्धिकता का अभाव पाया जाता है। इस सम्बन्ध में ई.डब्ल्यू. वेस्ले महोदय ने लिखा है कि "सामाजिक अध्ययन शब्द का प्रयोग उन विद्यालीय विषयों के लिए निर्दिष्ट किया गया है जो मानवीय सम्बन्धों की विवेचना करते हैं। यह अध्ययन के एक क्षेत्र का निर्माण करता है जिसमें विषयों का एक संघ सम्मिलित है, यह पाठ्यक्रम का एक क्षेत्र है। यह क्षेत्र वही है जो सीधे मानवीय सम्बन्धों से सम्बन्धित है।"

3. क्षेत्रीय अध्ययन (A Field Study) – सामाजिक अध्ययन एक ऐसा नवीनतम विषय है जो एक क्षेत्रीय विषय के रूप में स्थानीय जानकारी उपलब्ध कराता है । सामाजिक अध्ययन उन भौगोलिक एवं सामाजिक दशाओं की व्याख्या करता है, जो मानव के दैनिक जीवन को प्रभावित करती हैं। पर्यावरणीय समस्याएँ, जो आज की सबसे अधिक ज्वलन्त समस्याएँ हैं, जो इसके अध्ययन क्षेत्र में आते हैं। इसके सन्दर्भ में एम. पी. मोफात.महोदय ने लिखा है कि "सामाजिक अध्ययन वह क्षेत्र है जो युवकों को उस ज्ञान, सूचना तथा क्रियात्मक अनुभवों के द्वारा सहायता प्रदान करता है जो मूलभूत मूल्यों, वांछित आदतों, स्वीकृत वृत्तियों तथा उन महत्वपूर्ण कुशलताओं के निर्माण के लिए आवश्यक है जिनको प्रभावशाली नागरिकता का आधार माना जाता है।"

4. शिक्षा की आधुनिक विचारधारा (Modern Approach of Education) – वर्तमान में सामाजिक अध्ययन, शिक्षा की आधुनिक विचारधारा पर आधारित है। यह छात्रों को स्वयं करके सीखने पर बल देता है। अर्थात् स्व–क्रिया और स्वानुभव का अवसर प्रदान करती है। इस विचारधारा के द्वारा छात्रों का व्यक्तित्व संतुलित रूप में विकसित होता है और वह अधिकाधिक आत्मविश्वास के साथ अपने भावी जीवन के लिए तैयार होता है। इसके सम्बन्ध में जे. एफ. फोरेस्टर महोदय लिखते हैं कि "सामाजिक अध्ययन, शिक्षा की आधुनिक पद्धति का अंग है, जिसका उददेश्य तथ्यों पर आधारित सूचनाओं का संकलन नहीं, वरन् बालकों में रूचियों, प्रवृत्तियों, आदर्शों और उन्नत मानक मानदण्डों का निर्माण करना है।"

5. एक अन्तर–वैषयिक अध्ययन (A inter-disciplinary Study) – वर्तमान में सामाजिक अध्ययन एक अन्तर–वैषयिक अध्ययन है। सामाजिक अध्ययन में सामजिक विज्ञानों के जटिल सूक्ष्म और वैज्ञानिक ज्ञान को सरलतम रूप में प्रस्तुत करके शिक्षा का एक प्रमुख अंग बनाया गया है। यह माध्यमिक स्तर की निम्न कक्षाओं के छात्रों के समक्ष उनके जीवन से सम्बन्धित सामाजिक, राजनैतिक , सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्रियाओं का उपयोगी पक्ष प्रस्तुत करता है जिससे वे अपने जीवन को सामान्य रूप में बिना किसी रूकावट के जी सकें। यह उपागम क्रिया–प्रधान होने के कारण अधिक रूचिकर है और साथ ही साथ इसे समझना सरल होता है। यह छात्रों को भावी जीवन हेतु तैयार करता है।

6. शिक्षण के लिए नवीन आधार (New Base for Teaching) – सामाजिक अध्ययन एक ऐसा विषय बन चुका है, जिसकी विषय–वस्तु से वर्तमान के संघर्षित एवं जटिल विश्व को सरल एवं स्पष्ट बनाने के लिए शिक्षण के नवीन आधार प्रस्तुत करता है। इसको स्पष्ट करते हुए बाइनिंग एवं बाइनिंग महोदय ने लिखा है कि "सामाजिक अध्ययन की विषय–वस्तु द्वारा एक ऐसा आधार प्रस्तुत किया जाता है जिसके द्वारा हम अपने छात्रों के समक्ष आज के विश्व को स्पष्ट एवं सरल बना सकें। इसके द्वारा छात्रों को अनिवार्य आदतों तथा कुशलताओं में प्रशिक्षित तथा इनमें ऐसी वृत्तियों एवं आदर्शों को विकसित किया जाता है जो बालक तथा बालिकाओं को लोकतन्त्रीय समाज में प्रभावकारी सदस्यों के रूप में उचित स्थान ग्रहण करने योग्य बनाएँगे।"

7. आधुनिक सभ्यता का अध्ययन (A Study of Modern Civilization) – सामाजिक अध्ययन मानव की आधुनिक सभ्यता करने वाला विषय है। यह ज्ञान का वह क्षेत्र है जिसके द्वारा आधुनिक सभ्यता का स्पष्ट एवं विस्तृत रूप में अध्ययन किया जाता है। इसके सन्दर्भ में एम.पी. मोफात महोदय ने स्पष्ट रूप में लिखा है कि "सामाजिक अध्ययन ज्ञान का वह क्षेत्र है, जो युवकों को आधुनिक सभ्यता के विकास को समझने में सहायता देता है। ऐसा करने के लिए वह अपनी विषय–वस्तु को समाज विज्ञानों तथा समसामयिक जीवन से प्राप्त करता है।"

8. भौगोलिक एवं सामाजिक वातावरण का अध्ययन (Study of Geograhical and Social environment) – सामाजिक अध्ययन एक ऐसा विषय क्षेत्र है जिसमें मानव के भौगोलिक एवं सामाजिक वातावरण का अध्ययन किया जाता है। इसके सम्बन्ध में जे.यू.मारकेलिस महोदय ने स्पष्ट रूप में लिखा है कि

"सामाजिक अध्ययन का कार्यक्रम मानव तथा प्राचीन, वर्तमान एवं विकसित होने वाले भविष्य के भौगोलिक एवं सामाजिक वातावरण के प्रति उनके द्वारा की गई पारस्परिक क्रिया का अध्ययन है।"

सामाजिक विज्ञान की विशेषताएँ –

सामाजिक विज्ञान के अर्थ एवं प्रकृति के विवेचन के पश्चात् इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं, जो कि निम्नांकित हैं –

1. सामाजिक विज्ञान एक सैद्धान्तिक विषय है।
2. सामाजिक विज्ञान में मानव के सामाजिक वातावरण का क्रमबद्ध अध्ययन है।
3. सामाजिक विज्ञान मानव का उन्नतिशील अध्ययन करता है।
4. सामाजिक विज्ञान परम्परागत विषयों (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र एवं नागरिक शास्त्र) की विषयवस्तु को अंगीकृत करता है।
5. सामाजिक विज्ञान ज्ञान जगत का क्रमबद्ध अध्ययन करता है।
6. सामाजिक विज्ञान में मानव की बहुआयामी क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाता है।
7. सामाजिक विज्ञान में मानव के विकास का अध्ययन समाज की इकाई के रूप में किया जाता है।
8. सामाजिक विज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान के एक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है।
9. सामाजिक विज्ञान में विषयों के विभाजन की कठोरता को समाप्त करके ज्ञान की सापेक्षता पर बल दिया जाता है।
10. सामाजिक विज्ञान एक एकीकृत उपागम के साथ–साथ वैज्ञानिक विधि भी है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण का महत्व –

वर्तमान में सामाजिक विज्ञान को एक उपयोगी विषय समझा जाता है। हमें यह पहचानने की आवश्यकता है कि सामाजिक विज्ञान में शारीरिक विज्ञान की ही तरह वैज्ञानिक दृष्टि होती है। सामाजिक विज्ञान द्वारा अपनाई गई पद्धतियाँ विशिष्ट होती हैं। यह प्राकृतिक विज्ञान से किसी भी रूप में कमतर नहीं है।

सामाजिक विज्ञान इस दायित्व का वहन करते हैं कि स्वतंत्रता, विश्वास, परस्पर सम्मान और विविधता का आदर जैसे मानवीय मूल्यों का सुदृढ़ आधार तैयार हो। सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का लक्ष्य विद्यार्थियों में आलोचनात्मक मानसिक और नैतिक क्षमता का विकास होना चाहिए, ताकि वे उन सामाजिक शक्तियों से सावधान रह सकें जो इन मूल्यों को खतरा पहुँचाती हैं।हम यहाँ निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर सामाजिक विज्ञान के महत्व को समझ सकते हैं।सामाजिक विज्ञान का अध्ययन कई कारणों से महत्वपूर्ण हैं। यह बच्चों को इस योग्य बनाता है कि वे –

- उस समाज को समझें जिसमें वे रहते हैं – यह सीखें कि समाज की संरचना, शासन एवं प्रबंध कैसे होता है ? यह भी समझें कि कौन से बल समाज को अनेक तरीकों से बदलते हैं तथा अनुप्रेषित करते हैं।
- भारतीय संविधान में प्रतिष्ठित मूल्यों : जैसे–न्याय स्वतंत्रता, समानता, भाई चारा, एकता और राष्ट्रीय एकीकरण से अवगत हों और एक समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक समाज के निर्माण के महत्व को समझ सकें।

- समाज के सक्रिय, जिम्मेदार और चिंतनशील सदस्य के रूप में बढ़ने में समर्थ हों।
- विविध मतों, जीवन शैलियों और सांस्कृतिक रीति–रिवाजों का सम्मान करना सीखें। ग्रहण किए विचारों, संस्थाओं और परंपराओं के संबंध में प्रश्न कर सकें और उनकी जाँच–पड़ताल कर सकें।
- उस आनंददायक पाठ्य सामग्री को पढ़कर आनंद प्राप्त करें जो उन्हें उपलब्ध कराई गई है।
- ऐसे क्रियाकलापों में संलग्न हों जो उनमें सामाजिक और जीवन संबंधी कौशलों का विकास करे और उन्हें यह समझाएँ कि ये कौशल सामाजिक अंतर्संबंध हेतु महत्वपूर्ण हैं।
- पाठ्यपुस्तकों और कक्षाओं में विषय–वस्तु, भाषा तथा भावों में स्पष्टता होनी चाहिए। जेंडर–संवेदनशीलता तथा सामाजिक वर्गों और हर प्रकार की असमानताओं के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए।

शिक्षार्थियों में उपर्युक्त उद्देश्यों की समझ विकसित करना ताकि अपने जीवन में उक्त उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल हो सकें।

परिवार

परिवार मानव जीवन की प्रथम पाठशाला है परिवार में रहकर ही बच्चा अपने माता पिता की उँगलियाँ पकड़कर चलना सीखता है और यहीं से सभ्यता का विकास प्रारंभ होता है। परिवार में रहकर व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति सहजता से हो जाती है। परिवार में उसे ऐसा अवसर सहजता से मिल जाता है जहाँ बच्चा माँ और बेटा/बेटी का संबंध क्या होता है? पिता का संरक्षण क्या होता है? ममता और वातसल्य का अर्थ क्या होता है? भाई– बहन के बीच स्नेह का संबंध क्या होता है? इन सब संबंधों और जीवन के मूल्यों का अनुभव प्राप्त करता है।

इसी प्रकार परिवार के सदस्यों के बीच सम्मान और विश्वास जैसे मूल्यों को समझ पाता है। सम्मान और विश्वास का प्रवाह दो सदस्यों के बीच होने से सुख का अनुभव होता है।स्नेह, दया, कृपा व करूणा की अनुभूति स्थल तो परिवार ही है।

समय के अनुसार परिवार का स्वरूप भी बदलता रहा है। पहले संयुक्त परिवार हुआ करते थे अब एकांगी परिवार देखने को मिलता है। पहले संयुक्त परिवार में सब मिल जुलकर खेती और पशुपालन करते थे, तो कोई सदस्य बेरोजगार नहीं होता था और समृद्धि पूर्वक जीवन यापन करते थे। छोटे बच्चों की देखभाल बड़े बुजूर्ग करते थे। ये अनुभव और जिज्ञासा का अनूठा मेल था जहाँ छोटों के पास सवाल – ही – सवाल थे वहीं बड़ों के पास अनुभवयुक्त उत्तर के साथ संरक्षक के रूप में जिम्मेदारियाँ दोनों हुआ करती थीं।

प्रायोजना –

अपने गाँव/क्षेत्र में बहुत सारे परिवार जो कभी संयुक्त परिवार हुआ करते थे अब एकांगी हो गए हैं, इस प्रकार के बदलावों के कारणों एवं प्रभावों की जांच कर एक प्रायोजना तैयार कीजिए।

समाज

समाज केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है। यह अनगिनत जीवों (जैसे –चीटियों, दीमक, मधुमक्खी, चिड़ियों, बंदर लंगूर आदि) में भी पाया जाता है। पशु समाज में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति आनुवांशिकता के आधार पर होती है। जबकि मानव समाज में यह सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था के आधार पर होती है। संस्कृति ही एक ऐसी विशेषता है जो कि अन्य जीवों की समाज एवं मानव समाज को अलग करती है।

मानव का संपूर्ण जीवन संस्कृति ही निर्धारण करती है। संस्कृति से ही मनुष्य विवाह, यौन सम्बन्ध तथा कानून और गैर कानून तथा सत्ता एवं प्रमुसत्ता में अंतर करना सीखता है। सामाजिक व्यवहार करना सीखता है। सामाजिक अन्तः क्रियाओं की समझ उसे एक संवैधानिक नागरिक बनाता है जिससे वह स्वयं के प्रति विश्वास दूसरों के प्रति सम्मान एवं आदरभाव, समाज के प्रति जागरूक नागरिक एवं राष्ट्र के प्रति जिम्मेदारी के भाव एवं सामाजिक कर्तव्यों का निर्वहन करना सीखता है।

मानव समाज की प्रमुख विशेषताएँ

मानव समाज का अर्थ मानवों में पाए जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों का ताना–बाना है। मानव समाज की कतिपय प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार प्रकार हैं–

(1) शारीरिक व मानसिक समानता – मानव समाज के सदस्यों में परस्पर अनेक असमानताएं दिखाई दे सकती हैं। वे काले, गोरे, लंबे, छोटे, मंद बुद्धि अथवा तीव्र बुद्धि के हो सकते हैं। परंतु उन सभी के शरीरों में और उनके अंगों की बनावट में एक विचित्र और अद्वितीय समानता पाई जाती है। इस प्रकार सभी मनुष्यों में शारीरिक व मानसिक समानता का अद्भुत साम्य होता है।

(2) मानव समाज के पास संस्कृति है – मानव समाज की सबसे बड़ी धरोहर उसकी संस्कृति है। यह संस्कृति पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है और मनुष्य उसकी निरन्तर रक्षा और संवर्धन करता रहता है जिससे आने वाली पीढ़ियाँ लगातार बहुत कुछ सीखती रहती हैं।

(3) सांस्कृतिक आधार पर आवश्यकताओं की पूर्ति – मानव समाज की अनेक आवश्यकताएँ होती हैं – जैसे सुरक्षा, संतानोत्पादन, पालन–पोषण व श्रम–विभाजन आदि। समाज में तो इस पूर्ति का आधार अक्सर जैविक व उनका बल होता है परंतु मानव समाज में उनकी परम्पराएँ, कानून और संस्कृति इस पूर्ति का आधार बनती हैं।

(4) मानव समाज में भाषा व संकेत – मानव समाज की सबसे बड़ी उपलब्धि उसकी भाषा है। इसी के सहारे वह एक–दूसरे के साथ अपने विचारों और संदेशों का आदान–प्रदान आसानी से कर लेता है। कुछ ऐसे संकेत और चिन्ह भी होते हैं जिनसे वह ऐसा कर सकता है।

(5) सामाजिक मूल्यों की उपस्थिति – सामाजिक मूल्यों का अर्थ ऐसी धारणाएँ एवं विचार हैं जिनसे समाज का व्यवहार नियंत्रित होता है। दूसरे शब्दों में, समाज के वे स्वीकृत व्यवहार जिन्हें सर्वाधिक महत्व दिया जाता है सामाजिक मूल्य कहलाते हैं। मानव समाज में सामाजिक मूल्य पाए जाते हैं। मानव व्यवहार में कुछ बातें कम मान्य और कुछ अधिक मान्य होती है परंतु अधिकांश मानव व्यवहार सामाजिक मूल्यों द्वारा ही संचालित होता है।

(6) धर्म एवं नैतिकता – प्रकृति में स्वतः घटित घटनाओं और परिवर्तनों ने मानव को किसी अलौकिक शक्ति पर विश्वास करना भी सिखाया है। इन्हीं के आधार पर उसने धर्म का निर्माण किया है। इसी प्रकार, धीरे–धीरे कुछ ऐसे विचारों का भी निर्माण हुआ है जिन्हें नैतिकता या नैतिक संहिताओं की संज्ञा दी जाती है यथा प्रेम दया, सहिष्णुता, त्याग, सहानुभूति आदि। दोनों को मानव समाज की विशेषताएँ माना जाता है।

(7) आदर्शात्मक मापदंड – मानव समाज में आदर्शों के आधार पर उचित और अनुचित में भेद किया जाता है। आदर्श एक प्रकार के ऐसे मापदंड होते हैं जिनके अनुसार किसी के कार्यों का मूल्यांकन होता है।

(8) मानव समाज में सहयोग गतिशीलता – मानव समाज, पशु समाज की भांति स्थिर नहीं है। इसमें परिवर्तनशीलता पाई जाती है। यह समयानुकूल निरन्तर परिवर्तन होता रहता है।

(9) मानव समाज में सहयोग एवं संघर्ष – मानव जीवन एक साथ सहयोग और संघर्ष की भावना से पूरित है। एक ओर, अपने दैनिक कार्यकलापों में मनुष्य अन्य मनुष्यों के साथ सहयोग की भावना से कार्य करता है तो दूसरी ओर, वह उन्हीं के साथ प्रतियोगिता की स्थिति का निर्वाह करते हुए अपने हितों की पूर्ति के लिए संघर्षरत भी रहता है। यह मानव समाज की एक विचित्र स्थिति है।

(10) संस्थाओं एवं संगठनों की उपस्थिति – मानव जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव समाज में अनेक समितियाँ, संस्थाएँ व संगठन भी पाए जाते हैं। सदस्य इन संगठनों के नियमों के अनुसार आचरण करते हुए अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करते हैं। ये संगठन, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व अन्य प्रकार के हो सकते हैं।

समाज की तात्कालिक स्थिति जनतंत्रवादी

जनतंत्रवादी समाज में व्यक्ति के व्यक्तित्व को विशेष महत्व दिया जाता है। चूँकि जनतंत्र वह आदर्श है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को एक सुखी, सम्पन्न तथा समृद्धिशाली जीवन व्यतीत करने के समान अवसर प्राप्त होते हैं, इसलिए जनतंत्रवादी समाज में प्रत्येक व्यक्ति को चिन्तन तथा मनन करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह ऐसे कार्य करे जिनसे सबका भला हो। ऐसे समाज में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का आदर करता है तथा प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के विकास में बाधक न होकर मेल–जोल के साथ रहते हुए कन्धे से कन्धा मिलाकर चलता है जिससे समाज दिन प्रतिदिन प्रगति के शिखर पर चढ़ता रहे। स्पष्ट है जनतंत्रवादी समाज में प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता, सबके समान अधिकार तथा वैयक्तिक और सामूहिक जीवन में विश्वास आदि आदर्श को प्राप्त करने के लिए शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार से कि जाती है कि प्रत्येक बालक को उसकी रूचियों, रूझानों, योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुसार विकसित होने के लिए ऐसे अवसर मिलते रहें कि उसमें अच्छी आदतें, सामाजिक गुण, प्रेम, सद्भावना, सहयोग, सहन–शीलता, सहानुभूति, आत्मअनुशासन तथा कर्तव्यपराणता आदि जनतांत्रिक गुणों का विकास हो सके।

जनतंत्रवादी समाज और शिक्षा

जनतंत्रवादी समाज में शिक्षा और समाज के संबंधों को निम्नलिखित रूपों में समझ सकते हैं –

1. समाज की प्रकृति तथा आदर्श का प्रभाव – जैसा समाज होगा वैसी ही शिक्षा होगी जिस समाज के जैसे आदर्श होंगे वहाॅ की शिक्षा भी उन्ही आदर्शो के अनुरूप होगी। इस दृष्टि से यदि समाज की प्रकृति तानाशाही है तो निश्चय ही वहाँ की शिक्षा में अनुशासन तथा आज्ञापालन पर विशेष बल दिया जायेगा। इसके विपरीत यदि समाज की प्रकृति जनतांत्रिक है तो वहाँ की शिक्षा में स्वतंत्रता, समानता, सहकारिता तथा सहयोग आदि पर बल देते हुए व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के आदर्शों को प्राप्त करने का प्रयास किय जाएगा। हमारे देश भारत तथा इंग्लैण्ड तथा अमेरिका में जनतांत्रिक समाज है इसलिए इन देशों के समाजों में जनतांत्रिक आदर्शों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के विभिन्न अंगों को निर्धारित करते हुए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाती है।

2. राजनैतिक दशाओं का प्रभाव – समाज की राजनैतिक विचारधारा का शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हम देखते हैं कि जिस समाज में जैसी राजनैतिक विचारधार होती है वहाँ की शिक्षा व्यवस्था भी उसी राजनैतिक विचारधार के अनुरूप हो जाती है। यही कारण है कि आज अमेरिका, चीन, रूस तथा भारत में शिक्षा की व्यवस्था अपनी–अपनी राजनैतिक विचारधारा के अनुसार की गई है।

3. आर्थिक दशाओं का प्रभाव – समाज की आर्थिक दशा शिक्षा को प्रभावित करती है। जिन समाजों की आर्थिक दशा प्रशंसनीय होती है वहाँ की शिक्षा भी प्रशंसनीय होती है। आर्थिक दृष्टि से संपन्न समाजों में

अधिक से अधिक स्कूल खोले जाते हैं। उनके भवन इस प्रकार के होते हैं कि उनमें वायु, प्रकाश तथा धूप आदि को आने के लिए खिड़कियाँ तथा रोशनदान पर्याप्त मात्रा में होते हैं। ऐसे स्कूलों के पास फर्नीचर, प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालय एवं वाचनालय तथा शिक्षण की सामग्री और खेल के मैदान होते हैं। वहाँ के पाठ्यक्रम में उन सभी विषयों को सम्मिलित किया जाता है जिनकी सहायता से समाज आर्थिक दृष्टि से उन्नति करता रहे।

4. धार्मिक दशाओं का प्रभाव – समाज के धार्मिक विचारों तथा मान्यताओं का शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भारत विभिन्न धर्मों का देश है अतः यहाँ पर किसी विशेष धर्म की कट्टरता के साथ शिक्षा न देते हुए धर्म के सामान्य सिद्धांतों की शिक्षा दी जाती है।

5. सामाजिक दृष्टिकोण का प्रभाव – सामाजिक दृष्टिकोण भी शिक्षा को प्रभावित करती है। जिस समाज के व्यक्तियों का रूढ़िवादी दृष्टिकोण होता है वहाँ केवल परम्परागत शिक्षा पर बल दिया जाता है ऐसे समाजों में नवीन सिद्धान्तों तथा नवीन प्रवृत्तियों को लागू करना असम्भव नहीं तो कठिन जरूर है । इसके विपरीत जिन समाजों का दृष्टिकोण प्रगतिशील होता है वहाँ की शिक्षा में नवीन प्रवृत्तियों तथा नवीन सिद्धांतों एवं नवीन शिक्षण विधियों के प्रयोग द्वारा ऐसी क्रियाओं का संगठन किया जाता है जिनमें सक्रिय रूप से भाग लेते हुए बालक प्रगतिशील बन सकें।

6. सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव – जैसे–जैसे सामाजिक आदर्शों तथा प्रविधियों का विकास होता है वैसे–वैसे समाज में परिवर्तन होते रहते हैं। इन्हीं सामाजिक परिवर्तनों के अनुसार शिक्षा में भी परिवर्तन होते रहते हैं। जब समाज की दशा बदल जाती है तो शिक्षा का स्वरूप भी बदल जाता है। उदाहरण के लिए भारतीय समाज में पहले शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार केवल उच्च वर्ग के लोगों के लिए ही सुरक्षित था। परन्तु जैसे भारत अंगेजों के चंगुल से मुक्त हुआ वैसे ही समाज के आदर्श तथा आवश्यकताएँ बदल गई। इन बदली हुई आवश्यकताओं तथा आदर्शों के अनुसार शिक्षा भी बदल गई। अब रंगरूप जाति–पाति तथा लिंग आदि भेदभावों से ऊपर उठकर प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार है।

सामाजिक विज्ञान के घटक संस्कृति

सामाजिक विज्ञान के घटकों में संस्कृति एक महत्वपूर्ण घटक है।विश्व की संस्कृति के स्वयं के आचार–विचार व्यवहार,आदर्श ,गुण एवं चरित्र होते हैं। इनका अध्ययन करना मानव के लिए महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि इनके अध्ययन से मानवीय संबंधों का ज्ञान सरलता एवं सुगमता से प्राप्त होता है। मानव को उसके सांकृतिक परिवेश की जानकारी होती है। सामाजिक अध्ययन में इसका अध्ययन होता है।

संस्कृति की परिभाषा

साधारण बोलचाल में संस्कृति का अर्थ सुन्दर, परिष्कृत, रुचिकर या कल्याणकारी व्यवहार या गुणों से लिया जाता है, परन्तु यह संस्कृति की शास्त्रीय परिभाषा नहीं है। समाज विज्ञान में संस्कृति की निश्चित परिभाषा की जाती है। कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

(1) टायलर–''संस्कृति एक जटिल सम्पूर्ण है, जिसमें ज्ञान, विश्वास,कलाएँ,नीति, विधि, रीति–रिवाज और समाज के सदस्य होकर मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य योग्यताएँ और आदतें शामिल हैं।''

(2) रेडफील्ड–''संस्कृति कला और उपकरणों से अभव्यक्त परम्परागत ज्ञान का वह संगठित रूप है जो परम्परा के द्वारा संगठित होकर मानव समूह की विशेषता बन जाती है।''

(3) जोसेफ पीपर–''संस्कृति प्राणी की सभी प्राकृतिक वस्तुओं और उन उपहारों तथा गुणों का सार है जो मनुष्य से सम्बन्ध रखते हुए भी उनकी आवश्यकताओं के तात्कालिक क्षेत्र से परे है।''

(4) व्हाइट–''संस्कृति एक प्रतीकात्मक, निरन्तर, संचयी और प्रगतिशील प्रक्रिया है।''[4]

इस प्रकार संस्कृति में वह सब सम्मिलित है, जो मानव समाज अपने व्यक्गित और सामाजिक जीवन के मानसिक और अध्यात्मिक क्षेत्र में आज तक अर्जित किया है।

मैकाइवर और पेज के शब्दों में, ''यह मूल्यों, शैलियों, भावात्मक लगावों तथा बौद्धिक अभियानों का क्षेत्र है। इस तरह संस्कृति सभ्यता का बिल्कुल प्रतिवाद है। वह हमारे रहने और सोचने के ढंग में, दैनिक कार्य–कलापों में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन और सुखोपभोग में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।

संस्कृति की आवश्यक विशेषताएँ

(1) संस्कृति में मनुष्य निर्मित और वे वस्तुएँ सम्मिलित हैं जिनमें मनुष्य संशोधन कर सकता है।

(2) नये तत्वों के समावेश से संस्कृति की जटिलता और गुण बढ़ते हैं।

(3) यह पीढ़ी दर पीढ़ी मानसिक (Psychic) रूप में संचारित होती रहती है।

(4) संस्कृति केवल मानव समाजों में पाई जाती है।

संस्कृति की प्रकृति

संस्कृति की प्रकृति के बारे में महत्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं –

(1) संस्कृति सीखे हुए गुण हैं – संस्कृति जन्मजात नहीं है। सामाजीकरण के द्वारा सीखे हुए गुण, आदतें तथा विचार आदि ही संस्कृति कहलाती है। मनुष्य में प्रतीकात्मक संचार (Symbolical Communication) की योग्यता होने के कारण वह संस्कृतिक व्यवहार को ग्रहण कर लेता है।

(2) संस्कृति संचारशील है – इस प्रकार संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संचार होता है। इससे संस्कृति में बराबर वृद्धि होती रहती है। संचार के कारण नई पीढ़ी पिछली पीढ़ी के अनुभवों से लाभ उठाती है। इस प्रकार संस्कृति अर्द्धस्थायी हो जाती है और किसी व्यक्ति या समूह के रहने से उस पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

(3) संस्कृति वैयक्तिक नहीं, बल्कि सामाजिक है – संस्कृति के सम्वर्द्धन और संचार में हर एक व्यक्ति कुछ न कुछ भाग लेता है, परन्तु वैयक्तिक न होकर सामाजिक है। उसमें समूह के सदस्यों की सामान्य अपेक्षाएँ (Expectations) शामिल होती है। समूह से बाहर रहकर व्यक्ति संस्कृति की सृष्टि नहीं कर सकता।

(4) संस्कृति आदर्शात्मक है – संस्कृति में व्यवहार के पूर्व आदर्श प्रतिमान (Ideal Pattern) या आदर्श या आदर्श नियम (Ideal Norms) सम्मिलित हैं, जिनके अनुसार समाज के सदस्य आचरण करने की चेष्टा करते हैं। इन आदर्श, नियमों तथा प्रतिमानों को समाज स्वीकार करता है।

(5) संस्कृति कुछ आवश्यकताओं को पूरा करती है – संस्कृति मनुष्य की उन नैतिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करती है, जो स्वयं साध्य हैं। संस्कृति में सामूहिक आदतें सम्मिलित हैं। आदतें उन्हीं कामों की पड़ती हैं, जिनसे कुछ न कुछ आवश्यकताएँ पूरी होती हों। इन आवश्यकताओं को पूरा किये बिना संस्कृति का जीवित रहना असम्भव है। संस्कृति का जो अंश सामाजिक सन्तोष में सहायक नहीं होता, वह गायब हो जाता है।

(6) संस्कृति में उपयोजन की योग्यता होती है – पर्यावरण के अनुसार संस्कृति बराबर बदलती रहती है और इस परिवर्तन से बाहरी शक्तियों से उसका उपयोजन होता रहता है, परन्तु विकसित होने पर

प्राकृतिक पर्यावरण का प्रभाव घटता जाता है। इसके अलावा संस्कृति के विभिन्न अंगों का भी विकास होता रहता है और उनमें आन्तरिक उपयोजन की जरूरत पड़ती है।

(7) संस्कृति में एकीभूत (Integrated) होने के कारण गुण है – संस्कृति में एक क्रम और एक संगठन होता है। उसके भिन्न–भिन्न भाग आपस में एकीभूत रहते हैं और जो भी नया तत्व आता है वह भी उनमें मिल जाता है। जिन संस्कृतियों पर बाहरी प्रभाव अधिक पड़ता है, वे अधिक (Hetrogenous) विजातीय होती है, परन्तु सभी संस्कृतियों में कुछ न कुछ एकभूतता (Integration) की प्रवृत्ति अवश्य दिखाई पड़ती है।

इस प्रकार संस्कृति सामाजिक, आदर्शात्मक और सीखी हुई होती है तथा मनुष्य की बहुत–सी आवश्यकताओं को पूर्ण करती है। उसमें संचार, उपयोजन तथा एकभूतता के गुण होते हैं। वह मनुष्य का विशेष गुण है, उसकी सामाजिक विरासत है, उसकी श्रेष्ठता का सबूत है।

संस्कृति की अन्तर्वस्तु

संस्कृति के तत्व क्या हैं ? संस्कृति में क्या–क्या शामिल है ? साधारण बोलचाल की भाषा में समूह के विश्वासों, आदर्शों, विचारों, व्यवहारों, रीति–रिवाजों आदि व्यवहार के अनेक उपकरणों तथा साधनों को संस्कृति कहा जाता है। बोगार्ड्स के अनुसार, ''संस्कृति एक समूह के समस्त रीति–रिवाजों, परम्पराओं और चालू व्यवहार प्रतिमनों से बनती है। संस्कृति एक समूह का मूलधन है। वह मूल्यों की एक ऐसी पूर्ववर्ती समष्टि है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति पैदा होता है। वह एक माध्यम है, जिसमें व्यक्ति पैदा होते और विकसित होते हैं।'' अलैग्जैण्डर ए. गोल्डनवाइजर ने संस्कृति में निम्नलिखित तत्व माने हैं –''हमारी प्रवृत्तियाँ, विश्वास और विचार, हमारे निर्णय और मूल्य, हमारी संस्थाएँ –राजनैतिक और कानूनी, धार्मिक और आर्थिक, हमारी नैतिक संहिताएँ और शिष्टाचार के नियम, हमारी पुस्तकें और मशीनें, हमारे विज्ञान, दर्शन और दर्शनिक, ये सब और दूसरी बहुत–सी चीजें तथा प्राणी स्वयं भी और अपने विविध संबंधों में भी।जे.एल. गिलिन तथा जे. पी. गिलिन ने एक सामाजिक समूह के सामान्य सीखे हुए व्यवहार (The learned behaviour common to a social group of human beings) को संस्कृति कहा है। इस तरह मोटे तौर से संस्कृति में वह सब कुछ शामिल है, जो कुछ मनुष्य समाज में सीखता है, जैसे, ज्ञान,धार्मिक विश्वास, कला, कानून, नैतिकता, रीति–रिवाज, व्यवहार के तौर–तरीके, साहित्य, संगीत, भाषा इत्यादि। सहज (Instinctive) व्यवहार को संस्कृति नहीं कहा जाएगा। स्वाभाविक तथा जन्मजात व्यवहार जैसे साँस लेना आदि संस्कृति में शामिल नहीं किए जाते। ए. डब्ल्यू. ग्रीन के शब्दों में, ''संस्कृति ज्ञान, व्यवहार, विकास की उन आदर्श पद्धतियों को तथा ज्ञान और व्यवहार से उत्पन्न हुए साधनों की व्यवस्था को कहते हैं जो सामाजिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दी जाती है। इस प्रकार संस्कृति में वह सब शामिल है जो कि सामाजिक विरासत में गिना जाता है।

संस्कृति के प्रकार

समाजशास्त्रियों ने संस्कृति के दो प्रकार माने हैं – भौतिक संस्कृति और अभौतिक संस्कृति

(1) भौतिक संस्कृति (Material Culture) –इसमें भौतिक या पार्थिव वस्तुएँ आती हैं, जो कि मनुष्य के व्यवहार में आती हैं जैसे रहने के मकान, घरों का सामान, विविध प्रकार के उपकरण, औजार, हथियार, बर्तन, आवागमन के साधन इत्यादि।

(2) अभौतिक संस्कृति (Non-Material Culture) –इसमें अमूर्त (Intangible) वस्तुएँ शामिल हैं, जैसे समाज के विभिन्न रीति–रिवाज, रूढ़ियाँ, विधियाँ, कलाएँ, ज्ञान और धर्म आदि।

संस्कृति के सार्वभौम तत्व

क्लार्क विजलर (Klark Wissler) ने मानव जाति के प्रत्येक समूह की संस्कृति में ये सार्वभौम तत्व माने हैं–(1) बोली, (2) पार्थिव उपकरण जैसे भोजन, मकान, आवागमन के साधन, वेशभूषा, हथियार, बर्तन, वस्त्र, उद्योग और धन्धे, (3)कलाएँ , (4) पौराणिक और वैज्ञानिक ज्ञान, (5) धार्मिक रीतियाँ और अन्धविश्वास, (6) कुटुम्ब और विवाह, सामाजिक नियन्त्रण, खेल–कूद जैसी सामाजिक संस्थाएँ (7) सम्पत्ति, मूल्य, विनिमय और व्यापार, (8) सरकार और विधि (Government and Law), (9) युद्ध।

संस्कृति के ये सार्वभौम तत्व सभी संस्कृतियों में पाये जाते हैं, परन्तु इनके रूप भिन्न–भिन्न होते हैं। भिन्न–भिन्न समाजों में विवाह के भिन्न–भिन्न रूप पाये जाते हैं जैसे बहुपति विवाह, बहुपत्नि विवाह, समूह विवाह, एक विवाह इत्यादि। खानपान में तो भिन्न–भिन्न संस्कृतियों में भारी भेद दिखाई पड़ता है। Nort West Amazons में विफेन (Whiffen) ने लिखा है कि पश्चिमी अमेजान प्रदेश की इस्सा–जपुरा (Issa-Japura) नामक जाति के बोरो (Boro) तथा विटोटो (Witoto) लोग बंदर, मेंढक और छिपकली को बड़ा स्वादिष्ट भोजन समझते हैं। ये बर्रे, मधुमक्खियों की इल्लियाँ (Larvae) और पड़ोसियों के सर के जुएं भी खा जाते हैं। गोरर (Gorrer) के अनुसार दक्षिणी पूर्वी एशिया की कुछ जातियों के लोग कोबरा आदि विषैले सांपों और अजगर की कढ़ी बड़े शौक से खाते हैं।

संस्कृति और शिक्षा
(Culture and Education)

संस्कृति और शिक्षा का घनिष्ट सम्बन्ध इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य बालक को उसकी सामाजिक विरासत, उसकी संस्कृति प्रदान करना है। प्रत्येक मानव समूह में हजारों सालों के विकास के परिणामस्वरूप संस्कृति के विभिन्न अंगों का विकास होता है। यह संस्कृति प्रत्येक पीढ़ी द्वारा नयी पीढ़ी को सौंप दी जाती है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी संस्कृति में जन्म लेता है। इस सांस्कृतिक विरासत से उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करने की निश्चित प्रतिमान प्राप्त करने के मूल्य मिल जाते हैं और उसे हर समय नये सिरे से प्रयोग नहीं करने पड़ते। अस्तु, संस्कृति का मनुष्य के जीवन में अत्यधिक महत्व है। इस महत्व के विवेचन से यह स्पष्ट होगा कि संस्कृति के विभिन्न अंगों की शिक्षा से मनुष्य को क्या लाभ होता है। संक्षेप में, संस्कृति के कार्य अथवा व्यक्ति को उसका योगदान निम्नलिखित है–

(1) प्राकृतिक परिवेश से समायोजन – मनुष्य सब जगह किसी न किसी प्रकार के प्राकृतिक परिवेश में रहते हैं और इस परिवेश से समायोजन करने के बिना उनका जीवन नहीं चल सकता। परिवेश से समायोजन करने की प्रक्रिया में वे जो नये–नये आविष्कार करते हैं, वे संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। प्राकृतिक परिवेश की भिन्नता के कारण भिन्न–भिन्न मानव समूहों में संस्कृति में अन्तर किया जाता है। भारतवर्ष में विभिन्न जनजातियों के सदस्य अपने प्राकृतिक परिवेश से समायोजित करने के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार से व्यवहार करते हैं और यह व्यवहार जनजाति द्वारा नई पीढ़ी को सिखाया जाता है।

(2) सामाजिक परिवेश से समायोजन – संस्कृति में रीति–रिवाज, परम्पराएँ और चालू व्यवहार प्रतिमन सम्मिलित होते हैं। उसमें हमारे विश्वास और विचार, निर्णय और मूल्य तथा सामाजिक संस्थाएँ निहित हैं। इन सबसे व्यक्ति को सामाजिक परिवेश से समायोजन करने में सहायता मिलती है। वास्तव में, सामाजिक परिवेश नियन्त्रण के प्रतिमान निश्चित होते हैं और इन प्रतिमानों से व्यक्ति पर सामाजिक नियन्त्रण रहता है। अस्तु, बालक को समूह की संस्कृति की शिक्षा देने से वह समूह की परम्पराओं, रीति–रिवाजों, मूल्यों और व्यहवार के प्रतिमानों से परिचित हो जाता है। इससे उसे सामाजिक परिवेश में समायोजन करने में आसानी होती है और उसका सामाजीकरण होता है।

(3) व्यक्तित्व का विकास – व्यक्तित्व मनुष्य के व्यवहार के प्रतिमानों से स्पष्ट होता है। मानव व्यवहार पर सब जगह समूह की संस्कृति का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। मानवशास्त्रियों ने अनेक अध्ययनों से यह बात स्पष्ट कर दी है कि भिन्न–भिन्न संस्कृतियों में पाए जाने वाले भेद के अनुसार भिन्न–भिन्न समाजों में मूल व्यक्तित्व प्रतिमान में भेद पाया जाता है। कहीं पर मनुष्य अधिक आक्रामक होते हैं तो अन्य समाज में उनमें समर्पण की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। भारतीय मनुष्य के व्यक्तित्व पर भारतीय संस्कृति की और पाश्चात्य मनुष्य के व्यक्तित्व पर पाश्चात्य संस्कृति की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। संस्कृति व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक और सौन्दर्यात्मक सभी पहलुओं को प्रभावित करती है। व्यक्तियों के प्रयासों से संस्कृति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हाते हैं, किन्तु फिर दूसरी ओर संस्कृति से ही सामान्य मनुष्यों के व्यवहार निर्धारित होते हैं।

(4) सामाजीकरण – सामाजीकरण की प्रक्रिया में संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान है। इसलिए भिन्न–भिन्न समाजों में व्यक्ति के सामाजीकरण की मात्रा और दिशाओं में भेद पाया जाता है। हर एक समाज का एक अपना एथोस (Ethos) होता है जो कि विभिन्न माध्यमों से व्यक्तियों को प्रदान किया जाता है। राल्फ लिन्टन के अनुसार व्यक्ति तीन प्रकार से संस्कृति के अंगों में भाग ले सकता है। सबसे पहले वह सार्वभौमिक रूप में संस्कृति में भाग लेता है अर्थात् उन आदतों, विचारों और संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को अपनाता है जिन्हें समाज के सभी प्रौढ़ व्यक्तियों के व्यवहार में पाया जा सकता है। दूसरे, व्यक्ति विशेष रूप से संस्कृति के अंगों में भाग लेता है। अर्थात् संस्कृति के उन तत्वों को ग्रहण करता है, जो कि समाज के विशिष्ट अंग विशेष व्यवस्था अथवा विशिष्ट लिंग वाले व्यक्तियों में पाए जाते हैं। तीसरे व्यक्ति वैकल्पिक रूप से संस्कृति के अंगों में भाग लेता है अर्थात् संस्कृति में उन तत्वों को अपनाता है जो समाज के कुछ ही व्यक्तियों द्वारा अपनाए गए हैं। संस्कृति के अंगों में भाग लेने के वैकल्पिक रूप से मनुष्यों में व्यक्तित्वों में अन्तर देखा जा सकता है। जॉर्ज एच. मीड के अनुसार संस्कृति को अपनाने में मनुष्य के अहम् को तीन अवस्थाओं से गुजरना होता है जो कि वास्तव में शिक्षा की अवस्थाएँ कही जा सकती हैं। पहली अवस्था में व्यक्ति अपने चारों ओर के व्यक्तियों को अनजाने ही अनुकरण करता है। दूसरों को देखकर मुस्कराता है, हँसता है अथवा अन्य कार्य करता है। इस प्रकार बाल्यावस्था में मनुष्य अनुकरण के द्वारा समूह की संस्कृति को ग्रहण करता है। दूसरी अवस्था में बालक विभिन्न प्रकार के खेलों के द्वारा समाज के भिन्न–भिन्न सदस्यों के कार्यों का अनुकरण करते हैं। इस प्रकार के खेलों से उनके व्यक्तित्वों में विभिन्न प्रकार के गुणों का समावेश होता है। संस्कृति ग्रहण करने की तीसरी अवस्था खेल है, जिसमें व्यक्ति अपने व्यवहार पर संयम करना सीखता है। खेल की सामाजिक परिस्थिति में वह मन–माना व्यवहार नहीं कर सकता और उसे समूह की मान्यताओं के अनुसार व्यवहार करना पड़ता है। अस्तु, क्रमशः वह समूह के आदर्शों, सिद्धान्तों और विश्वासों को अपनाने लगता है। इस प्रकार के व्यक्ति को ही सुसंस्कृत व्यक्ति कहा जाता है।

परिवार में संस्कृति की शिक्षा

बालक की सांस्कृतिक शिक्षा सबसे पहले परिवार में प्रारम्भ होती है। परिवार में ही वह सबसे पहले लिन्टन के द्वारा बतलाए गए प्रकारों से संस्कृति में भाग लेता है। परिवार में ही वह पीछे मीड के द्वारा बतलाई गई संस्कृति ग्रहण की अवस्थाओं से गुजरता है। परिवार में माता–पिता तथा अन्य सम्बन्धी बालक को संस्कृति के विभिन्न उपकरण जैसे रीति–रिवाजों, परम्पराओं, मूल्यों विश्वासों आदि की शिक्षा देते हैं। परिवार में ही वह पहले उचित, अनुचित में अन्तर करना सीखता है। परिवार में विभिन्न प्रकार के संस्कारों के द्वारा उसको सुसंस्कृत बनाया जाता है। हिन्दू समाज में बालक को सुसंस्कृत बनाने के लिए अनेक प्रकार के संस्कार किए जाते हैं। अन्य संस्कृतियों में भी इसी प्रकार की व्यवस्था देखी जा सकती है। परिवार में ही व्यक्ति नैतिक मूल्यों और धार्मिक व्यवहार के प्रतिमानों को सीखता है। परिवार में उसे शिष्टाचार सिखाया जाता है। परिवार के अन्य सदस्यों की देखा–देखी वह अपने से छोटे–बड़े और बराबर के व्यक्तियों से व्यवहार करने के तरीके सीखता है। प्रत्येक देश की संस्कृति में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले महापुरुषों पर उनके बाल्यकाल में परिवार का स्पष्ट प्रभाव देखा जा

सकता है। परिवार में संस्कृति की शिक्षा कुछ तो अचेतन अनुकरण के द्वारा होती हैऔर बहुत कुछ वयस्क संबंधियों के द्वारा दी गई प्रत्यक्ष शिक्षा के रूप में होती है।

विद्यालय में संस्कृति की शिक्षा

आजकल अन्य कार्यों के समान संस्कृति की शिक्षा देने का कार्य भी परिवार से अधिक विद्यालय में ही होता है। भिन्न–भिन्न देशों में विद्यालयों में देश की संस्कृति के अनुरूप बालकों को शिक्षा दी जाती है। पाठ्य–पुस्तकों के माध्यम से उनको समूह के विचारों, आदर्शों और मूल्यों आदि से परिचित कराया जाता है। विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमेतर कार्यक्रमों के द्वारा उन्हें संस्कृति के विभिन्न अंगों की शिक्षा दी जाती है। इन पाठ्यक्रमेतर कार्यक्रमों में नाना प्रकार के खेलों, नाटकों, सामूहिक गान और नृत्य, वाद–विवाद प्रतियोगिताओं, देश–विदेश का भ्रमण आदि के द्वारा बालकों को समूह की संस्कृति से परिचित कराया जाता है।

यूँ तो प्रत्येक समाज में परिवार और विद्यालय नई पीढ़ी को समाज की सामान्य संस्कृति सिखाते हैं, किन्तु किसी भी समाज में विभिन्न वर्गों और स्तरों के व्यक्तियों की संस्कृति में न्यूनाधिक अन्तर देखा जाता है। अस्तु, बालक को न केवल समाज की सामान्य संस्कृति, बल्कि उसके विशेष वर्ग और सामाजिक–आर्थिक स्तर की विशेष संस्कृति की भी शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार संस्कृति की शिक्षा में वृहद संस्कृति की शिक्षा के साथ–साथ उपसंस्कृतियों की शिक्षा भी आवश्यक होती है। संस्कृति की शिक्षा से, जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, व्यक्ति को अपने प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश से समायोजन करने में सहायता मिलती है। इससे बालक का सामाजिक व्यक्तित्व निर्माण होता है और वह दूसरों से व्यवहार करना सीखता है। इससे उसे जीविकोपार्जन करने तथा जीवन में आवश्यक अन्य कार्यों में भी महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। इससे वह सामाजिक संस्थाओं का अपनाता है और उनके अनुरूप व्यवहार करता है। इससे उसे जीवन में प्रत्येक अवसर पर व्यवहार के स्पष्ट प्रतिमान मिल जाते हैं। इससे वह समाज का उत्तरदायी सदस्य बनता है।

अन्य संस्कृतियों के प्रति सहिष्णुता की शिक्षा

संस्कृति की शिक्षा में जहाँ प्रत्येक बालक को उसके समूह की विशिष्ट संस्कृति की शिक्षा दी जानी चाहिए, वहाँ साथ ही अन्य संस्कृतियों के प्रति सहिष्णुता की भावना रखने की भी शिक्षा दी जानी चाहिए। ऐसा न होने पर भी विभिन्न संस्कृतियों के सदस्य एक–दूसरे से सांस्कृतिक अन्तर के कारण अपने को श्रेष्ठ और दूसरों को पिछड़ा हुआ समझ बैठते हैं, जिसके परिणामस्वरूप परस्पर तनाव बढ़ता है, जो कभी–कभी हिंसात्मक व्यवहार में परिवर्तित हो जाता है। भारतवर्ष में साम्प्रदायिक दंगों के मूल में एक कारण यह भी है। अस्तु, किसी भी समाज के संगठन कायम रखने के लिए अथवा विश्व के विभिन्न समाजों में परस्पर तनाव दूर रखने के लिए यह आवश्यक है कि संसार में सब कहीं बालकों को अपनी संस्कृति की शिक्षा के साथ–साथ अन्य संस्कृतियों की भी शिक्षा दी जानी चाहिए।

इसके लिए संस्कृति के विभिन्न अंगों की शिक्षा में विभिन्न संस्कृतियों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए जहाँ बालक को अपने समूह के धर्म से परिचित कराया जाए, वहाँ उसे यह भी बतलाया जाना चाहिए कि संसार की अन्य संस्कृतियों में मूल रूप से वे ही बातें पाई जाती हैं, जो उसकी अपनी संस्कृति में हैं। केवल उनके स्वरूप में अन्तर होता है। बालक को यह समझाया जाना चाहिए कि किसी भी देश की संस्कृति उसके प्राकृतिक परिवेश से प्रभावित होती है। चूँकि भिन्न–भिन्न देशों में भिन्न–भिन्न प्राकृतिक परिवेश पाया जात है। अस्तु, उनमें सांस्कृतिक अन्तर पाया जाना स्वाभाविक है और इससे किसी भी संस्कृति का ऊँचा या नीचा होना सिद्ध नहीं होता। प्रत्येक मानव समूह को अपनी संस्कृति के अनुसार जीवन–यापन करना अधिक श्रेष्ठ होता है। अस्तु किसी भी अन्य समूहों को दूसरों पर अपनी संस्कृति लादने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए, भले ही वह कितनी

श्रेष्ठ क्यों न हों। इस प्रकार विद्यार्थियो को सांस्कृतिक अन्तर के कारणों से परिचित करा देने से उनमें सहिष्णुता उत्पन्न होगी और वे अपनी संस्कृति को पूर्ण निर्दोष अथवा सर्वश्रेष्ठ नहीं मानेंगे।

अवकाश के सदुपयोग की शिक्षा

सांस्कृतिक शिक्षा का एक मुख्य पहलू अवकाश के समय का सदुपयोग सिखाना है। मनुष्य एक सांस्कृतिक प्राणी है, यह बात उसके अवकाश बिताने के ढंग से पता चलती है। संस्कृत और असंस्कृत व्यक्तियों में भी इसी से भेद मालूम पड़ता है। अस्तु, शिक्षा के द्वारा बालकों को उनके अवकाश के समय को सांस्कृतिक कार्यों जैसे—साहित्य, संगीत, कला, आत्म—विकास आदि के कार्यों में बिताने की शिक्षा मिलनी चाहिए। इस दृष्टि से शिक्षाशास्त्रियों ने विज्ञान की शिक्षा के साथ—साथ मानविकी शास्त्रों और कलाओं की शिक्षा को भी आवश्यक माना है।

अभ्यास के प्रश्न :—

1. सामाजिक विज्ञान की प्रकृति एवं अवधारणा की विवेचना कीजिए।
2. सामाजिक विज्ञान के विकास क्रम का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।
3. परिवार और समाज बच्चों को किस तरह प्रभावित करते है?
4. अपनी पूर्व पीढ़ी से पाप्त संस्कृति जो आपके विकास में सहायक है विवेचना कीजिए।
5. जनतंत्रवादी समाज और शिक्षा के संबंधों का वर्णन कीजिए।
6. संस्कृति की परिभाषा और प्रकृति की विवेचना कीजिए।
7. संस्कृति की प्रकृति और प्रकार की व्याख्या कीजिए।

प्रायोजना

योग्य नागरिक के निर्माण में समाज के योगदान पर प्रायोजना कार्य पूर्ण कीजिए।

****

इकाई – 2

विद्यालय पाठ्यचर्या में सामाजिक विज्ञान

औपनिवेशिक शक्ति

उपनिवेशवाद एक आधुनिक प्रथा है जिसकी शुरूआत मुख्यतः औद्योगिक क्रांति के बाद हुई है। यह ऐसा दौर था जिसमें औद्योगिक राष्ट्रों ने कच्चे माल की आपूर्ति के लिए देश के बाहर के स्त्रोतों की तलाश शुरू की और तैयार माल की बिक्री के लिए देश के बाहर बहुत बड़े बाजार की जरूरत अनुभव की। इन नई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन देशों ने विश्व के अल्पविकसित देशों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की योजना बनाई। अपनी अदम्य शक्ति और धूर्तता के बल पर उन्हें बाहर के देशों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने में विशेष कठिनाई नहीं हुई। उनका यह आधिपत्य जिस रूप में स्थापित हुआ उसे औपनिवेशिक शासन और स्थापित करने वाले लोगों को औपनिवेशिक शक्ति कहा गया। अर्थात् (दूसरे शब्दों में)"औपनिवेशवाद ऐसी प्रथा है जिसके अंतर्गत किसी उन्नत देश के लोग अपने देश की सरकार की अनुमति, सहायता और समर्थन से किसी पिछड़े हुए देश में जाकर बस जाते हैं, वहाँ अपना प्रभुत्व और प्रशासन स्थापित कर लेते हैं। फिर वे अपनी भाषा, रीति–रिवाज और अपने मूल देश के प्रति निष्ठा कायम रखते हुए पराधीन देश के प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों को अपने मूल देश के हित में इस्तेमाल करते हैं। औपनिवेशिक शक्तियाँ यह तर्क देती हैं कि वे पिछड़े हुए और असभ्य लोगों को अपना संरक्षण प्रदान करके उन्हें उन्नत और सभ्य बनाने का कार्य कर रही हैं। इस दायित्व को "श्वेत जाति का भार" कहकर सराहा जाता है। यह केवल स्वार्थ–साधन और शक्ति के प्रयोग को नैतिक गरिमा प्रदान करने का आडंबर मात्र है।

इतिहास साक्षी है कि अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के दौरान जब यूरोप के अनेक देशों ने अपनी–अपनी अर्थव्यवस्था (औद्योगिक क्रांति का दौर) को उन्नत करने का रास्ता ढूढ़ने की कोशिश की तो उन्होंने एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के बहुत बड़े क्षेत्र पर अपने औपनिवेशिक शक्ति का जाल फैला दिया जैसे बेल्जियम, नीदरलैंड, फ्रांस, स्पेन पुर्तगाल और ब्रिटेन ने समुद्र पार के बहुत सारे क्षेत्रों पर अपनी सत्ता स्थापित कर लिया। इन देशों के द्वारा राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित करके उनके प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों का भरपूर दोहन किया।

औपनिवेशिक शासन का उदाहरण हम भारत में देखें तो सर्वप्रथम बंगाल में स्थापित किया गया था। सन् 1797 में बर्दवान (आज को बर्द्धमान) में एक नीलमी औपनिवेशिक शक्ति के द्वारा की गई। यह एक बड़ी सार्वजनिक घटना थी। बर्दवान के राजा द्वारा धारित अनेक महल बेचे जा रहे थे क्योंकि ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा राजस्व की निर्धारित राशि का भुगतान राजा द्वारा नहीं किया गया था। उनसे राजस्व वसूल करने के लिए उनकी सम्पदाएँ नीलाम कर दी जाती थी।

राष्ट्रवादी विकल्प

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इन पराधीन देशों के लोगों के मन में राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ और इन्होंने औपनिवेशिक शक्ति के विरूद्ध लगातार संघर्ष किया। दूसरे विश्व युद्ध के बाद 1947 में भारत ,1948 में श्रीलंका,1957 में घाना स्वतंत्र हुआ और 1994 में दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की समाप्ति

हो गई। परन्तु औपनिवेशिक शासन की समाप्ति से इन देशों की समस्याओं का अंत नहीं हो पाया। पराधीनता के समय इन्हें बहुत ही कमजोर और पिछड़ी हुई अर्थ व्यवस्था विरासत में मिली थी।

राष्ट्रवाद एक भावना भी है और विचारधारा भी है। राष्ट्रवाद प्रेरित व्यक्ति अन्य सब हितों की तुलना में राष्ट्र के हित को ऊँचा स्थान देता है। राष्ट्रवाद का आधार सामान्य भाषा, जाति, धर्म, रीति–रिवाज, संस्कृति आदि होता है। जिस समय देश पर औपनिवेशिक शक्ति का आधिपत्य था, उस समय अपनी स्वाधीनता के लिए अपने आपको संगठित कर 'राष्ट्रीय आंदोलन' को औपनिवेशक शक्ति का राष्ट्रवाद विकल्प के रूप में आया। राष्ट्रवाद का उदय यूरोप में 18वीं शताब्दी के अंत में हुआ। यह इस मान्यता के रूप में व्यक्त हुआ कि प्रत्येक राष्ट्र को अपना शासन स्वयं चलाने का अधिकार होना चाहिए। फ्रांसीसियों और अंग्रेजों का लंबा संघर्ष, राष्ट्रीय भिन्नताओं का परिचायक है। राष्ट्रवाद की सहज–स्वाभाविक अभिव्यक्ति सबसे पहले फ्रांसीसी क्रांति (1789) के रूप में सामने आई।

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान यूरोप में जगह–जगह जो राष्ट्रवाद की लहर चली उसने पूर्वी यूरोप के साम्राज्यों को ध्वस्त करने में प्रमुख भूमिका निभाई। 20वीं शताब्दी में प्रथम विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रीय आत्म निर्णय के सिद्धांत से अनेक नए राष्ट्रों का अस्तित्व सामने आया। इस प्रकार जन–समूह के सदस्य अपने–आपकों एक एक स्वभाविक समुदाय मानते हुए एक राष्ट्र के रूप में पहचानते हुए, वे अपनी सामान्य राजनैतिक आकांक्षाओं, सामान्य हितों, सामान्य इतिहास और सामान्य नियति की चेतना के कारण एकता के सूत्र में बँधे हुए अनुभव करते हैं यही राष्ट्रवाद है। यह भी जरूरी नहीं है कि एक राष्ट्र के लोग एक ही जाति या एक ही धर्म के हों। 1992 तक चैकोस्लोवाकिया में एक ही राष्ट्र में दो पृथक जातियाँ–चैक और स्लोवाक साथ–साथ रहते थे और उन्हें कानून में भी मान्यता दी गई थी। अमेरिका में ईसाई और यहूदी एक ही राष्ट्र के सदस्यों के रूप में मिलजुलकर रहते हैं, भारत में हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी, बौद्ध आदि एक ही राष्ट्र की छत्रछाया में रहते हैं। ये सब भी राष्ट्रवाद का उदाहरण है।

राष्ट्रवाद की जड़ें या स्त्रोत मानव प्रकृति, भौगोलिक निवास तथा प्रेम, प्रजाति, प्रगति, समानता और श्रेष्ठता, धर्म, भाषा, समान इतिहास और परम्पराएँ, आर्थिक कारण, प्रजातंत्र, समान सरकार एवं अन्तर्राष्ट्रीय द्वन्द्वो में देखे जा सकते हैं। इनमें से केवल एक ही कारक राष्ट्रवाद का आधार बन सकता है और इनसे अलग राष्ट्रवाद की भावनाओं का विकास भी किया जाता है। प्रत्येक देश में समाज एवं राज्य इसके विकास के लिए सामूहिक प्रयत्न करता है। शिक्षा के पाठ्यक्रम, राष्ट्रीय ध्वज, पर्व, आदर्श पुरूष, इतिहास, संचार साधन आदि सभी के माध्यम से प्रयत्नपूर्वक राष्ट्रवादी भावनाओं में वर्तमान और आगामी पीढ़ी को शिक्षित एवं दीक्षित किया जाता है। राष्ट्रवाद अपने राज्य को पृथक, स्वतंत्र श्रेष्ठ अग्रणी एवं चिरविजय बनाने की प्रेरणा देता है। राष्ट्रीय प्रतीक राष्ट्र की प्रतिष्ठा तथा सम्मान का सूचक माना जाता है और इनका अनादर कोई भी व्यक्ति सहन नहीं कर सकता है। राष्ट्रवाद की भावना अपने राष्ट्र को विश्व के शिखर पर देखना चाहता है इसलिए आपने देखा होगा, खेलों में अपने देश की टीम की विजय को राष्ट्र विजय के रूप में देखा जाता है और उसके हारने पर उदास होता है। उसकी स्वतंत्रता तथा रक्षा के लिए प्रत्येक बलिदान देने को तैयार रहता है। राष्ट्रवाद के लिए देशभक्ति शब्द को भी प्रयोग किया जाता है।

अंततः हम कह सकते हैं आधुनिक राष्ट्रवाद की जड़ें 18वीं, 19वीं शताब्दी में गहरी हुई, जबकि उसे फ्रांस और अमेरिका की क्रातियों, नेपोलियन के युद्धों आदि ने प्रभावित किया। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद शांति संधियों के आत्म निर्णय को तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद औपनिवेशिक विरोधी अभियान को स्वीकृति मिली राष्ट्रवाद तानाशाही, औपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और विश्व युद्धों का जनक भी रहा है।

स्वतंत्रता पश्चात् सामाजिक अध्ययन की पाठ्यचर्या

विद्यालय पाठ्यक्रम में इन क्षेत्रों(इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र, समाजशास्त्र) के समावेश का औचित्य (Rationale for including these areas (History, Geography, Economics, civics, Sociology) in School Curriculum.

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत आज विद्यालय पाठ्यक्रम में इन क्षेत्रों (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र, समाजशास्त्र) के समावेश का औचित्य यह है कि इन विषयों के एकीकृत स्वरूप के माध्यम से छात्रों में उत्तम नागरिकता के गुणों को विकसित किया जा सकता है या दूसरे शब्दों में यूँ कहा जा सकता है कि विद्यालय पाठ्यक्रम में इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र या नागरिकशास्त्र एवं समाजशास्त्र विषयों की आवश्यक सामग्री सम्मिलित की गई है। परन्तु यहाँ यह प्रश्न अवश्य उठता है कि विद्यालय पाठ्यक्रम में इन विषयों या क्षेत्रों को क्यों सम्मिलित किया गया है ? इनको सम्मिलित करने की क्या तर्कसंगता है ? इन क्षेत्रों का पृथक–पृथक अध्ययन क्यों न कराया जाये ? आदि इस प्रकार के सभी प्रश्नों का उत्तर एक ही है वह है– बालक को समाजोपयोगी सम्पूर्ण ज्ञान को एकीकृत रूप में एक ही स्थान पर उपलब्ध कराना। सामाजिक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य बालक को भौगोलिक वातावरण के साथ–साथ सांस्कृतिक (सामाजिक) वातावरण का ज्ञान कराना है और बालक को यह ज्ञान पाठ्यक्रम के एकीकृत रूप से ही प्राप्त हो सकता है। इस संबंध में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग – 1964–66 ने लिखा है कि ''सामाजिक अध्ययन शिक्षण का उद्देश्य छात्रों को उनके वातावरण का ज्ञान प्राप्त करने, कुछ अभिवृत्तियों, मूल्यों एवं मानवीय संबंधों की समझ उत्पन्न करने में सहायता करने से हजारो समुदाय, राज्य और विश्व के मामलों में विवेकपूर्ण भागीदारी के लिए महत्वपूर्ण हैं। भारत में अच्छी नागरिकता एवं भावनात्मक एकीकरण के विकास के लिए सामाजिक अध्ययन का प्रभावपूर्ण कार्यक्रम आवश्यक है।'' विद्यालय पाठ्यक्रम में एवं शिक्षा व्यवस्था के निम्न माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तरों पर इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र के अध्ययन को सामाजिक अध्ययन विषय के अन्तर्गत रखा और इसके औचित्य के संबंध में माध्यमिक शिक्षा आयोग – 1952–53 ने लिखा है कि – ''इसके माध्यम से छात्र न केवल ज्ञान वरन् अभिवृत्तियों एवं मूल्यों को प्राप्त करने में समर्थ होंगे जो सफलतापूर्वक समूह में रहने और नागरिक दक्षता के लिए आवश्यक हैं वे छात्रों को न केवल राष्ट्रीय देशभक्ति की भावना और राष्ट्रीय विरासत की अनुभूति उत्पन कराने का प्रयास करेंगे वरन् विश्व एकता और विश्व नागरिकता की भावना को प्रबल एवं जीवन्त करेंगे।'' विद्यालय पाठ्यक्रम में इन क्षेत्रों (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र एवं समाजशास्त्र) को सम्मिलित करने के औचित्य के संदर्भ में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं –

1. बालकों में सामाजिक विकास हेतु (for social development in children)
2. बालकों में अन्तर्सम्बन्धित ज्ञान विकसित करने हेतु (for development inter-relationship knowledge in children)
3. बालकों में जीवन के प्रति दृष्टिकोण विकसित करने हेतु (for l development of view of life in children)
4. बालकों में नागरिकता के विकास हेतु (for development of civilization in children)
5. जनतन्त्र का विकास करने हेतु (for development of Democracy)
6. मानव विकास के ज्ञान हेतु (for knowledge of Human development)
7. बालकों में व्यावहारिक कौशलों के विकास हेतु (for the development of Behaviours skills in children)

8. बालकों को पर्यावरणीय समस्याओं के ज्ञान हेतु (for the Knowledge of Evironmental problems for children)

9. दैनिक जीवन की समस्याओं के ज्ञान हेतु (for the Knowledge of daily life problems)

10. व्यक्तित्व विकास हेतु (for the development in personality)

1. बालको में सामाजिक विकास हेतु (For Social development in children - आज यह देखने को मिलता है कि किस प्रकार इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र एवं समाजशास्त्र का विभिन्न रूपों में हमारा समाज के लिए उपयोगी है अर्थात इन विषयों की सामाजिक उपयोगिता है और सामाजिक उपयोगिता से तात्पर्य बालक को सामाजिक ज्ञान हेतु सामाजिक अवधारणाओं एवं कौशलों को स्पष्ट बोध कराने से है। परन्तु यह ज्ञान अलग–अलग क्षेत्रों या विषयों के माध्यम से दिया जाता है जबकि इन्हीं सभी अवधारणाओं एवं कौशलों का बोधात्मक ज्ञान समन्वित रूप में सामाजिक अध्ययन के माध्यम से कराया जा सकता है। अतः इस दृष्टिकोण से इन क्षेत्रों (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र नागरिकशास्त्र एवं समाजशास्त्र) को सामाजिक अध्ययन में सम्मिलित करना उचित ही होगा।

2. बालकों में जीवन के प्रति दृष्टिकोण विकसित करने हेतु (For development view of life in children) - बालकों को जीवन के लिए विस्तृत ज्ञान प्रदान करना सामाजिक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य है जिससे बालक स्वतन्त्र नागरिक के रूप में अपने कर्त्तव्यों एवं आदर्शों का निर्वाह कर सकें इसके साथ–साथ बालकों में सकारात्मक अभिवृत्तियों का विकास हो सके, बालकों में सकारात्मक अभिवृत्तियों का विकास हो सके, बालकों में कौशलों का विकास हो सके, बालकों में कौशलों के विकास हो सकें जोकि सांस्कृतिक,सामाजिक, भौगोलिक, आर्थिक, राजनैतिक दृष्टि से उपयोगी हो अतः इस आधार पर अलग–अलग अनुशासनात्मक रूप में तथा जीवन के प्रति समान दृष्टिकोण होते हुए भी छात्रों को विस्तृत ज्ञान प्रदान करना कठिन होता है इसलिए इन क्षेत्रों में सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान में समावेश करना उचित ही होगा।

3. बालकों में अन्तसंम्बन्धित ज्ञान विकसित करने हेतु (For development Inter-relationship Knowledge in children) - बालकों को इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र एवं समाजशास्त्र विषय आज एक–दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित हैं एवं ये विषय एक–दूसरे के पूरक कहे जाते हैं। बालकों के एक–दूसरे के ज्ञान से ही सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त होता है। परन्तु बालकों को यह ज्ञान अलग–अलग विषय के रूप में प्राप्त होता है। जबकि सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान इन क्षेत्रों का एक समन्वित रूप है। अतः इस दृष्टिकोण से इन विषयों को सामाजिक अध्ययन सामाजिक विज्ञान में समावेश करना उचित ही होगा।

4. बालकों में नागरिकता के विकास हेतु (For development of civilization in children) - हमारे समाज के सभी विद्यालयों का दायित्व यह बनता है कि वे बालकों में एक अच्छे नागरिक गुणों का विकास करें। इसके लिए विद्यालयों में इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र विषयों का पृथक–पृथक अध्ययन कराया जाता है, अतः स्पष्ट है कि इन विषयों को सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान में समावेश करना उचित ही होगा जिससे बालकों को एक समन्वित विषय रूप में एक अच्छे नागरिक के गुणों का ज्ञान प्रदान किया जा सके।

5. जनतन्त्र के विकास हेतु (For development of Democracy) - अच्छे नागरिक के गुण जनतन्त्र का विकास करते हैं। बालकों को यह ज्ञान अलग–अलग विषयों के रूप में प्रदान किया जाता है और इस प्रकार का ज्ञान एक क्षेत्र विशेष की विशेषताओं तक सीमित रहता है परन्तु इस ज्ञान को व्यावहारिक एवं व्यापक तथा उपयोगी बनाने का कार्य सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान द्वारा सम्भव हो जाता है। अतः इन दृष्टिकोण

से इन विषयों (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र) के पाठ्यक्रम को सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान में समावेश किया जाना उचित ही होगा।

6. मानव विकास के ज्ञान हेतु (For Knowledge of Human development) - बालकों को मानव विकास का ज्ञान इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र एवं समाजशास्त्र विषयों के माध्यम से दिया जाता है। मानव विकास का यह ज्ञान बालकों का अलग–अलग विषयों के माध्यम से दिया जाता है अतः इस मानव विकास के ज्ञान को बालकों को एक समन्वित विषय के रूप में सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान के द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए। इस आधार पर विद्यालय पाठ्यक्रम में इन क्षेत्रों (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र एवं समाजशास्त्र) के समावेश की आवश्यकता एवं औचित्य होता है।

7. बालकों में व्यवहारिक कौशलों के विकास हेतु (For development of Behaviour skills in children) - बालकों में व्यवहारिक कौशलों के विकास की दृष्टि से सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान एक उपयोगी विषय है। सामाजिक अध्ययन विविध सामाजिक विज्ञानों का एक व्यावहारिक रूप है। सामाजिक अध्ययन बालकों में ऐसे कौशलों का विकास करता है जो न केवल बालकों के व्यक्तिगत जीवन के लिए उपयोगी है अपितु आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक नैतिक आदि की दृष्टि से भी उपयोगी है। सामाजिक अध्ययन स्वस्थ्य दृष्टिकोण का विकास करके मानव कल्याण की भावना का विकास बालकों में विकसित करता है जो कि अलग–अलग विषयों का अध्ययन करने से सम्भव नहीं है। अतः इस दृष्टि से सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान विषय के अन्तर्गत इन विषय (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र एवं समाजशास्त्र) का समावेश करना उचित ही है।

8. बालकों को पर्यावरणीय समस्याओं के ज्ञान हेतु (For Knowledge of Environmental Problems for Children) – बालकों को अलग–अलग विषयों का अध्ययन करने से दैनिक जीवन की सामाजिक एवं पर्यावरणीय समस्याओं का ज्ञान पूर्ण रूप से प्राप्त होना कठिन होता है क्योंकि अलग–अलग विषयों के अध्ययन द्वारा बालकों को एक साथ सही–सही ज्ञान प्राप्त नहीं होता है, वह सीमित एवं अधिक ज्ञान ही प्राप्त कर पाते हैं। इसके वितरीत सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान विषय के अंतर्गत बालक न केवल पर्यावरणीय समस्याओं को समझने में समर्थ होते हैं अपितु पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के मार्ग भी खोज लेते हैं। अतः इन क्षेत्रों (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र) को विद्यालय पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना अति महत्वपूर्ण एवं उचित ही है।

9. दैनिक जीवन की समस्याओं के ज्ञान हेतु (For the Knowledge of daily life problems) - सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान एक ऐसा सामाजिक एवं व्यवहारिक विज्ञान है जो बालकों को दैनिक जीवन की समस्याओं का पूर्ण ज्ञान कराता है इसके अतिरिक्त बालकों को उन दैनिक समस्याओं के समाधान के लिए भी दिशा प्रदान करता है। अतः इन क्षेत्रों (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र एवं समाजशास्त्र एवं समाजशास्त्र) को सामाजिक अध्ययन/सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत सम्मिलित करने का औचित्य बना ही है।

10. व्यक्तित्व का विकास हेतु (For the development of Personality) - बालकों के व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में सामाजिक अध्ययन/सामाजिक विज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामाजिक अध्ययन बालकों में नैतिक गुणों के विकास के साथ–साथ व्यक्तित्व गुणों का भी विकास करता है। यह बालकों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विभिन्न सामाजिक स्थितियों से अवगत कराता है। सामाजिक अध्ययन बालकों के चारित्रिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अतः सामाजिक अध्ययन की विषय–वस्तु के अंतर्गत इन क्षेत्रों (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र एवं समाजशास्त्र) को सम्मिलित करना उचित है।

अतः विश्लेषणात्मक दृष्टि से कहा जा सकता है कि आज सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान विषय के अन्तर्गत इन क्षेत्रों (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र) की विषयवस्तु को विद्यालय पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना आवश्यक है क्योंकि इनके माध्यम से बालक जीवन के विभिन्न पक्षों को जान पाते हैं तथा व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करते है। इसके अतिरिक्त बालकों में उत्तम नागरिकता एवं प्रजातान्त्रिक गुणों का विकास होता हैं। इसके साथ–साथ बालक सामाजिक, भौगोलिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं ऐतिहासिक आदि विभिन्न समस्याओं का ज्ञान एवं उनके समाधान की योग्यता प्राप्त करते हैं और बालक अपने पर्यावरण या वातावरण के साथ समायोजन करना सीख जाते हैं।

सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या के संबंध में तात्कालिक राष्ट्रीय सोच

सामाजिक विज्ञान की प्रचलित धारणाओं और समाजिक विज्ञानों के अध्ययन में जिन मुद्दों को संबोधित करने की जरूरत है उनको ध्यान में रखते हुए सामाजिक विज्ञान के अध्यापन को लेकर गठित राष्ट्रीय फोकस समूह ने सामाजिक विज्ञान के संशोधित पाठ्यक्रमों के लिए कुछ बुनियादी बिंदु सुझाए हैं। पाठ्यपुस्तकें ऐसी हों जो जिज्ञासा जगाएँ, आगे अध्ययन और अवलोकन में पाठ्यपुस्तक से आगे निकलें।

जैसा कि कोठारी समिति ने ध्यान दिलाया था, सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या अब तक विकासात्मक मुद्दों पर जोर देती रही है। ये महत्वपूर्ण तो हैं पर समानता, न्याय और सम्मान जैसे आदर्शों को समाज और राजनीति में समझने की दिशा में पर्याप्त नहीं कहे जा सकते । 'विकास' में व्यक्तियों की भूमिका को अक्सर बढ़ा–चढ़ाकर पेश किया जाता है। इस विषय में एक ज्ञानमीमांसात्मक परिवर्तन सुझाया गया है, ताकि भारतीय राष्ट्र को लेकर बहु विधि कल्पना को अध्ययन का हिस्सा बनाया जा सके। राष्ट्रीय दृष्टिकोण व स्थानीय दृष्टिकोण में संतुलन होना चाहिए। साथ ही, भारतीय इतिहास को अलग से न पढ़ा कर विश्व के अन्य क्षेत्रों के विकास का संदर्भ भी उसमें शामिल होने चाहिए।

बच्चे उसी वातावरण में सीख सकते हैं। जहाँ उन्हें लगे कि उन्हें महत्वपूर्ण माना जा रहा है। हमारे स्कूल आज भी सभी बच्चों को ऐसा महसूस नहीं करवा पाते। सीखने को आनंद व संतोष के साथ रिश्ता होने के बजाए भय, अनुशासन व तनाव से संबंध हो तो यह सीखने के लिए अहितकारी होता है। आज यह आवश्यक है कि हमारे सभी बच्चे महसूस करें कि वे सभी, उनका समुदाय, उनकी भाषा और संस्कृति महत्वपूर्ण है। इन्हें अनुभव के ऐसे संसाधनों के रूप में देखा जाए जिन्हें विद्यालय में जाँचा तथा विश्लेषित किया जाना है; उनकी विविध क्षमताओं को मान्यता मिले; यह माना जाए कि सभी बच्चों में सीखने की क्षमता है और सभी की ज्ञान, एवं कौशलों तक पहुँच हो और वयस्क समाज उन्हें सबसे अच्छा करने के योग्य माने। ज्यों–ज्यों हमारे स्कूलों का विस्तार हो रहा है और ज्यादा संख्या मे समाज के सभी वर्गों के बच्चों को हम उनमें शामिल कर रहे हैं, हम इन आवश्यकताओं की महत्ता के प्रति अपेक्षाकृत अधिक जागरूक हो रहे हैं। दोपहर का भोजन, ढाँचागत सहायता और समावेशी शिक्षा के शिक्षाशास्त्रीय सरोकार वर्तमान में होने वाले सबसे महत्वपूर्ण विकासात्मक बदलाव में से हैं।

सभी प्रकार के शारीरिक दण्डों के विरूद्ध कड़ा रूख अपनाने की जरूरत है। स्कूल की सीमाओं को समाज की जरूरत है। स्कूल की सीमाओं को समाज के प्रति अधिक उदार होना होगा। साथ ही, पाठ्यचर्या का बोझ और परीक्षा संबंधी तनाव के सभी आयामों पर तात्कालिक ध्यान देने की आवश्यकता है। प्राथमिक से लेकर माध्यमिक स्कूल और उसके बाद भी शारीरिक एवं भावनात्मक सुरक्षा हर प्रकार के सीखने की आधारशिला है।

सामाजिक विज्ञान विषय शिक्षण के समस्त विषयों की सामान्य शिक्षा का एक महत्वपूर्ण भाग हैं यह छात्राध्यापकों को समाज के प्रभावी सहयोगी और उपयोगी सदस्य बनने के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल और आत्मविश्वास के लिए सही दृष्टिकोण प्रदान करता है। सामाजिक विज्ञान की विषय वस्तु का चयन मुख्य रूप से

भूगोल, इतिहास, राजनीति शास्त्र जैसे विषयों से किया जाना चाहिए। वर्तमान समय में सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या की रचना छात्रों के लिए वैश्विक ढंग से सोचने तथा स्थानीय रूप से कार्यों में समन्वय करने में सहयोगी है। इस विषय को और प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक सामाजिक सरोकारों को भी ध्यान में रखना होगा।

सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का लक्ष्य विद्यार्थियों में आलोचनात्मक मानसिक एवं नैतिक क्षमता का विकास करना होना चाहिए! ताकि उन असामाजिक शक्तियों से सावधान रह सकें जो इन मूल्यों को खतरा पहुँचाती हैं। सामाजिक विज्ञान के अध्ययन से विद्यार्थियों की जानकारी के साथ–साथ सामाजिक कौशलों जैसे आलोचनात्मक चिंतन, आरेखों और मानचित्रों को पढ़ना और उनकी व्याख्या करना इत्यादि का विकास होगा। सामाजिक विज्ञान इस बात को मानता है कि स्वतंत्रता, विश्वास, मूल्यों का मजबूत आधार पाठ्यचर्या में सम्मिलित होना चाहिए!

सामाजिक विज्ञान मे इतिहास के अंतर्गत स्वतंत्रता संग्राम के साथ–साथ आधुनिक भारत के अन्य पहलुओं के साथ विश्व की अन्य मांगों के महत्वपूर्ण घटनाक्रम को भी पढ़ा जा सकता है। इतिहास को इस तरह पढ़ाया जाना चाहिए कि उसके माध्यम से विद्यार्थियों में अपने विश्व की बेहतर समझ विकसित हो सके और वे अपनी पहचान को भी समझ सकें जो समृद्ध तथा विविध अतीत का हिस्सा रहीं हैं। बच्चे यह तुलना कर सकें कि सत्ता और नियंत्रण के तरीके पहले क्या थे और आज क्या हैं? भूगोल की शिक्षा इस बात को ध्यान में रखकर दी जानी चाहिए कि बच्चे के मस्तिष्क में पर्यावरण और संरक्षण तथा विकास सम्बन्धी मुद्दों के प्रति आलोचनात्मक परख विकसित हो सके।

राजनीति विज्ञान में भारतीय संविधान के दार्शनिक आधारों पर ध्यान दिया जाए और समानता, उदारता, स्वतंत्रता, न्याय, भाईचारा, धर्मनिरपेक्षता तथा उत्पीजन से मुक्ती जैसे मुद्दों की गहराई से चर्चा हो। अर्थशास्त्र में लोगों के दृष्टिकोण से विभिन्न विषयों की चर्चा होनी चाहिए।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को विषयों का विकल्प चुनने का अवसर मिलता है। कुछ के लिए यह स्तर औपचारिक शिक्षा का अंतिम चरण होता है। कुछ विद्यार्थी रोजगार की तलाश में निकल जाते हैं। कुछ विद्यार्थियों के लिए यह उच्च शिक्षा का आधार बनता है। यहाँ आधार इस तरह तैयार किया जाना चाहिए कि विद्यार्थी अपने चुने हुए मार्ग पर सार्थक रूप से कुछ कर सके विद्यार्थियों को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे अपने विषय का चुनाव अपनी पसंद से कर सकें।

अधिगम क्रिया को सहभागी बनाने के लिए आवश्यकता इस बात की है जिसमें सूचना देने के स्थान पर वाद–विवाद और चर्चा परिचर्चा की जाए। सीखने का यह तरीका शिक्षक एवं शिक्षार्थी को सामाजिक वास्तविकताओं के प्रति सजग करेगा।

यह सुझाया जाता है कि नागरिकशास्त्र की जगह 'राजनीतिशास्त्र' शब्द का प्रयोग किया जाए। नागरिकशास्त्र को भारतीय स्कूली पाठ्यचर्या में अंग्रेजी राज में सरकार के प्रति बढ़ती निष्ठाहीनता देखते हुए शामिल किए गया था। नागरिकशास्त्र में आज्ञाकारिता और निष्ठा पर जोर था। राजनीतिशास्त्र नागरिक समाज को एक ऐसे क्षेत्र के रूप में देखता है जो संवेदनशील सवाल उठाने वाले, सोचने–विचारने वाले और बदलाव लाने वाले नागरिक बनाए।

किसी भी ऐतिहासिक और समकालीन विषय पर चर्चा के दौरान जेंडर संबंधी सरोकारों को संबोधित करना जरूरी है। इसके लिए सामाजिक विज्ञान में पितृसंत्तात्मक मान्यताओं में बदलाव की जरूरत है।

बच्चों के स्वास्थ्य और बच्चों के विकास संबंधी बदलावों के सामाजिक पहलुओं, जैसे माता–पिता से संबंधित करने की आवश्यकता हैं। बच्चों की स्वास्थ्य संबंधी जरूरतों और किशोर/युवाओं की समस्याओं को संबोधित करने के लिए विभिन्न स्तरों पर कार्यक्रम बनाकर समाधान के प्रयास भी आवश्यक है।

मानव अधिकार की अवधारणा का संदर्भ सार्वभौमिक है। यह आवश्यक है कि बच्चों को सार्वभौमिक मूल्यों से और ऐसे तरीकों से परिचित कराया जाए जो उनकी उम्र के अनुकूल हों। रोजमर्रा के मुद्दों के संदर्भ में जैसे पानी की समस्या आदि की भी चर्चा की जा सकती है ताकि बच्चे मानव सम्मान और अधिकार के मुद्दों के प्रति जागरूक बनें।

21वीं सदी में संचार माध्यम और फेक न्यूज

वर्तमान समय में आपके व आपके परिवार के पास ऐसे अनेक तरीके व उपकरण हैं जिनके माध्यम से दूर स्थित देश–दुनिया की तमाम खबरें आप तक पहुँचती रहती हैं। दूसरी ओर आप भी विभिन्न तरीकों व उपकरणों के माध्यम से दूर बैठे लोगों तक अपनी बात पहुँचाते रहते हैं। जो चीज़ें हमारे विचारों और संदेशों को दूसरे व्यक्तियों तक पहुँचाने का काम करती हैं या दूसरों से हम तक खबरें लाती हैं उन्हें संचार के उपकरण या माध्यम कहा जाता है।

आप उन तरीकों की एक सूची बना सकते हैं जिनकी मदद से आप तक खबरें व विचार और अन्य सूचनाएँ पहुँचती हैं?

इन संचार उपकरणों के अलावा भी हम अपने दैनिक जीवन में सूचनाओं व विचारों के आदान–प्रदान के लिए कई तरीके अपनाते हैं जिसमें मौखिक, लिखित और ध्वन्यात्मक संप्रेषण के अलग–अलग तरीके शामिल हैं जैसे बोलना, चिल्लाना, चित्र बनाना, इशारे करना, ढोल बजाना, लिखना आदि। यह संप्रेषण के मूलभूत तरीके हैं। आधुनिक संचार उपकरणों के विकास के पूर्व से ही मानव समाज में संदेशों व विचारों के आदान–प्रदान के उपर्युक्त विविध तरीके प्रचलित रहे हैं।

आपने नवजागरण के समय छपाई प्रेस के आविष्कार और उसके प्रभाव के बारे में सुना होगा। औद्योगिक क्रांति के बाद कई ऐसी मशीनों का आविष्कार हुआ जिससे सूचना व विचारों का आदान–प्रदान तीव्र और आसान हो गया। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में ग्रामोफोन, टेलीग्राफ, टेलीफोन, वायरलेस टेलीग्राफ, टाईपराइटर, चलचित्र, कैमरा जैसे उपकरणों व मशीनों का विकास हुआ। इन आविष्कारों से कम समय में और दूर–दूर रहने वाले अधिकाधिक लोगों तक किसी संदेश या विचार को पहुँचाना आसान हो गया। सम्भवतः इस दौरान विकसित उपकरणों व मशीनों ने 20वीं सदी के समाज को गहन रूप से प्रभावित किया।

पिछले 150 वर्षों में संचार माध्यमों की भूमिका इस कदर बढ़ी है कि आज एक ही घटना को विश्व भर के लोग एक साथ देख व अनुभव कर सकते हैं, एक तरह के विचारों के बारे में सोच सकते हैं और एक ही तरह की चीज़ों के लिए चाहत रख सकते हैं। संचार माध्यम विशाल पैमाने पर लाखों लोगों को जो अलग–अलग देश, भाषा व संस्कृति के हैं, सबको एक सी सूचना, एक से विचार और एक से उत्पादनों के विज्ञापन एक ही समय पर उपलब्ध कराता है। अतः संचार माध्यम केवल सूचना पहुँचाने का माध्यम न रहकर बहुजन माध्यम या मॉस मीडिया बन गया है जो विशाल जन समुदाय के सोच–विचार और जीवनशैली को प्रभावित और नियंत्रित करने लगा है। अब हम इसके विभिन्न पक्षों को गहराई से समझने का प्रयास करेंगे।

संचार माध्यम क्या हैं?

संचार का सामान्य अर्थ है किसी वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान में भेजना या ले जाना। लेकिन जब संप्रेषण के संबंध में संचार का उपयोग किया जाता है तो इसका अर्थ होता है किसी बात या संदेश को एक स्थान से दूसरे स्थान तक या एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाना। अखबार और चिट्ठी दो भिन्न प्रकृति के संचार माध्यम हैं। चिट्ठी किसी निश्चित व्यक्ति या व्यक्तियों के लिए लिखी जाती है जो उसके प्राप्तकर्ता और पाठक दोनों होते हैं जबकि अखबार व पत्रिका एक विस्तृत पाठक समूह के लिए लिखे जाते हैं। इस प्रकार के संचार माध्यम जो लोगों के बड़े समूह तक संदेशों व विचारों को पहुँचाते हैं उसे हम बहुजन संचार माध्यम (Mass Medi या Medium of Mass Communication) कहते हैं।

मुद्रित माध्यम (Print Media)

छपाई के प्रभाव से पूरे यूरोप में साक्षर व्यक्तियों की संख्या और मुद्रित सामग्रियों की मात्रा लगातार बढ़ती गई। 19वीं सदी तक मुद्रित सामग्री के आधार पर समाज में नए संस्थान उभरने लगे, जैसे पुस्तकालय, पुस्तक मेला आदि। 1814 तक यूरोप में भाप की शक्ति से चलने वाले प्रिंटिग प्रेस और 1837 के बाद रंगीन प्रिंटिग प्रेस निर्मित हुए। बीसवीं सदी के प्रारंभ से ही विद्युत छपाई मशीनों का उपयोग होने लगा। इससे और कम कीमत पर अधिक मात्रा में पुस्तकें व पत्रिकाएँ छप सकती थीं।

अखबार – 19वीं सदी के शुरुआती दशकों में अमेरिका और ब्रिटेन में दो तरह के अखबार छपते थे। पहले व्यापारियों के लिए व्यावसायिक खबरें और दूसरे राजनैतिक पार्टियों के विचारों को फैलाने वाले अखबार। अखबारों का एक तीसरा रूप भी प्रचलन में था जो कम पैसे में कई तरह की खबरें कामगार लोगों तक पहुँचाता था। इसे पेन्नी प्रेस या दमड़ी पत्रिका कहते थे। इसमें अपराध, अफवाह व मानवीय अभिरुचि के अन्य विषय छापे जाते थे। अखबारों में विज्ञापन के माध्यम अधिक–से–अधिक लोगों तक अपने उत्पाद की जानकारी पहुँचाई जा सकती थी। अखबारों के माध्यम से विज्ञापनों के प्रसार ने उपभोग और उत्पादन की प्रक्रियाओं को व्यापक बनाया। 19वीं सदी के अखबार विज्ञापनों से होने वाली आय का उपयोग तो करते थे पर वे उस पर निर्भर नहीं थे लेकिन 20वीं सदी के अखबार विज्ञापनों की आय पर ज़्यादा निर्भर हो गए। 19वीं सदी के आखिरी और 20वीं सदी के शुरुआती दशकों में फोटोग्राफ युक्त अखबारों की माँग बढ़ गई। इसके कारण अखबारों के विज्ञापन ज़्यादा प्रभावशाली हुए।

19वीं सदी में जब ब्रिटेन में अखबारों की शुरुआत हुई तब वह राजनैतिक उथल–पुथल का समय था। लोकतांत्रिक चुनावों में केवल उच्च वर्ग भाग लेते थे और निम्न तबके इसके विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। इसे देखते हुए वहाँ की सरकार ने अखबारों पर कड़ी पाबंदियाँ लगाईं ताकि शासन–विरोधी विचार लोगों में न फैले। अखबारों की खबर व विचारों का सेंसरशिप होता और अप्रिय खबरों को प्रकाशित करने की अनुमति नहीं थी। अखबार आम

जनता की पहुँच के बाहर रहे यह सुनिश्चित करने के लिए सरकार उन पर कर लगाती थी जिसे स्टाम्प कहा जाता था। मगर इसका असर उल्टा हुआ, छोटे–छोटे छापाखानों में

अवैध पत्रिकाएँ छपने लगीं और वे लोगों में बहुत लोकप्रिय हुईं। सरकार द्वारा पत्रिकाओं पर कर लगाने का भी विरोध हुआ क्योंकि इसे ज्ञान फैलाने पर कर के रूप में देखा गया। अन्ततोगत्वा 1858 में यह कर समाप्त किया गया और माना जाता है कि इसके बाद पत्रिकाओं का स्वर्णिम युग शुरू हुआ। लेकिन इस युग में पत्रिकाओं पर नियंत्रण सरकार के हाथों से निकलकर बड़े पूँजीपति घरानों के हाथ में चला गया। पत्रिका चलाना बहुत खर्चीला काम था और इसके लिए बहुत अधिक पूँजी का निवेश लगने लगा। यही नहीं इसे चलाने के लिए विज्ञापनों की ज़रूरत थी जो केवल बड़ी कंपनियाँ ही दे सकती थीं। वे न केवल अपने उत्पादों का विज्ञापन करते थे बल्कि अखबारों में किस तरह की खबरें छपेंगी और किस तरह के विचार रखे जाएँगे इन पर भी नियंत्रण करने लगे। जो बड़े पत्रिका घराने थे वे ही इतनी तादात पर पत्रिकाएँ छापकर हर क्षेत्र और प्रदेश में पहुँचा सकते थे छोटे प्रकाशक नहीं कर सकते थे। 1930 तक ब्रिटेन में चार घरानों के हाथ में लगभग आधे पत्र–पत्रिकाओं का संचालन था जिन्हें प्रेस बैरन या छपाई जागीरदार कहा जाता था।

20वीं सदी में अखबार प्रकाशकों में हुए परिवर्तन के कारण अखबारों की भूमिकाओं में परिवर्तन हुआ। अब उनका काम सिर्फ खबरें व विज्ञापन मुहैया कराना नहीं रह गया बल्कि उनके माध्यम से जन समूह को किसी खास दिशा में सोचने के लिए प्रेरित किया जा सकता था। इसके कुछ उदाहरण प्रथम विश्व युद्ध के दौरान देखे जा सकते हैं जब जर्मनी और ब्रिटेन के अखबार एक–दूसरे के प्रति कटुता पैदा करने वाली खबरें छाप रहे थे। इस दौरान दोनों गुट के देशों के अखबारों में अतिराष्ट्रवादी भावनाएँ फैलाने व सेना में भर्ती को प्रोत्साहित करने वाली खबरें प्रमुखता से छपती रहीं। जो भी हो 1980 के दशक तक अखबार ही लोगों तक विचार और खबरें व विज्ञापन पहुँचाने के प्रमुख साधन रहे। ब्रिटेन और अमेरिका जैसे साक्षर देशों में अधिकांश पुरुष और महिलाएँ अखबार पढ़ते थे। ब्रिटेन में उदाहरण के लिए 1980 में लगभग 76 प्रतिशत पुरुष और 62 प्रतिशत महिलाएँ अखबार पढ़ती थीं। 1980 के अन्त तक टीवी जैसे इलेक्ट्रॉनिक माध्यम का विकास हुआ जो छपी पत्रिकाओं का स्थान तेज़ी से लेने लगीं। इस कारण से छपी पत्रिकाएँ गहरे संकट में पड़ गईं।

चित्र 1 भारत में पत्रिका और टीवी मीडिया

भारत में अँग्रेज़ों की हुकूमत की स्थापना के साथ ही अँग्रेज़ी पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ हो गया। 1780 से 1792 के बीच कलकत्ता, मद्रास और बंबई (वर्तमान में कोलकाता, चेन्नई और मुम्बई) से ये पत्रिकाएँ छपने लगीं। भारतीय भाषा में प्रथम पत्रिका की शुरुआत 1818 में मार्शमान द्वारा बंगाल के सीरामपुर में बंगाली भाषा में 'दिग्दर्शिका' नामक पत्रिका से हुई। राजा राममोहन राय प्रथम फारसी साप्ताहिक पत्रिका 'मिरात उल अखबार' 1822 में प्रकाशित करने लगे। भारत के विभिन्न प्रांतों में स्थानीय भाषाओं में पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं। 1860 और 1890 के बीच कई महत्वपूर्ण अँग्रेज़ी दैनिक अखबार छपने लगे जो आज तक चल रहे हैं। इनमें टाइम्स ऑफ

इंडिया, स्टेट्समैन, द हिन्दू प्रमुख हैं। 1881 में 'लोकमान्य तिलक' ने मराठी में प्रसिद्ध राष्ट्रवादी पत्रिका केसरी प्रारंभ की।

भारत में प्रकाशन प्रारंभ होते ही औपनिवेशिक राज्य ने उस पर नियंत्रण करने की कोशिश शुरू कर दी लेकिन इनका लगातार कड़ा विरोध होता रहा और अक्सर राज्य को इन नियंत्रणों को कम करना पड़ा। 1799 में ही पहला कानून बना जिसके अनुसार प्रकाशक को अपना नाम और पता प्रकाशित करना पड़ता था ताकि सरकार ज़रूरत पड़ने पर पूछताछ कर सके और पत्रिकाओं को प्रकाशित करने से पहले सरकारी सेंसर को दिखाकर अनुमति लेनी होती थी। 1878 में भारतीय भाषा पत्रिकाओं पर विशेष नियंत्रण के लिए कानून बनाया गया जिसके अनुसार प्रकाशकों को आश्वासन देना पड़ता था कि वे ऐसा कुछ नहीं प्रकाशित करेंगे जिससे शान्ति भंग हो या सरकार के विरुद्ध हो। इस बात को सुनिश्चित करने के लिए उन्हें एक बड़ी रकम सुरक्षा राशि के रूप में ज़िला मजिस्ट्रेट के पास रखनी पड़ती थी जिसे अप्रिय सामग्री प्रकाशित करने पर वह ज़ब्त कर सकता था। भारतीय प्रकाशकों ने इसका कड़ा विरोध किया और 1881 में इसे हटाया गया। लेकिन इस तरह का कानून 1910 में फिर से लागू हुआ और 1922 में हटाया गया और 1931 में फिर से लागू किया गया। प्रेस कानून के इस इतिहास से स्पष्ट होगा कि भारतीय मध्यम वर्ग ने इन कानूनों का कड़ा विरोध किया और लगातार उसे हटाने पर ज़ोर डाला।

कुछ बड़े परिवारों का नियंत्रण पत्रिकाओं पर क्यों हो जाता है? इसका समाज और देश की राजनीति पर क्या प्रभाव हो सकता है?

क्या विज्ञापन देने वाले भी पत्रिकाओं पर प्रभाव डाल सकते हैं, कैसे?

भारत जैसे देशों में सरकारें ही पत्रिकाओं को सबसे अधिक विज्ञापन देती हैं। इसका पत्रिकाओं पर क्या प्रभाव होगा?

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम

टेलीग्राफ –

1837 में सैमुएल मोर्स ने टेलीग्राफ की खोज किया जिससे सूचना को विद्युत तारों के माध्यम से त्वरित भेजा जा सकता था। टेलीग्राफ मशीन के कारण अब अखबारों के प्रकाशकों के पास पहले की तुलना में अधिक खबरें आने लगीं। अखबारों के लिए खबर इकट्ठी करने की प्रक्रिया में समय बहुत महत्वपूर्ण पहलू बन जाता है। उदाहरण के लिए किसी अखबार को कोई राजनैतिक घटना या कपास के दाम में कमी या वृद्धि की सूचना का जल्दी मिलना उसकी बिक्री को बढ़ा सकता था। टेलीग्राफ के माध्यम से सूचनाओं के तीव्र प्रवाह के कारण वस्तुओं की कीमतों में समानता आने लगती है। अब सूचनाएँ उद्योगपतियों व व्यापारियों के लिए महत्वपूर्ण संसाधन बन गईं।

आपके दैनिक जीवन में जो सूचनाएँ आपको खुशी देती हैं क्या उन्हें भी एक संसाधन माना जा सकता है। पक्ष या विपक्ष में अपने तर्क दें।

अपने बुज़ुर्गों से पता करें कि उनके समय में टेलीग्राम या तार का क्या उपयोग था? अब यह उपयोग क्यों खत्म हो गया?

टेलीफोन –

टेलीफोन के ज़रिए तारों के माध्यम से आवाज़ पहुँचाई जा सकती थी और दो लोग सैंकड़ों किलोमीटर दूरी से एक–दूसरे से बातचीत कर सकते थे। अलेक्जेंडर ग्राहम बेल ने 1876–77 में टेलीफोन का आविष्कार किया था और कुछ ही वर्षों में यह भारत सहित विश्व भर में उपयोग किया जाने लगा। बड़ी कंपनियाँ इसके तार बिछाने और मशीन उपलब्ध कराने के काम में लग गईं।

रेडियो –

बिना तार के आसमान में मौजूद रेडियो तरंगों के माध्यम से संदेश और आवाज़ पहुँचाने का काम तारविहीन रेडियो करता है। 1901 में इटली के मार्कोनी ने सर्वप्रथम अटलांटिक महासागर के पार प्रसारण करके इतिहास रचा था। इसके पूर्व विद्युत तारों के माध्यम से ही दूर संचार संभव था। समुद्रों में और जहाँ विद्युत तार न बिछे हों वहाँ सूचनाओं का संचारण बाधित हो जाता था। प्रारंभ में यह केवल सैनिकों और जहाज़ों के लिए उपयोग किया जाता था लेकिन 1920 के बाद यह मॉस मीडिया की शक्ल लेने लगा।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद अमेरिका में रेडियो प्रसारण स्टेशनों की संख्या तेज़ी से बढ़ने लगी जिसमें बड़ी संख्या में गैर–सरकारी और बिना लाइसेंस वाले रेडियो स्टेशन खुले। 1930 तक 40 फीसदी अमेरिकी घरों में रेडियो पहुँच गया। शुरुआती रेडियो स्टेशनों से अधिकांशतः संगीत कार्यक्रमों के प्रसारण किए जाते थे। बाद में नाटक, कॉमेडी, वार्ता और शैक्षिक कार्यक्रम भी प्रसारित किए जाने लगे। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान रेडियो चैनल युद्ध की खबरों के प्रसारण के साथ–साथ देशभक्ति को उभारने वाले

विविध कार्यक्रमों का प्रसारण करने लगे। इस दौर में राजनैतिक अपील और चुनाव प्रचार के लिए रेडियो महत्वपूर्ण उपकरण बन गए।

1920 के मध्य से दूसरे औद्योगिक देशों, जैसे–फ्रांस, बेल्जियम, जर्मनी, रूस, इटली में भी सामुदायिक उपयोग वाले रेडियो स्टेशन शुरू हुए। 1930 में भारत में सार्वजनिक प्रसारण के लिए ऑल इंडिया रेडियो (आकाशवाणी) की शुरुआत हुई। प्रसारण के माध्यम से लोगों को सूचनाएँ मुहैया कराना, शिक्षित करना एवं मनोरंजन करना इसके प्राथमिक कर्तव्य माने जाते हैं।

फिल्म या चलचित्र –

19वीं सदी के अन्त में 1895 में पेरिस नगर में लूमिए बंधुओं ने पहली बार एक चलचित्र तैयार करके प्रदर्शित किया था। उन दिनों फिल्मों में केवल दृश्य देखे जा सकते थे, आवाज़ नहीं सुन सकते थे। इस कारण वार्तालाप चित्र पर टाईप द्वारा दिखाया जाता था। यह माध्यम इतना प्रभावी और लोकप्रिय हुआ कि दुनिया के अनेक देशों में फिल्में व उन्हें दर्शाने के लिए थियेटर बनने लगे। भारत की पहली फिल्म दादा साहब फालके ने 1913 में बनाई जिसका नाम 'राजा हरिश्चन्द्र' था। फिल्म बनाने में अत्यधिक खर्च होता था और वह लोकप्रिय होकर मुनाफा देगी कि नहीं यह निश्चित नहीं था। इस कारण फिल्मों के निर्माण में भी बड़े पूँजीपतियों का महत्व बढ़ने लगा जो पैसे लगाते थे और यह सुनिश्चित करते थे कि उनमें खास तरह के सामाजिक और राजनैतिक विचारों का प्रसार हो। यही नहीं फिल्म, उत्पादनों व जीवनशैलियों के विज्ञापन का माध्यम भी बनी। अधिक पूँजी लगने के कारण फिल्मों का निर्माण गिने चुने केन्द्रों में होने लगा, जैसे भारत में बंबई और मद्रास (वर्तमान मुंबई और चेन्नई)। ब्रिटेन तथा अमेरिका में और समय के साथ पूरी दुनिया में दिखाई जाने वाली अधिकांश फिल्में अमेरिका के हॉलीवुड में बनने लगीं। इससे संस्कृति का अत्यधिक केन्द्रीकरण और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का खतरा उत्पन्न हो गया।

इन फिल्मों को अपने दौर के प्रतिबिंब की तरह भी देखा जा सकता है। द्वितीय विश्व युद्ध के समय हॉलीवुड में देशभक्ति से भरे और अपने राष्ट्र को बेहतर दिखाने वाली फिल्मों का निर्माण हुआ। इस युद्ध के बाद पहली बार रंगभेद, यहूदी विरोध जैसे सामाजिक मुद्दों पर आधारित फिल्में बनने लगीं। शीत युद्ध के दौरान बनी फिल्मों में भी यह प्रवृत्ति देखी जाती है। इन फिल्मों में पात्रों के माध्यम से राष्ट्रों व समुदायों के बीच संबंधों के पूर्वाग्रह को उभारा जाता है। अधिकांशतः शीत युद्ध की पृष्ठभूमि में बनने वाली जेम्सबॉण्ड श्रृंखला की फिल्मों में नस्लीय पूर्वाग्रह व अंतर्राष्ट्रीय तनावों को आसानी से देखा जा सकता है। भारत में भी विभिन्न दौर में बनी फिल्मों में उस दौर के सामाजिक और राजनैतिक जीवन का असर देखा जा सकता है।

फिल्मों के आने से पहले लोगों का मनोरंजन कैसे होता था? फिल्म और उन साधनों के बीच आप किस तरह के अन्तर और समानता देख सकते हैं?

टेलीविजन –

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संचार की एक नई तकनीक रेडियो का स्थान लेने लगी। यह थी टेलीविजन या टीवी। 1920 के दशक में एक स्कॉटिश इंजीनियर जॉन लेगी बेयर्ड ने बोलने वाले चित्रों के संचार की विधि खोजी जिसे बाद में टेलीविजन का नाम दिया गया। दूर संचार के क्षेत्र में यह एक बड़ी खोज थी। यह फिल्म की तरह एक साथ लाखों लोगों तक पहुँच सकती थी। लेकिन टीवी फिल्मों से फर्क भी थी। रेडियो की तरह इसे घर बैठे और दैनिक काम करते हुए देखा जा सकता था। रेडियो और टीवी लोगों के दैनिक जीवन का हिस्सा बन गए। लगातार खबर और विमर्श और बिंबों के माध्यम से टीवी लोगों पर हावी होती गई।

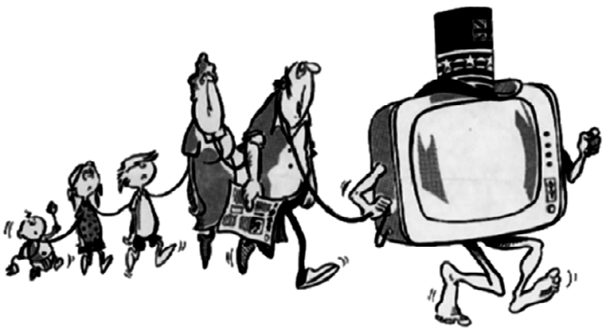

चित्र 2 मीडिया के गुलाम

विभिन्न सर्वेक्षणों से पता चलता है कि ब्रिटेन व अमेरिका जैसे विकसित देशों के लोग अपने खाली समय में निष्क्रिय होकर टीवी देखते हैं। औसतन प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह 4 साल का बच्चा हो या सेवानिवृत्त वृद्ध, रोज़ कम से कम तीन से चार घण्टे टीवी देखता है। जहाँ पहले वे अपने मित्रों से मिलने जाते थे या सैर करने जाते थे या घर पर ही अपनी रुचि की कोई गतिविधि में समय लगाते थे वहाँ लोग अपने सोफे पर लेटकर टीवी देखते हैं। इसके दो महत्वपूर्ण परिणाम बताए जाते हैं। पहला, यह कि लोग विषयों व घटनाओं के बारे में विचार विमर्श करने की जगह उन्हें मनोरंजन की दृष्टि से देखते हैं। यह कहा जाता है कि पत्रिका पढ़ने वाले अधिक सोच–विचार और चर्चा करते हैं बनिस्बत कि वे लोग जो उसी विषय को टीवी में देखते हैं। दूसरा यह पाया गया है कि टीवी के कारण लोग एक–दूसरे के साथ कम समय बिताते हैं जिसके कारण सामाजिक रिश्ते शिथिल होते जा रहे हैं।

टीवी और चुनाव

सितंबर 1960 को राष्ट्रपति पद के दावेदारों (रिचर्ड निक्सन एवं जॉन एफ. कैनेडी) की बहस को पहली बार अमेरिकी टेलीविजन चैनलों द्वारा प्रसारित किया गया। इस दौरान हुई बहस को करीबन 7 करोड़ लोगों ने देखा। 1960 के चुनाव में कैनेडी की विजय हुई। इस चुनाव के बाद किए गए एक सर्वेक्षण से पता चला कि जो लोग ''इस बहस'' को रेडियो के माध्यम से सुन रहे थे उनका अंदाज़ा था कि निक्सन जीतेंगे, वहीं जो लोग टेलीविजन देख रहे थे उनके विचार इससे उलट थे। इस चुनाव में टेलीविजन प्रसारण के दौरान युवा, जोशीले

चित्र 3 अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव में टीवी

और तैयार दिखने वाले कैनेडी को थके, पसीने से लथपथ और बुज़ुर्ग दिखने वाले (पर अधिक अनुभवी) निक्सन की तुलना में अधिक वोट मिले। इस चुनाव का परिणाम राजनीति में टेलीविजन के प्रभाव के एक नई पहलू को उजागर करता है। 20वीं सदी में टेलीविजन किसी व्यक्ति की सामाजिक और राजनैतिक छवि को बनाने वाला असरदार माध्यम बन गया। टेलीविजन के इस प्रभाव के कारण बेहतर होने के साथ–साथ, बेहतर व सक्षम दिखने की ध ारणा सामाजिक और राजनैतिक जीवन का महत्वपूर्ण पहलू बन गई।

आप अपने अनुभव से टेलीविजन के उपुर्यक्त प्रभाव के कुछ उदाहरण संकलित कीजिए।

जहाँ अमेरिका जैसे देशों में रेडियो और टीवी प्रसारण निजी कंपनियों द्वारा होता था वहीं यूरोप, भारत आदि में प्रारंभ से ही प्रसारण पर राज्य का नियंत्रण स्थापित हो गया था। ब्रिटेन में ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन (बीबीसी) की स्थापना सरकार द्वारा 1926 में की गई। इसका खर्च रेडियो व टीवी उपभोक्ताओं से लिए गए कर से निकाला जाता था। 1950 के बाद ही ब्रिटेन में निजी कंपनियों को प्रसारण की अनुमति मिली। भारत में भी लगभग 1990 तक राज्य नियंत्रित दूरदर्शन और आकाशवाणी ही एकमात्र प्रसारक रहे। उसके बाद ही निजी चैनलों को प्रसारण की अनुमति दी गई।

टेलीविजन उपकरणों की संख्या बढ़ने के साथ ही फिल्म दिखाने वाले केन्द्र कम होने लगे। 1960 के दशक तक 5 करोड़ 20 लाख अमेरिकी घरों में टेलीविजन पहुँची थी जो 2006 तक लगभग 28 करोड़ 50 लाख हो गई। वहीं सन् 1965 में ऑल इंडिया रेडियो के द्वारा भारत में टेलीविजन प्रसारण की शुरुआत की गई। सन् 2007 तक भारत के करीबन 12 करोड़ घरों में टेलीविजन पहुँच गई। इस दौरान टेलीविजन प्रसारण की तकनीकी (एंटिना, केबल, सेटेलाईट बॉक्स आदि) में भी निरंतर सुधार होते रहे।

चित्र 4 अपने घर की टीवी पर निक्सन–केन्नेडी चर्चा को देख रहा मध्यम वर्गीय परिवार

1975 तक भारत के 7 शहरों में ही टेलीविजन मौजूद थी जिसमें रोज़ कुछ घण्टों तक न्यूज़ बुलेटिन और अन्य कार्यक्रम प्रसारित किए जाते थे। 1982 में उस समय के एक मात्र टेलीविजन चैनल दूरदर्शन के माध्यम से राष्ट्रीय प्रसारण की शुरुआत की गई। राष्ट्रीय एकता, कृषि, साक्षरता, शिक्षा, और स्वास्थ्य कल्याण के कार्यक्रमों के प्रसारण के माध्यम से सामाजिक बदलाव का कारक बनना दूरदर्शन का प्रमुख उद्देश्य था।

इसके अंतर्गत राष्ट्रवादी भावनाओं को प्रेरित करने वाले सीरियल जैसे–'हम लोग' व 'बुनियाद' प्रसारित किए गए। इसी दौर में दूरदर्शन के द्वारा हिन्दू पौराणिक कथाओं पर आधारित धारावाहिक 'रामायण' एवं 'महाभारत' प्रसारित किए गए। जिन भारतीय घरों में टेलीविजन मौजूद थी वहाँ अधिक से अधिक संख्या में दर्शक इन धारावाहिक कार्यक्रमों को देखने इकट्ठे होते थे। दर्शकों की विशाल संख्या के कारण इन धारावाहिक कार्यक्रमों ने विश्व रिकॉर्ड कायम किया।

1980 के दशक के आखिरी वर्षों से भारत में अधिक से अधिक लोग टेलीविजन सेट खरीदने लगे। इसी अवधि में दूरदर्शन के माध्यम से प्रादेशिक खबरों का प्रसारण भी शुरू हुआ। नब्बे के दशक की आरंभ में भारत में व्यावसायिक या निजी टेलीविजन चेनलों (स्टार टीवी, जी टीवी, सन टीवी, सी.एन.एन.) की शुरूआत हुई। दूरदर्शन से अलग नए टेलीविजन चेनलों की रणनीति अधिकाधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से प्रेरित थी। यह व्यावसायिक टेलीविजन चेनल अधिक से अधिक दर्शकों तक पहुँचने के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा भी करते हैं। टेलीविजन के माध्यम से दर्शकों की बड़ी संख्या तक किसी उत्पाद की जानकारी पहुँचाई जा सकती है, साथ ही दर्शकों को उन उत्पादों के उपयोग के लिए प्रेरित भी किया जा सकता है। अधिक–से–अधिक दर्शकों तक पहुँचने और लाभ की प्रतिस्पर्धा व्यावसायिक टेलीविजन चेनलों को लगातार नए–नए विषयों (थीम) की खोज के लिए प्रेरित करते हैं। परिणामस्वरूप व्यावसायिक चेनलों के आने के बाद मनोरंजक कार्यक्रमों और टेलीविजन में विज्ञापनों की संख्या बढ़ने लगी। परंपरागत पितृसत्तात्मक मूल्यों को प्रोत्साहित करने वाले किसी एक भारतीय परिवार के सदस्यों के आपसी विवाद व महिला पात्रों की बहुलता वाली कहानियाँ बहुत से व्यावसायिक चेनलों की मुख्य थीम बन गई। व्यावसायिक कंपनियाँ अपने उत्पादों और सेवाओं के विक्रय को बढ़ाने और उसे अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए उनके विज्ञापनों में फिल्म के अभिनेताओं, अभिनेत्रियों व जाने–माने लोगों का उपयोग करती हैं। भारत में 20वीं सदी के आखिरी दशक तक मनोरंजन एक प्रौद्योगिकी का रूप ग्रहण कर लिया।

अगर समाचार केवल सरकारी चेनल से ही मिले तो उसका क्या प्रभाव पड़ेगा?

विज्ञापनों के माध्यम से जीवनशैली संबंधी नई–नई आकांक्षाओं की ओर दर्शकों को प्रेरित करने का कार्य किया जाता है कि विज्ञापनों के दावे किस हद तक सही होते हैं?

इंटरनेट और डिजिटल मीडिया – नये युग की मीडिया

कम्प्यूटर का एक प्रभाव यह रहा कि उससे किसी भी सूचना चाहे वह शब्द हो या आवाज़ या चित्र या चलचित्र, सभी को डिजिट या अंकों मे परिवर्तित किया जा सकता है। इससे हर प्रकार की जानकारी को संचित करना और एक जगह से दूसरी जगह भेजना अत्यंत सरल और त्वरित हो गया है। सूचना प्रसारण को और तेज़ और विश्वव्यापी बनाने में उपग्रहों का काफी महत्व रहा है। कृत्रिम उपग्रह जो अंतरिक्ष में पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं इस प्रसारण के आधार हैं। यह वास्तव में मानव

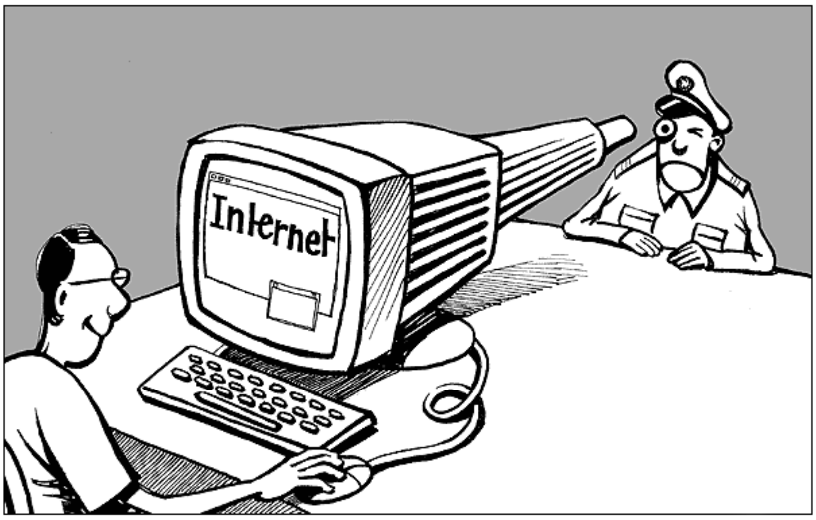

चित्र 5 इस कार्टून में व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए इंटरनेट के खतरों के बारे में क्या कहा जा रहा है?

इतिहास में एक क्रांतिकारी बदलाव है। लोग न केवल चीज़ों को देख या सुन या पढ़ सकते हैं बल्कि उन्हें बदल भी सकते हैं जिस कारण संक्रियात्मक मीडिया (जैसे वीडियो गेम) का विकास हुआ। डिजिटल क्रांति का एक प्रभाव यह हुआ कि कम्प्यूटर, फोन और टीवी का एकीकरण हुआ जैसे कि मोबाइल फोन में। इसका एक प्रभाव यह भी है कि व्यक्ति की भूमिका अब बढ़ने लगी है। जहाँ व्यक्ति एक मूक ग्राहक रहा वहीं वह सक्रिय भागीदार बन सकता है। वह क्या देखना चाहता है या पढ़ना चाहता है क्या जानकारी पाना चाहता है उसे वह अपने द्वारा निर्मित समय में देख सकता है। वह अपने विचार और चित्रों को भी प्रसारित कर सकता है। यह संभव हुआ इंटरनेट के द्वारा जो कि इस डिजिटल क्रांति का ही एक पक्ष है। इंटरनेट वास्तव में विश्व के सभी कम्प्यूटरों व फोन को आपस में जोड़ने का काम करता है। यह कार्य 1990 के बाद तीव्र गति से हुआ।

इंटरनेट और डिजिटल क्रांति के चलते आज हर व्यक्ति पूरे विश्व से जुड़ सकता है और दुनिया भर की जानकारी, मनोरंजन के साधन और लोगों से संपर्क पा सकता है। ये केवल मनोरंजन और जानकारी के स्रोत न होकर खरीद–फरोख्त जैसे आर्थिक क्रियाकलाप, बैंकिंग का प्रमुख साधन बन गए हैं। आज कंपनियाँ त्वरित ही करोड़ों रुपए विश्व के किसी भी देश में निवेश कर सकती हैं या बाहर निकाल सकती हैं। इसी तरह ये साधन विश्व में लोगों को जोड़ने व आपसी संवाद और कार्यवाही के माध्यम बन गए हैं। लोग जिनसे हम कभी मिले नहीं हैं, उनसे संवाद और विवाद तथा उनसे मिलकर कार्ययोजना बना सकते हैं। ये आजकल जन आंदोलनों में व्यापक रूप से उपयोग किए जा रहे हैं। साथ ही हर व्यक्ति के विभिन्न क्रियाकलापों पर निजी कंपनियाँ व सरकारें नज़र रख सकती हैं और इस जानकारी का उपयोग और दुरुपयोग भी कर सकती हैं। इंटरनेट का इतना गहरा प्रभाव रहा है कि समाजशास्त्री अभी भी उसके असर का अध्ययन कर रहे हैं और उसके विभिन्न पक्षों को समझने का प्रयास कर रहे हैं।

वैश्वीकरण और संचार व मीडिया में हुए बदलाव के बीच संबंधों की व्याख्या कीजिए?

मॉस मीडिया, समालोचनात्मक चिन्तन और मनोरंजन

किसी देश में लोकतंत्र वहाँ होने वाले सार्वजनिक बहस व चर्चा पर निर्भर है। किस हद तक वहाँ के लोग विमर्शों व चर्चाओं में भाग लेते हैं और उनके बारे में विचार करते है उससे वहाँ के लोकतंत्र का स्वास्थ्य निर्धारित होता है लेकिन यह देखा जा रहा हैं कि वर्तमान युग के मॉस मीडिया सार्वजनिक चर्चाओं को केन्द्रीकृत करता है और विमर्श की जगह मनोरंजन पर जोर देता है। पहले छोटे समूहों में चर्चाएँ होती थीं और उनमें लोगों की भागीदारी अधिक थी और विचारों की विविधता भी अधिक थी लेकिन मॉस मीडिया द्वारा संचालित बहस बहुत कम लोगों में होता है और लाखों लोग उसे देखते हैं जिन्हें बोलने व अपने विचार रखने के मौके नहीं हैं। अतः लोग सोचने की जगह कार्यक्रमों से मनोरंजन की ही अपेक्षा करते हैं।

फेक न्यूज (असत्य समाचार) के बारे में अपने शब्दों में लिखिए।

विज्ञापन :–

विज्ञापन लोगों का ध्यान आकर्षित करने का एक तरीका है। आज हम चारों ओर अपने आपको विज्ञापनों से घिरा हुआ पाते हैं। हम इन्हें टेलीविजन पर देखते हैं, रेडियो पर सुनते हैं सडकों पर देखते हैं तथा समाचार पत्र और पत्रिकाओं में पढ़ते हैं। यहाँ तक कि टैक्सियों और रिक्शों पर भी विज्ञापन दिखाई पड़ता है। टेलीविजन ,रेडियो, थिएटर में बीच–बीच में विज्ञापन आते रहते हैं।

आखिर विज्ञापन क्यों करते हैं ? ये किस तरह हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं ?

किसी उत्पाद या सेवा को बेचने के उद्देश्य से किया जाने वाला जनसंचार विज्ञापन कहलाता है। इनमें हमें दृश्य और श्रव्य सूचना इस प्रकार दी जाती है कि विज्ञापन करने वाले की इच्छा के प्रति हम अपनी सहमति दें। विज्ञापन वस्तुओं को ऐसे लोगों तक पहुँचाने का कार्य करता है जो यह मान चुके होते हैं कि उन वस्तुओं की उसे कोई जरूरत नहीं है। किसी भी तथ्य को यदि बार–बार दोहराया जाए तो वह सत्य प्रतीत होने लगता है। विज्ञापन यही कार्य करता है। टेलीविजन का विज्ञापन सबसे अधिक प्रभावी है। जब आप अपना पसंदीदा कार्यक्रम देख रहे हों और इस समय विज्ञापनों को दिखाया जाए तो आप उसे जरूर देखते हैं और उस पर विचार करते हैं।

विज्ञापन लोगों की निज़ी भावनाओं को पुकारता है। इसीलिए कई बार जब लोग उस विज्ञापित वस्तु को नहीं खरीद पाते हैं तो उन्हें बुरा लगता है। विज्ञापन उत्पादों को बेचने के अलावा ये भी बताते हैं कि हमें अपना जीवन कैसे जीना चाहिए, हमारी महत्वाकांक्षाएँ तथा स्वप्न कैसे हों, हम अपने प्रेम की अभिव्यक्ति कैसे करें और चुस्त,सफल और सुन्दर होने का तात्पर्य क्या है? लोकतंत्रीय समाज का नागरिक होने के कारण हमें अपने जीवन पर विज्ञापनों से पड़ने वाले सशक्त प्रभाव के बारे में सजग रहना जरूरी है। विज्ञापन क्या करते हैं? इसके बारे में तर्कों के साथ सोचने के पश्चात हम बेहतर निर्णय ले सकेंगे कि हमें अमुक वस्तु खरीदनी है या नहीं।

विज्ञापन से समाज को क्या सीख मिलती है। समूह में चर्चा कीजिए।

गतिविधि –

1. विभिन्न समाचार पत्रों में छपे विज्ञापनों को एकत्र कर उनमें दिए संदेशों का क्लॉज बनाएँ।
2. समाचार पत्रों से सरकार की विभिन्न योजनाओं के विज्ञापनों की कतरनों का क्लॉज तैयार कीजिए।

3 सड़क सुरक्षा पर विज्ञापन तैयार कीजिए।

अभ्यास के प्रश्न

1. विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक विज्ञान/अध्ययन के अध्ययन में वर्तमान बोध की विवेचना कीजिए।
2. विद्यालय पाठ्यक्रम में इतिहास और भूगोल के समावेश का औचित्य का वर्णन कीजिए।
3. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के चार प्रमुख उदाहरण दें।
4. मुद्रित माध्यम और टीवी के संप्रेषण में आप क्या समानता और अन्तर देखते हैं? किसमें सोच विचार और चिन्तन के लिए अधिक संभावना है और आपको कौन सा माध्यम अधिक प्रभावी लगता है?
5. आधुनिक संचार माध्यम के विभिन्न पहलुओं – सूचना देना, संवाद का माध्यम बनना, मनोरंजन और लोगों की सोच और अभिरूचियों को प्रभावित करना, उनपर सरकार की निगरानी रखना इत्यादि दृष्टि से माबाईल फोन की समीक्षा करें।
6. लोकतांत्रिक संविधान नागरिकों को विचार और अभिव्यक्ति की आजादी देता है। ऐसे में सरकारों द्वारा संचार माध्यमों पर नियंत्रण या फिर सेंसरशिप कितना उचित है?
7. मॉस मीडिया बड़े कंपनियों या घरानों के नियंत्रण में क्यों आ जाते हैं? किस तरह की मीडिया इनके नियंत्रण से मुक्त हो सकते हैं?
8. क्या यह कहना सही है कि हमें वही सूचनाएँ मिलती हैं जो बडी कंपनियाँ और सरकारें चाहती हैं और हमें अपने हित की बातें जानने और समझने से रोका जाता है?
9. आधुनिक मॉस मीडिया में विज्ञापनों की क्या भूमिका है?

10. चुनाव में किस–किस तरह के संचार माध्यमों का उपयोग किया जाता है? क्या आपको लगता है कि इससे पैसे और चमक–धमक वालों के जीतने की संभावना अधिक बढ़ जाती है?

2. इन प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में दें।

क. सामान्य संचार माध्यम जैसे पत्र और मॉस मीडिया में क्या अन्तर है?

ख. अपने प्रदेश में बिकने वाले चार प्रमुख समाचार पत्र और चार पत्रिकाओं के नाम लिखें।

ग. छपाई माध्यम और डिजिटल माध्यम के बीच प्रमुख फर्क क्या है?

घ. मोबाईल फोन का लोकतांत्रिक आंदोलनों में क्या उपयोग हुआ – कुछ उदाहरण देकर बताएँ।

ड़. किस तरह के संचार माध्यम आज गायब हो रहे हैं? उनकी जगह किसने ली? कुछ उदाहरण दें।

परियोजना कार्य

1. आप कौन–सी पत्रिका पढ़ते हैं? उसके विचारों को समझने के लिए लगातार एक सप्ताह उसके संपादकीय लेखों को पढ़ें। विभिन्न सामयिक मुद्दों पर आपके अखबार का क्या विचार है लिखिए।
2. आपकी मनपसंद टीवी कार्यक्रम में कितने मिनट विज्ञापन दिखाये जाते हैं और कितने मिनट कार्यक्रम चला – इसकी गणना करके एक पोस्टर तैयार कीजिए।
3. आपके गाँव या शहर में पारंपरिक सूचना और मनोरंजन के क्या तरीके थे – आज उनकी क्या स्थिति है। इस पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

****

इकाई – 3

इतिहास शिक्षण और इतिहास की समझ

इतिहास का अर्थ :– शाब्दिक दृष्टि से इतिहास के अर्थ को अलग–अलग प्रकार से देखा जा सकता है भारतीय परंपरा के अनुसार इतिहास का अर्थ है– "ऐसा कभी हुआ है" इससे इतिहास अतीत की घटनाओं की ओर संकेत करने वाला विषय रह गया है। उर्दू भाषा में इतिहास को "तारिख" शब्द से संबोधित किया जाता है – लेकिन इसे भी इतिहास शब्द से संबोधित किया जाता है – लेकिन उससे भी इतिहास शब्द स्पष्ट नहीं होता क्योंकि इतिहास केवल तारिखों का संग्रह मात्र नहीं है। अंग्रेजी में इतिहास को "History" शब्द से उच्चरित किया जाता है जिसका अर्थ है जानना या सत्यान्वेषण करना लेकिन किस वस्तु को जाना जाए या किसका सत्यान्वेषण किया जाए यह स्पष्ट नहीं होता।

इतिहास तीन शब्दों का मेल है इति+ह+आस इनका अर्थ है 'ऐसा ही हुआ' शब्दकोष के अनुसार इतिहास का अर्थ है "सार्वजनिक घटनाओं का लेखा" इससे इतिहास का अर्थ पर्याप्त मात्रा में स्पष्ट होता है कि भूतकाल में इस पृथ्वी पर जो कुछ भी घटित हुआ है उसका सत्यान्वेषण और उल्लेख ही इतिहास है इस पृथ्वी पर हजारों सजीव तथा निर्जीव पदार्थ हैं जिनमें विविध कारणों से घटनाएँ घटित होते रहती हैं। पर्वत टूटते हैं जंगल नष्ट होते हैं कुछ प्रजातियाँ विलुप्त होती हैं कुछ नई विकसित होती हैं। किन्तु हम यहाँ जिस इतिहास की बात कर रहे हैं वह मानवीय घटनाओं से संबंध रखता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि मानवीय घटनाओं के सत्यान्वेषण को ही इतिहास कहते हैं। मानवीय जाति के विचार कार्य कथन आदि से संबंधित समस्त घटनाओं का अध्ययन हम इतिहास विषय के अन्तर्गत करते हैं। मैटलैण्ड ने इसी तथ्य को सामने रखकर लिखा है कि "मनुष्य ने अतीत में जो कुछ किया या कहा और उससे भी परे उसने जो कुछ विचार किया है – वह सब इतिहास है। वी.डी.घाटे के अनुसार – ''इतिहास हमारे सम्पूर्ण भूतकाल का वैज्ञानिक अध्ययन तथा प्रतिवेदन है।''

इस प्रकार इतिहास अतीत का वैज्ञानिक कैलेण्डर है जो हमें अतीत के संबंध में 'कब' 'कहाँ' तथा 'क्यों' का उत्तर देने का प्रयास करता है। जिस प्रकार मकान के लिए चूने या गारे की आवश्यकता होती है उसी प्रकार ज्ञान को विज्ञान बनाने के लिए तर्क एवं प्रमाणों की आवश्यकता होती है। हक्सले ने कहा है कि मैं उस ज्ञान को विज्ञान मानता हूँ जो तर्क तथा प्रमाणों पर आधारित है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विज्ञान वैज्ञानिक विधियों से सत्यासत्य की खोज करता है। प्रो. गूच ने विज्ञान की घटनाओं को क्रमानुसार कारण सूचित करने वाला कहा है।

इतिहास विज्ञान और कला दोनों है – इतिहास विज्ञान एवं कला–दोनों का समन्वय है जब सत्य की खोज करता है। वह विज्ञान है और जब वह उन सत्यों के प्रतिपादन तथा वर्णन का विषय है तब वह कला है। इस प्रकार इतिहास वह माध्यम है जिससे वह ज्ञान तथा क्रिया की प्राप्ति कर सकता है इसमें ज्ञान सत्य की खोज है और क्रिया सत्य का वर्णन है। इस संबंध में लाई एक्टन का निष्कर्ष बहुत ही महत्वपूर्ण है उसका कथन है कि इतिहास का अध्ययन पक्षपात रहित आलोचनात्मक तथा नवीन है इस प्रकार उन्होंने इतिहास को वैज्ञानिक तथा कलात्मक दोनों ही रूप प्रदान किए हैं।

इतिहास शिक्षण के उद्देश्य

इतिहास शिक्षण के उद्देश्य को हम नीचे लिखे दो वर्गो में विभक्त कर सकते हैं –

1. सामान्य उद्देश्य – सामान्य उद्देश्य को हम लक्ष्य (Aims) कहते हैं। ये स्वभाव से आदर्शात्मक दार्शनिक तथा असीमित होते हैं। जैसे चरित्र का विकास करना, राष्ट्रभक्ति का विकास करना, सुनागरिक बनाना आदि सम्पूर्ण समाज, विद्यालय और राष्ट्र सभी इनकी प्राप्ति के लिए व्यापक प्रयास करते हैं।

2. विशिष्ट उद्देश्य – सामान्य उद्देश्य जहाँ सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था के विशिष्ट विषय या उप विषय के लिए निश्चित किए जाते हैं। एक प्रकार से ये शिक्षा के जहाँ हम यह निर्धारित करते हैं किसी एक की प्राप्ति के लिए कर रहे हैं तथा इनका माप भी संभव है – इस प्रकार यह शिक्षण का विषय वस्तु से संबंधित मांग है। हमें छात्रों में क्या व्यवहारगत परिवर्तन लाने हैं, यह व्यवहारगत परिमार्जन भाग है। इतिहास शिक्षण समय की आवश्यकता, काम, विचारधाराओं, समस्याओं, शिक्षा के स्वरूप आदि के अनुसार परिवर्तित होते रहे हैं। आधुनिक भारत के लिए वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए इतिहास शिक्षण के निम्नांकित उद्देश्य निर्धारित किए जा सकते हैं :–

(1) उचित दृष्टिकोण का विकास – इतिहास अतीत की घटनाओं का प्रमापीकृत प्रस्तुतीकरण तथा सत्यापन है। जब घटनाओं के विभिन्न पहलुओं का प्रमापीकृत प्रस्तुतीकरण तथा सत्यापित स्वरूप हमें पता चलता है – तो उनके प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल जाता है। सत्यापित तथा प्रमापीकृत घटनाओं के अभाव में हमारा दृष्टिकोण गलत भी हो सकता है।

(2) दिक, काल तथा समाज का ज्ञान – इतिहास हमें स्पष्ट करता है कि दूरी का निकटता से, अतीत का वर्तमान से तथा वर्तमान समाज का प्राचीन समाज से क्या सम्बन्ध रहा है ? इन सम्बन्धों को स्पष्ट करना इतिहास का एक उद्देश्य है। हम अपनी संस्कृति का अन्य संस्कृतियों के सन्दर्भ में इतिहास के द्वारा ही अध्ययन कर सकते हैं। यह अध्ययन हमारी संस्कृति के उत्थान में सहायक होता है। दिक्, काल तथा समाज के ज्ञान से ही हम अपने विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यह हमें बोध कराता है कि हम कहाँ थे और हमें कहाँ पहुँचना है? यही विकास का मार्ग है, अपने विकास के लिए यह जरूरी है कि हम दिक, काल तथा समाज का अध्ययन करें।

(3) इतिहास के प्रति रूचि उत्पन्न करना – मानव–जीवन में इतिहास विषय का बड़ा ही महत्व है। इतिहास हमें अपने अतीत से अवगत कराता है। साथ ही हमें भावी विकास हेतु प्रेरित भी करता है। इतिहास ज्ञान का भण्डार है, इसे हम तब प्राप्त कर सकते हैं जब इतिहास में हमारी रूचि हो। इतिहास–शिक्षण का एक प्रमुख उद्देश्य है, इतिहास के अध्ययन में हमारी रूचि उत्पन्न करना। छात्र आज का अध्ययन तभी सही प्रकार से कर सकता है जब उसे अपने अतीत का ज्ञान होगा। अतः इतिहास–शिक्षण को चाहिए कि वह छात्रों की इतिहास में रूचि उत्पन्न करें।

(4) उपयुक्त आचरण का विकास – इतिहास–शिक्षण का एक प्रमुख उद्देश्य नैतिक आचरण का विकास करना भी है। इतिहास विज्ञान तथा कला दोनों ही है । साथ ही यह एक ऐसा दर्शन है जा हमें उदाहरणों के माध्यम से सिखाता है तथा बुद्धिमान बनाता है। लार्ड बकेन ने लिखा है –

''यह हमें बुद्धिमान बनाकर हमें अपना आचरण सुधारने का प्रशिक्षण देता है। इतिहास महापुरूषों, साधु सन्तों, समाज–सुधारकों तथा नेताओं के उपदेशों को संकलित कर बालकों तक पहुँचाता है जिससे वे अपना आचरण सुधार सकते हैं।''

(5) वर्तमान की व्याख्या करना – इतिहास शिक्षण का दूसरा प्रमुख उद्देश्य, शिक्षार्थी को इस योग्य बनाना है कि वे वर्तमान का सही–सही अध्ययन कर सकें। किसी भी वर्तमान समस्या, विकास या स्थिति की जड़ अतीत में निहित होती है। बिना अतीत का बोध किए हम उसके वर्तमान स्वरूप का सही अध्ययन नहीं कर सकते

हैं। इसलिए विद्यालयों में इतिहास–शिक्षण का एक उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि वह छात्रों को वर्तमान का बोध अतीत के आधार पर करने की क्षमता विकसित कर सकने की योग्यता प्रदान करे।

(6) सामाजिक गुणों का विकास करना – इतिहास बालकों में सामाजिक गुणों का विकास करता है। इतिहास हमारे सामाजिक दृष्टिकोण की व्यापक, उदार तथा समुचित स्वरूप प्रदान करता है। इससे बालक में सामाजिक जागरूकता आती है। इसी सामाजिक जागरूकता के फलस्वरूप वह समाज का एक उपयोगी तथा कल्याणकारी सदस्य बन सकता है। सामाजिक कल्याण के लिए छात्रों में सामाजिक गुणों का विकास करना अनिवार्य है। इतिहास–शिक्षण का एक उद्देश्य यह भी है कि वह बालकों में सामाजिक गुणों का विकास करे।

(7) सामाजीकरण करना – इतिहास–शिक्षण का एक उद्देश्य छात्रों का सामाजीकरण करना भी है। इतिहास के अध्ययन से हम सामाजिक विकास की प्रक्रिया को समझ पाते हैं। समाज की संस्कृति का विकास किस क्रम में हुआ और उसकी आज क्या स्थिति है ? आदि का इतिहास हमें सही ज्ञान कराता है। इसके ज्ञान से बालक के सामाजीकरण का मार्ग प्रशस्त होता है। इतिहास–शिक्षण का एक उद्देश्य बालकों का सामाजीकरण करना भी होना चाहिए।

(8) लोकतांत्रिक दृष्टिकोण का विकास करना – आधुनिक युग में लोकतन्त्र कोई एक राजनैतिक विचारधारा नहीं रही, अपितु यह एक जीवन–शैली बन गया है। सैद्धान्तिक रूप से इस प्रकार की जीवन–शैली अपनाना बड़ा सरल लगता है, किन्तु जब हम इसका व्यावहारिक पक्ष देखते हैं तो इसे उतना ही कठिन पाते हैं।

इतिहास शिक्षण का महत्व

(अ) स्थानीय इतिहास के अध्ययन का महत्व –

1. **राष्ट्रीय इतिहास को समझने हेतु –** स्थानीय इतिहास के अध्ययन से प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय इतिहास को समझने एवं वास्तविक बनाने में काफी मदद मिलती है।

2. **सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण –** विद्यार्थी अपने स्थान की निम्न व पिछड़ी जातियों का इतिहास पढ़ते हैं तो उनके मन में इनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है।इससे उनके प्रति अच्छा दृष्टिकोण अपनाने के साथ–साथ उनकी समस्याओं के निराकरण की भी कोशिश करते हैं।

3. **स्थानीय संस्कृति से परिचित –** स्थानीय इतिहास के शिक्षण से बच्चे अपने स्थान विशेष की संस्कृति (रीति रिवाजों, परम्पराओं) से परिचित होते हैं। इसकी सहायता से ही वे इस ज्ञात से परिचित होते हैं कि उस स्थान विशेष ने सामाजिक जीवन को कितना प्रभावित किया है। इससे अच्छी परम्पराओं व रीति रिवाजों के प्रति आदर की भावना विकसित होती है।

4. **इतिहास के प्रति रूचि –** स्थानीय इतिहास का यह लाभ है कि बच्चों में स्थानीय इतिहास के माध्यम से इतिहास के प्रति रूचि बढ़ती है,क्योंकि स्थानीय इतिहास की घटनाएँ,व्यक्ति,प्रकरण आदि को वे व्यक्तिशः या निकट से जानते हैं।ऐतिहासिक अवशेषों और खण्डहरों से उन घटनाओं से आसानी से परिचित हो जाते हैं।अतः स्थानीय इतिहास में रूचि होने पर राष्ट्रीय और विश्व इतिहास में भी रूचि बढ़ने लगती है।

5. **कौशल का विकास –** बच्चे स्थानीय इतिहास का अध्ययन करते समय विभिन्न स्थानों का निरीक्षण करते हैं और मानचित्र,मॉडल,चित्र आदि तैयार करते हैं,इससे उनमें कौशलों का विकास होता है।

6. **अतीत के प्रति प्रेम –** स्थानीय इतिहास में बच्चों को अपने पूर्वजों के कृत्यों का ज्ञान मिलता है, इससे उनके मन में अतीत के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है।

7. **विस्तृत दृष्टिकोण का विकास** – स्थाानीय इतिहास के अध्ययन से बच्चों का संकीर्ण दृष्टिकोण समाप्त हो जाता है और वे विस्तृत रूप से सोचने लगते हैं।

8. **वैज्ञानिक प्रवृत्ति** – स्थानीय इतिहास के अध्ययन से बच्चों में निरीक्षण करने, तर्क करने और निर्णय की शक्ति का विकास होता है। वैज्ञानिक अध्ययन के अन्तर्गत ये सभी पद आते हैं। अतः इससे बच्चों में वैज्ञानिक प्रवृति का विकास होता है।

स्थानीय इतिहास के अध्ययन के अन्तर्गत बच्चों को विभिन्न ऐतिहासिक स्थानों पर घुमाना चाहिए। उस समय बच्चे अध्यापक से विचार–विमर्श करें और महत्वपूर्ण बिन्दुओं को लिख लें। प्रत्येक गाँव व नगर का अपना इतिहास होता है और उसका राष्ट्रीय व प्रांतीय इतिहास में कुछ योगदान होता है। स्थानीय त्यौहार, मेले, दुर्ग और अन्य अवशेषों से परिचित हाते हैं।

(ब) राष्ट्रीय इतिहास के अध्ययन का महत्व –

राष्ट्रीय इतिहास के अन्तर्गत किसी राष्ट्र विशेष का सम्पूर्ण इतिहास आ जाता है। राष्ट्रीय इतिहास के पाठ्यक्रम के चयन में कठिनाईयाँ आती हैं क्योंकि किसी भी राष्ट्र का विकास स्वतंत्रतापूर्वक नहीं हुआ। सभी राष्ट्रों ने आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार अन्य राष्ट्रों को प्रभावित किया है। भारतीय विद्यालयों में राष्ट्रीय इतिहास का अध्ययन ही मुख्य रूप से कराया जाता है। राष्ट्रीय इतिहास के अध्ययन से ही नागरिक अपनी संस्कृति व आकांक्षाओं पर गर्व कर सकता है। डॉ. आर. सी. मज्जूमदार के शब्दों में ''भारतीय इतिहास और संस्थाओं की एक सतत् श्रृंखला है जिसके द्वारा भारत का अतीत वर्तमान से जुड़ा हुआ होता है।''

भारतीय इतिहास का प्रारंभ आर्यों से होता है। आर्य लोग बाहर से आये हैं, यह अध्ययन करने पर स्वतः ही प्रश्न उठता है कि आर्य लोग कहाँ से आए, कब आए, उनकी सभ्यता कैसी थी, भारत में क्यों आए और किस प्रकार इन्होंने यहाँ अपना प्रभुत्व जमाया, इनसे पूर्व भारत में कौन लोग थे, भारत में आर्य सभ्यता को कैसे समझना पड़ेगा। इतिहास प्रस्तुत करते समय भाषा, धर्म, क्षेत्र, सम्प्रदाय या अन्य किसी पूर्वाग्रह के संकुचित दायरे से अलग रखकर सही रूप प्रस्तुत करना चाहिए जिससे कि बच्चे अपने अतीत पर गौरव कर सकें। हमारा देश बहुत बड़ा है और इनके अनेक प्रांत यूरोप के राज्यों से भी बड़े हैं। अतः यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि बच्चों को उनके प्रांत का इतिहास भी पढ़ाया जाए या नहीं। इसके लिए राष्ट्रीय इतिहास को श्रृेणीबद्ध किया जा सकता है, जिसमें विभिन्न प्रांतों की देन को अलग से दर्शाया जा सकता है।

(स) विश्व इतिहास के अध्ययन का महत्व –

संचार साधनों के विकास के कारण आज का विश्व बहुत छोटा हो गया है। इसलिए आज ''विश्व सरकार'' का विचार विकसित हो रहा है। विश्व के किसी भी कोने में घटने वाली घटना पूरे विश्व को प्रभावित करती है। विभिन्न देशों का परस्पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए यह आवश्यक है कि बच्चों को विश्व इतिहास का ज्ञान कराया जाए। विश्व का विकास संयुक्त रूप से हुआ है अतः मात्र अपने ही देश के इतिहास का अध्ययन करना अपूर्ण होगा। आधुनिक विश्व की अशांति एवं कलह के वातावरण को दूर करने के लिए मानव का विस्तृत दृष्टिकोण होना आवश्यक है। इसके लिए विभिन्न साधनों में से एक महत्वपूर्ण साधन विश्व के इतिहास का अध्ययन कराना जरूरी है।

विश्व इतिहास में महत्वपूर्ण विचारों, सिद्धांतों, महापुरूषों संस्थाओं आदि का अध्ययन कराना चाहिए जिससे बच्चों को विस्तृत दृष्टिकोण की प्रेरणा प्राप्त हो। इतिहासकार फिशर ने कहा है कि मुझे इस बात की खुशी होगी कि यदि सभी बच्चों को आदि मानव से लेकर बेबीलोनिया, मिश्रवासियों, यहूदियों, अरबवासियों, यूनानी तथा

रोमवासियों के संबंध का सरल ज्ञान दिया जा सके इसके पूर्व कि वे ब्रिटेन का इतिहास पढ़ें अर्थात बच्चे अपने देश के इतिहास के पूर्व विश्व का इतिहास पढ़ें।

विश्व इतिहास को पढ़ाने के कई कारण हैं –

1. इतिहास किसी एक देश के विकास की कहानी नहीं है, वरन यह सम्पूर्ण मानवता के विकास की कहानी है।

2. सभी राज्य हमेशा से ही एक दूसरे के अन्योन्याश्रित रहे हैं। प्राचीन समय से अब तक सभी राज्यों का विकास विभन्न देशों की सहायता व प्रेरणा से हुआ है। कोई भी देश पृथक होकर अकेला विकास नहीं कर सकता।

3. विश्व बन्धुता की भावना का विकास, विश्व इतिहास के अध्ययन से आसानी से किया जा सकता है। विश्व की मानवता को युद्ध की ज्वाला से बचाने के लिए विश्व इतिहास का अध्ययन करना आवश्यक होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय अवबोधन (सद्भाव)

उदार राष्ट्रीयता की भावना बहुत अच्छी रहती है लेकिन जब संकीर्ण और उग्र हो जाती है तो वह उस राष्ट्र और विश्व सभी के लिए हानिप्रद होती है। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध उग्र राष्ट्रीयता के ही परिणाम थे। उग्र राष्ट्रीयता की भावना आ जाने से नागरिक अपने ही देश का कल्याण और विकास चाहते हैं, चाहे वह अन्य राष्ट्रों की उन्नति के आधार पर ही क्यों न हो? इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक देश की उन्नति राष्ट्रीयता की भावना के दुष्परिणामों के कारण ही यह लिखा है ''भयंकर विनाशकारी परिणाम वाले महायुद्धों ने कम से कम यह सिद्ध कर दिया है कि क्षुद्र एवं आक्रमणकारी राष्ट्रीयता के संकीर्ण बन्धनों को समाप्त कर देना चाहिए और प्रेम, दया और सहानुभूति पर आधारित मानव संबंधों का विकास करने के लिए मानव जाति के स्वतन्त्र संघ का निर्माण किया जाना चाहिए।''

इतिहास शिक्षण के उद्‌देश्यों के अन्तर्गत हमने देखा है कि आज इतिहास पढ़ने का उद्‌देश्य राष्ट्रीयता तक ही सीमित नहीं रहा वरन् आज नागरिकों में अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना भी उसका उद्‌देश्य हो गया है। नागरिकों को अन्तर्राष्ट्रीयता की बात सोचने के लिए बहुत से तथ्यों ने मजबूर कर दिया है। आज युद्ध की विभीषिका इतनी अधिक बढ़ गई है कि तृतीय विश्व युद्ध का अर्थ मानव जाति का विनाश है। संचार साधनों के विकास एवं राष्ट्रों की पारस्परिक निर्भरता से भी अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना को बल मिला है।

अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के अन्तर्गत नागरिक अपने देश के कल्याण की तो सोचता ही है साथ ही वह विश्व की प्रगति या मानव मात्र के कल्याण की बात भी सोचता है। भारत तो प्रारम्भ से ही विश्व को अपना परिवार मानता आया है। इसीलिए कहा गया है 'वसुधेव कुटुम्बकम्' गोल्डस्मिथ ने अन्तर्राष्ट्रीयता की व्याख्या करते हुए लिखा है, ''अन्तर्राष्ट्रीयता एक भावना है जिसके अनुसार व्यक्ति विशेष केवल अपने राष्ट्र का ही सदस्य नहीं होता वरन् विश्व का नागरिक भी होता है।'' डॉ. डब्ल्यू. एच.सी. लेब्स ने अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''अन्तर्राष्ट्रीयता सद्भावना इस ओर ध्यान दिए बिना कि व्यक्ति किस राष्ट्रीयता या संस्कृति के हैं, एक दूसरे के प्रति सब जगह उनके व्यवहार का आलोचनात्मक एवं निष्पक्ष रूप से निरीक्षण करने और आकलन करने की योग्यता देता है। ऐसा करने के लिए व्यक्ति को इस योग्य होना चाहिए कि वह समस्त राष्ट्रीयताओं और प्रजातियों को सामान्य रूप से देख सके।'' आज कोई भी देश यह नहीं कह सकता है कि उसे अन्य राष्ट्रों से कोई मतलब नहीं है क्योंकि सभी राष्ट्र अपने आप में आत्मनिर्भर नहीं हैं। प्रत्येक देश को आयात–निर्यात दोनों करने पड़ते हैं। इससे पारस्परिकता की भावना को बल मिलता है। विश्व के किसी भी देश की बाहरी एवं आन्तरिक

घटना से सभी देश प्रभावित होते हैं। अतः आज कोई भी देश पृथकता की नीति नहीं अपना सकता। भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अन्तर्राष्ट्रीयता को अनिवार्य बताते हुए कहा था ''पृथकता (Islation) का अर्थ है – पिछड़ापन और पतन। विश्व बदल गया है और पुराने मान खत्म होते जा रहे हैं और जीवन अन्तर्राष्ट्रीय होता जा रहा है। इस भावी अन्तर्राष्ट्रीयता में अपनी भूमिका अदा करनी है।''

आज सभी राज्य अपनी सेना पर करोड़ों रूपया खर्च कर रहे हैं। यदि सभी नागरिकों में अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना आ जाए तो सेना पर होने वाला करोड़ों रूपया देश के आर्थिक विकास व रचनात्मक कार्यों पर खर्च हो सकता है। अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के कारण ही आज विश्व सरकार की बात की जाने लगी है। यद्यपि निकट भविष्य में इसकी सम्भावना कम है कि ऐसी सरकार बन जाए लेकिन जिस प्रकार छोटे–छोटे राज्यों को मिलाकर एक संघात्मक राज्य की स्थापना हो गई। उसी प्रकार सभी देशों को मिलाकर एक संघ की स्थापना हो सकती है और आज के राज्य प्रान्त के रूप में कार्य कर सकते हैं। विश्व के नव स्वतन्त्र व विकासशील राज्यों का विकास विकसित राज्यों के सहयोग पर ही निर्भर करता है। विकसित राज्य इन राज्यों के विकास में असली मायने में दिलचस्पी तभी ले सकेंगे जबकि उनमें यह अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना आ जाए। अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास में विद्यालय की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। यदि विद्यालय अवस्था में ही बच्चों में अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना भर दी जाएगी। तो निश्चित रूप से वे आगे जाकर संकीर्ण विचारधारा से घृणा करने लगेंगे। अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास के लिए सभी देशों को अपनी शिक्षा के उद्देश्य विस्तृत करने होंगे। हमारी शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार के होने चाहिए कि हमें पूरा विश्व ही हमारा परिवार लगने लगे। विद्यालय में अन्तर्राष्ट्रीय पर्वों को भी उतने ही सम्मान व उल्लास से मनाया जाना चाहिए जितना राष्ट्रीय पर्वों को, अपने राष्ट्र के धर्म, भाषा, ध्वज, गीत, संस्कृति, पर्वों के सम्मान की तरह ही अन्य धर्मों, भाषाओं, ध्वजों, गीतों, संस्कृतियों, पर्वों आदि को भी सम्मान देना चाहिए।

इतिहास शिक्षण द्वारा बच्चों की अभिरूचियों, मनोवृत्तियों व विचारों को इस प्रकार विकसित किया जा सकता है जिससे कि अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास में सहयोग मिले। विश्व इतिहास के अन्तर्गत बच्चे विभिन्न देशों का अध्ययन करते हैं। इससे छात्रों में सभी देशों की संस्कृतियों व दोनों के प्रति रूचि बढ़ेगी। बच्चों को निष्पक्ष रूप से विभिन्न सभ्यता, संस्कृति का ज्ञान कराया जाए जिससे वे सही – सही सभ्यता व संस्कृति को जान सकेंगे। विभिन्न सभ्यताओं व संस्कृतियों की उपलब्धियों व निर्बलताओं का ज्ञान हो सकेगा। अतः अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास में इतिहास का बहुत अधिक योगदान रहता है। लेकिन इतिहास ही एक मात्र इस भावना का विकास नहीं कर सकता।

सच्ची राष्ट्रीयता की भावना अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास में बाधक न होकर सहायक होती है। हम विश्व कल्याण व विश्व के प्रति त्याग व मानव मात्र के कल्याण की बात तभी सोच सकेंगे जबकि पहले राष्ट्र के प्रति त्याग व बलिदान करने की भावना आ सकेगी।

इतिहास शिक्षण की विधियाँ

परम्परागत रूप से जब हम शिक्षण विधियों के विषय में बातचीत करते हैं तो हमारा अभिप्राय यह होता है कि शिक्षक क्या करता है परन्तु आधुनिक युग में शिक्षण विधियों के साथ जो पद (Term) प्रयुक्त किए जाते हैं, वे छात्रों की सीखने की क्रियाओं Learning Activities का वर्णन करते हैं उदाहरणार्थ वाद–विवाद विधि, प्रयोगशाला विधि, आगमन विधि, निगमन विधि, योजना विधि आदि। सार यह है कि प्रत्येक पद इस बात की व्याख्या कर रहा कि शिक्षक क्या करता है ? यथार्थ में शिक्षक केवल इन क्रियाओं को निर्देशित करता है। जब यह कहा जाता है कि शिक्षक आगमन विधि का प्रयोग कर रहा है तब इसका अभिप्राय है कि वह आगमन विधि से शिक्षण कर रहा है परन्तु ऐसा नहीं है। वह केवल छात्रों द्वारा संचालित आगमन प्रक्रिया का निर्देशन कर रहा है। आगमन केवल छात्रों की क्रिया है न कि शिक्षक की।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि शिक्षण विधि कार्य की वह सामान्य योजना है जिसका निर्धारण किसी विशेष शैक्षिक परिणाम या उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है। अतः शिक्षण विधि शैक्षिक उद्देश्य से संबंधित है दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि शिक्षण विधि वह मार्ग है जिसके द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य किया जाता है। इतिहास शिक्षण की कोई विशेष विधि नहीं हैं। इसका शिक्षण विभिन्न ढंगों एवं साधनों के प्रयोग से किया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इतिहास एक ऐसा व्यापक विषय है जिसमें विभिन्न विवादग्रस्त प्रकरणों की व्याख्या की जाती है। इस कारण इनको समझने के लिए प्रविधियों तथा ढंगो का प्रयोग करना पड़ता है इस दृष्टि से इसमें निम्नलिखित विधियों को प्रयुक्त किया जा सकता है।

साधनों के प्रयोग से किया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इतिहास एक ऐसा व्यापक विषय है, जिसमें विभिन्न विवादग्रस्त प्रकरणों की व्याख्या की जाती है। इस कारण इनको समझाने एवं सुलझाने के लिए विभिन्न विधियों एवं प्रविधियों तथा ढंगो का प्रयोग करना पड़ता है । इस दृष्टि से इनमें निम्नलिखित विधियों को प्रयुक्त किया जा सकता है –

कथात्मक विधि

कथात्मक विधि में कहानी कहना, बातचीत करना, भाषण देना आदि का समावेश होता है, क्योंकि इस सब में वाणी का उपयोग करना पड़ता है। छोटी कक्षाओं में कहानी कहना ही इतिहास सिखाने की सर्वोत्तम विधि है। प्लेटो ने भी इस विधि को छोटे बालकों के लिए लाभप्रद एवं उपयुक्त बताया था। बालक स्वाभावतः कहानी–प्रिय होते हैं। कल्पना की उड़ान में उनकी बहुत–सी नैसार्गिक प्रवृत्तियों का विकास होता है। मानव बाल्यावस्था तथा वृद्धावस्था–दोनों ही में कहानी सुनने तथा कहने में रूचि प्रदर्शित करता है। कुछ मनुष्यों में कहानी कहने की कला जन्मजात होती है और कुछ व्यक्ति प्रयत्न करके सीख लेते हैं। इतिहास के शिक्षक को इस कला को जानना आवश्यक है। यदि उनमें यह कला स्वाभाविक रूप से नहीं है तो उसे प्रयत्न करके अर्जित करना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो वह सफल शिक्षक के अधोलिखित गुणों पर निर्भर है –

1. कहानी की भाषा छात्रों के स्तर के अनुसार होनी चाहिए, जिससे वे उसको समझने में समर्थ हो सकें तथा उनका ध्यान लगा रह सके।
2. कहानी बालाकों के मानसिक स्तर, रूचि एवं अवस्था के अनुकूल होनी चाहिए। यदि छोटी कक्षा के छात्र हैं तो उनके लिए ऐसी कहानियों का चयन किया जाय, जिनके द्वारा उनकी कल्पना एवं कौतूहल प्रवृष्टि को सन्तुष्ट किया जा सके। यदि छात्र 12 वर्ष की अवस्था के हैं तो उनको क्रियाशील पात्रों की कहानियाँ सुनानी चाहिए क्योंकि इस अवस्था का बालक उपयोगिता एवं सक्रियता में रूचि रखता है ।
3. कहानी कहने का ढंग रूचिकर, स्वाभाविक तथा भावपूर्ण होना चाहिए, अर्थात् उसमें कृत्रिमता नहीं आनी चाहिए।
4. शिक्षक जिस कहानी को अपने छात्रों को सुनाना चाहता है, उसकी पाठ्य–वस्तु पर उसका पूर्ण अधिकार हो।
5. शिक्षक को ऐतिहासिक कहानियाँ कालक्रम के अनुसार सुनानी चाहिए तथा छात्रों को जो भी कहानियाँ सुनाई जाएँ वे जीवन–गाथाओं के रूप में हो।
6. कथावाचक निजत्व की भावना से ग्रसित नहीं होना चाहिए। उसको छात्रों में घुल–मिल जाना चाहिए, तभी वह कहानी कहने में सफलता प्राप्त कर सकता है।

7. शिक्षक को कहानी सुनाने में छात्रों की सहायता लेनी चाहिए। उनको सतर्क तथा सक्रिय बनाए रखने तथा अपनी विषय–वस्तु को बोधगम्य बनाने के लिए प्रश्नों तथा सहायक सामग्री का भी उपयोग करते रहना चाहिए। श्यामपट्ट पर कहानी की प्रमुख बातों, स्थलों तथा तिथियों को भी लिखते रहना चाहिए, जिससे छात्र बाद में उपयोग कर सकें।

8. शिक्षक को कहानी की पाठ्य–वस्तु में रूचि लेनी चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो वह अपने छात्रों की रूचि विषय के प्रति उत्पन्न करने में असफल रहेगा।

9. शिक्षक को अभिनय–कला का भी ज्ञान होना आवश्यक है जिससे वह भावानुसार अपने हाव–भाव प्रदर्शित करने में सफल हो सके। इसके साथ ही उसमें स्वर को भावों के अनुसार उतार–चढ़ाव करने की सामर्थ्य भी होनी चाहिए। यदि उसमें यह शक्ति नहीं होगी तो वह कहानी को सफलतापूर्वक प्रस्तुत नहीं कर सकेगा और न सीखने हेतु उपयुक्त वातावरण ही निर्मित कर सकेगा।

10. शिक्षक को ऐतिहासिक महापुरूषों के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए?

कथात्मक विधि के गुण

(1) इसके द्वारा बालकों में इतिहास के प्रति रूचि उत्पन्न की जा सकती है।

(2) इससे बालकों की कल्पना–शक्ति का विकास होता है। इसके लिए अध्यापक बालकों को पहले रूपरेखा दे सकता है और इस रूपरेखा को बालकों से पूर्ण करवा सकता है। बालक इसको पूर्ण करने में आपनी कल्पना शक्ति का प्रयोग करेंगे।

(3) इस विधि से बालक अपने गुप्त भावों को व्यक्त करने का अवसर प्राप्त करते हैं। बालकों को विभिन्न पात्रों के कथन दोहराने के लिए कहा जा सकता है, जिससे उनकी झिझक तथा लज्जाशील प्रवृत्ति समाप्त हो सकती है।

(4) कहानी के द्वारा उनकी जिज्ञासा को तृप्त करके उन्हें अनुशासित किया जा सकता है।

(5) जारविस का विचार है कि इससे बालकों में नैतिक गुणों का विकास होता है क्योंकि वे नैतिक पुरूषों की कहानियाँ पढ़ते एवं सुनते हैं, अतः उनके कार्यो का स्वतः ही बालकों पर प्रभाव पड़ता है। इस अवस्था में उनके अनुकरण करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। अतः वे अपना चरित्र उनके अनुसार बनाने का प्रयत्न करते हैं।

खण्ड–विधि

इतिहास–शिक्षण में खण्ड–विधि का प्रतिपादन मिस एम. रीवस ने किया है। उस विधि में शिक्षक इतिहास से एक ऐसी सामान्य विषय–वस्तु का चयन करता है, जिसको सुविधा एवं सरलता से विभिन्न प्रकरणों में विभाजित किया जा सकता है। ये विभाजित प्रकरण ऐसे होते हैं जिनको वैयक्तिक रूप से छात्र पढ़ एवं लिख सकते हैं। साथ ही उनके बारे में वे खोज कर सकते हैं। इन प्रकरणों को छोटे समूहों के द्वारा भी पढ़ा एवं लिखा जा सकता है। उदाहरणार्थ, अकबर नामक खण्ड को चुना जा सकता है। इस खण्ड में सम्राट, दरबारी, लेखक, कलाकार, विद्वान, सेनापति, कूटनीति तथा व्यापारी आदि प्रकरण निहित हैं। प्रत्येक प्रकरण से सम्बन्धित संदर्भ पुस्तकें तथा अन्य पुस्तकें अध्ययन के लिए होंगी।

खण्ड–विधि के सोपान– इस विधि के तीन प्रमुख सोपान हैं। सोपानों का विवेचना अग्रलिखित है –

(अ) स्पष्टीकरण : यह कार्य इतिहास–शिक्षक का है। शिक्षक को चयन किए हुए खण्ड के विषय में पूर्णरूप से बताना चाहिए, उसे छात्रों के खण्ड के क्षेत्र के विषय में लिखित रूप से सामग्री प्रदान करनी चाहिए। साथ ही वह छात्रों को खण्ड से सम्बन्धित आवश्यक वसतुओं की सूची प्रदान करे।

(ब) अनुसंधान – इस स्तर पर छात्र खण्ड के सम्बन्ध में खोज करेंगे। अतः यह स्तर छात्रों का है। परन्तु शिक्षक को सदैव वहाँ उपलब्ध रहना चाहिए जिससे छात्र अध्ययन एवं खोज करते समय जिन समस्याओं का सामना करें, उनके सम्बन्ध में वे उनसे मार्ग दर्शन एवं सहायता प्राप्त कर सकें। छात्रों की इस स्तर की क्रियाएँ उनको इस बात का ज्ञान कराती है कि इतिहासकार किस प्रकार इतिहास की रचना करता है।

(स) एकीकरण – खण्ड विधि का तीसरा सोपान एकीकरण है। इस स्तर पर छात्र पृथक्–पृथक् खोजों को एकीकृत करते हैं। उनके द्वारा यह कार्य विभिन्न प्रकार से किया जाता है। उदाहरणार्थ, अध्ययन किए गए विभिन्न अंशों को पुस्तक का रूप प्रदान करना, किसी प्रदर्शनी में चित्रों तथा निबन्धों के रूप में उस सामग्री को प्रदर्शित करना, प्रत्येक समूह का नेता नियुक्त करना जिससे वह खोज या अनुसन्धान के परिणामों को स्पष्ट कर सके। साथ ही अनुसन्धान या खोज की प्रगति को बता सके।

खण्ड विधि के लाभ – इस विधि के प्रमुख लाभ निम्नलिखित है :–

1. यह विधि छात्रों को स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है।
2. इसके द्वारा छात्रों को विभिन्न प्रकार की पुस्तकों का प्रयोग करना सिखाया जाता है।
3. यह विधि छात्रों में विभिन्न कौशलों का विकास करती है।
4. इसके द्वारा छात्रों को विस्तारपूर्वक अध्ययन करने के लिए अवसर प्रदान किये जाते हैं।
5. यह विधि छात्रों को जटिल ऐतिहासिक परिस्थिति में विभिन्न कारणों की अन्तःक्रिया को समझने में सहायता प्रदान करती है।

स्त्रोत या आधार विधि

इतिहास पढ़ाने की विधियों में स्त्रोत विधि अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका महत्व जानने से पूर्व यह प्रश्न उठता है कि 'स्त्रोत' शब्द का क्या अर्थ है और इस विधि का प्रयोग किस स्तर पर किया जाना चाहिए? इन प्रश्नों के उत्तर अग्रलिखित हैं–

1. स्त्रोत का अर्थ – भूतकाल के इतिहास का पता लगाना एक जटिल प्रश्न है। वर्तमान समय में निवास करने वाला मनुष्य व्यक्तिगत रूप से इस बात का ज्ञान किस प्रकार प्राप्त कर सकता है कि शताब्दियों पूर्व किसी देश में क्या हुआ? इतिहास एक वैज्ञानिक विषय है, अतः इतिहासकार निरर्थक तथा काल्पनिक कहानियों के आधार पर अपनी ऐतिहासिक बातों का निर्माण नहीं कर सकता। वह चाहे किसी काल का इतिहास लिखे, उसके लिए नितान्त आवश्यक है कि वह उस समय की वास्तविकता का वर्णन करे। अतः इतिहास का आधार 'तथ्य' है। इतिहास के तथ्य स्पष्ट प्रमाणों तथा वास्तविक आधारों पर आश्रित होते हैं। अतः इतिहासकार वास्तविक तथ्यों के आधार पर ही ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करते हैं। कोई भी लेखक किसी भी प्रकार से स्वयं भूतकाल में नहीं जा सकता। अतः उस समय जो व्यक्ति उपस्थित थे, उन्होंने जो घटनाएँ देखी और उन्हें लिखकर रखा, अथवा उनके पत्र–व्यवहार पर इतिहासकार को निर्भर रहना पड़ता है। इन प्रमाणों और आधारों को चाहे वे लिखित अथवा अलिखित, तथ्य कहते हैं। ये तथ्य ही हमारे इतिहास के स्त्रोत हैं। इन तथ्यों के द्वारा हमें एक ऐसा स्त्रोत मिलता है जिससे हम इतिहास का शरीरी निर्मित कर लेते हैं।

एस.वी.सी. ऐैया ने स्त्रोत के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा– "स्त्रोत भूतकालीन घटनाओं द्वारा छोड़े गये चिन्ह हैं। यद्यपि इतिहास की घटनाएँ वास्तविक रूप में घटित होती हैं। फिर भी वे अधिक समय तक वास्तविक

नहीं रह पातीं। उनके द्वारा छोड़े गए शेष चिन्ह ही उन्हें वास्तविकता प्रदान करते हैं। इतिहासकार इन्हीं शेष चिन्हों के आधार पर कार्य करता है। वह इन शेषचिन्हों की सफलता से अतीत की घटनाओं का तार्किक एवं क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत करने में समर्थ होता है।"

2. स्त्रोतों का किस स्तर पर प्रयोग किया जाए – स्त्रोतों के प्रयोग के विषय में भिन्न–भिन्न मत है। कुछ विद्वानों का मत है कि इन स्त्रोतों का प्रयोग उच्च कक्षाओं में होना चाहिए जिसे वे समझ सकें तथा इनका प्रयोग कर सकें। परन्तु डॉ. कीटिंग का मत है कि इनका प्रयोग जूनियर स्तर पर किया जाना चाहिए। परन्तु यह प्रयोग वातावरण स्थापित करने के लिए किया जाए। स्त्रोंतो के द्वारा ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जाए जिससे बालक शिक्षा प्राप्त कर सके। इस स्तर पर स्त्रोंतो का विश्लेषण नहीं किया जाना चाहिए।

स्त्रोतों का वर्गीकरण

इतिहास के स्त्रोत भूतकाल के लोगों द्वारा छोड़े गए शेषचिन्ह विभिन्न रूपों में पाये जाते है। इन शेष चिन्हों को अध्ययन की सुविधानुसार अधोलिखित भागों में बाँटा जा सकता है–

(अ) पुरातत्वीय स्त्रोत – इन सूत्रों को निम्नलिखित रूपों में पाया जाता है। इन शेषचिन्हों को अध्ययन की सुविधानुसार अधोलिखित भागों में बाँटा जा सकता है :–

(1) स्मारक सम्बन्धी स्त्रोत – स्मारक सम्बन्धी स्त्रोतों के अन्तर्गत भवन, मूर्तियाँ, बर्तन आदि आते हैं। भारत में लार्ड कर्जन द्वारा पुरातत्व विभाग की स्थापना की गई थी। इस विभाग ने मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, तक्षशिला, कौशाम्बी, सारनाथ, काशी, पाटलिपुत्र, नालन्दा, साँची, भारहूत आदि स्थानों में कार्य किया। इससे उसने प्राचीन इतिहास की सामग्री खोज निकाली। इस खुदाई कार्य से जो वस्तुएँ प्राप्त हुईं, वे उस काल के इतिहास के महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं।

(2) पुरालेख संबंधी स्त्रोत – पुरालेख सम्बन्धी स्त्रोतों के अन्तर्गत पत्थरों, स्तम्भों, चट्टानों, ताम्रपत्रों, भवनों की दीवारों आदि के लेख एवं मूर्तियाँ आती हैं। इनके द्वारा भारतीय इतिहास के विभिन्न पक्षों के लिए महत्वपूर्ण प्रमाण प्रदान किए जाते हैं।

(3) मुद्रा–विषयक स्त्रोत – ये स्त्रोत सिक्कों के अध्ययन से इतिहास की सामग्री प्रदान करते हैं। प्राचीनकाल के सिक्के भारत के इतिहास के महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं।

(ब) साहित्यिक स्त्रोत – इन स्त्रोंतों को अग्रलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है :–

(1) धार्मिक साहित्य – इस साहित्य के अन्तर्गत धर्म ग्रन्थ आते हैं। साहित्य भारतीय इतिहास को महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करता है। इनमें वेद, रामायण, महाभारत, त्रिपिटक, पुराण आदि आते हैं।

(2) लौकिक साहित्य – इस साहित्य को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है :–

(क)निजी साहित्य – इस प्रकार का साहित्य वह साहित्य है जिसकी रचना किसी लेखक ने व्यक्तित्व रूप से की हो। इस प्रकार के साहित्य के अन्तर्गत कालिदास द्वारा रचित 'शाकुन्तलम्', विशाखादत्त का 'मुद्राराक्षस', कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र', बाबर का 'बाबरनामा', जहाँगीर की 'तुजुक–ए–जहाँगीरी' आदि रचनाएँ आती है।

(ख)सार्वजनिक साहित्य – यह किसी अधिकारी के द्वारा तैयार किया जाता है। इसके अन्तर्गत राजकीय आदेश, सनद, फरमान, न्यायालय के निर्णय आदि आते हैं।

(3) विदेशी प्रमाण – विदेशियों के विवरण इतिहास के प्रमुख स्त्रोत हैं। इस प्रकार के साहित्य के अन्तर्गत यूनानी लेखकों–मेगस्थनीज, पेट्रोलिक्स आदि की कृतियों का उल्लेख किया जा सकता है जिन्होंने भारत के सम्बन्ध में लिखा था।

(स) मौखिक परम्पराएँ – मौखिक परम्पराएँ इतिहास तथा स्थानों के नामों के सम्बन्ध में जानने में बहुत सहायक हैं। उदाहरणार्थ–पाटलिग्राम को विभिन्न कालों में पाटलिपुत्र, अजीमाबाद, बंकीपुर तथा पटना के नाम से जाना गया है। इन नामों के महत्व को समझने में मौखिक परम्पराएँ महत्वपूर्ण भाग अदा करती हैं।

स्त्रोतों का वर्गीकरण हम दूसरे ढंग से भी करते हैं, वे निम्नलिखित हैं :–

1. मौलिक स्त्रोत – इसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष अवशेष सामग्री आती है; उदाहरणार्थ – स्मारक, सिक्के, यन्त्र आदि। इसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष अंक या छाप भी आती है, उदाहरणार्थ–आज्ञा पत्र, आदेश, फरमान, संविधान, सन्धियाँ, न्यायालयों के निर्णय तथा व्यक्तिगत इतिहास आदि।

2. सहायक स्त्रोत – इसके अन्तर्गत पुस्तकें, जीवन चरित्र, आत्मकथाएँ, इतिहास आदि आते हैं।

स्त्रोतों की विश्वसनीयता – समस्त स्त्रोत विश्वसनीय नहीं हैं; उदाहरणार्थ–चन्दवरदाई के 'पृथ्वीराज–रासो' को पृथ्वीराज चौहान के इतिहास को जानने के लिए प्रमाणयुक्त स्त्रोत के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। अतः शिक्षक को स्त्रोतों का प्रयोग बड़ी सतर्कता के साथ करना चाहिए। उसे उनको स्वयं के लिए परीक्षित करना चाहिए। यदि परीक्षण के आधार पर स्त्रोत विश्सनीय एवं प्रामाणिक सिद्ध होते हैं तो उसे उनका प्रयोग करना चाहिए, अन्यथा नहीं। स्त्रोतों की विश्वसनीयता को जाँचने के लिए अग्रलिखित रीतियों को प्रयोग में लाया जा सकता है–

1. उसको यह देखना चाहिए कि स्त्रोत के रचियता ने पक्षपातपूर्ण ढंग से अपने विचार का विवेचन तो नहीं किया है।
2. यदि किसी विषय पर परस्पर विरोधी विचारधाराएँ प्रचलित हैं तो उसे उनकी प्रमाणिकता आलोचनात्मक ढंग से जाँचनी चाहिए और आवश्यकतानुसार अपने निर्णय का भी प्रयोग करना चाहिए।
3. उसका स्त्रोतों की तिथियों की अशुद्धियों की ओर भी ध्यान देना चाहिए। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि उसे स्त्रोतों की जाँच कालक्रम के आधार पर करनी चाहिए।

इतिहास–शिक्षण में स्त्रोंतो का प्रयोग

इतिहास–शिक्षक किसी प्रकरण का शिक्षण करते हुए स्त्रोतों का प्रयोग पाठ के निम्नलिखित स्तरों पर कर सकता है–

(1) पाठ की समाप्ति पर स्त्रोतों का प्रयोग – शिक्षक अपने पाठ को समाप्त करने के बाद भी स्त्रोतों का प्रयोग कर सकता है। वह छात्रों को मौलिक या सहायक स्त्रोतों से उपयुक्त उद्धरण प्रदान करके उनके आधार पर किसी प्रश्न का उत्तर लिखने के लिए कह सकता है। इस प्रकार से शिक्षक छात्रों की रूचि को कायम रखने में सफल हो सकता है। यह प्रयोग प्रतिभाशाली छात्रों के लिए विशेषतः रोचक होगा।

(2) पाठ के प्रारम्भ में स्त्रोतों का प्रयोग – इतिहास–शिक्षक अपने पाठ के प्रारम्भ में स्त्रोतों का प्रयोग कर सकता है। वह छात्रों की जिज्ञासा को जाग्रत करने के लिए स्त्रोतों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछ सकता है, उदाहरणार्थ–विलियम जोन्स, मैकाले तथा राममोहन राय के अंग्रेजी के प्रस्ताव के सम्बन्ध में क्या विचार थे? शिक्षक अंग्रेजी के पक्ष एवं विपक्ष के तर्को की परिपूर्ति कर सकता है।

(3) पाठ के मध्य स्त्रोतों का प्रयोग – शिक्षक पाठ का विकास करते समय भी स्त्रोतों का प्रयोग कर सकता है। इस स्तर पर स्त्रोतों का प्रयोग करने का मुख्य अभिप्राय छात्रों को प्रदान किये जाने वाले ज्ञान को समृद्ध एवं स्पष्ट करना होगा, उदाहरणार्थ–यदि शिक्षक औरंगजेब के चरित्र के विषय में पढ़ा रहा है तो वह औरंगजेब द्वारा अपने भाइयों को लिखे हुए पत्रों को प्रस्तुत करके छात्रों की रूचि को पाठ में रत कर सकता है। ये पत्र छात्रों की जिज्ञासा को औरंगजेब तथा उसके भाइयों और उनके आपसी सम्बन्धों को अधिकाधिक जानने के लिए जाग्रत करेंगे।

उपयुक्त प्रकार के स्त्रोतों का प्रयोग करके शिक्षक छात्रों की जिज्ञासा को जाग्रत करके छात्रों को उन्नत अध्ययन एवं अनुसंधान कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकता है। धीरे–धीरे उनको स्वतन्त्र रूप से स्त्रोतों का उपयोग करने के लिए भी तैयार किया जा सकता है। इनके प्रयोग से छात्रों में स्वाध्ययन एवं उनके कुशल प्रयोग के लिए उपयुक्त आदतों के निर्माण में सहायता प्रदान की जा सकती है।

शिक्षक इतिहास का अध्यापन करते समय स्त्रोतों का प्रयोग निम्नलिखित अभिप्रायों की पूर्ति के लिए कर सकता है –

1. इनका प्रयोग कक्षा में ऐतिहासिक वातावरण उत्पन्न करने के लिए किया जा सकता है।
2. इनके द्वारा अपने मौखिक पाठ को पूर्ण बना सकता है।
3. ऐतिहासिक आलोचनाओं की परीक्षा करने के लिए।

(1) वातावरण निर्माण – शिक्षक स्त्रोतों के उपयोग से इतिहास–शिक्षण को वास्तविक बना सकता है। यदि अध्यापक प्राचीनकाल की सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति का ज्ञान दे रहा है तो शिक्षक स्त्रोतों का प्रयोग करके बालकों के सम्मुख उसी काल का वातावरण उत्पन्न कर सकता है, जिससे छात्र उसी काल को अनुभव प्राप्त करने में समर्थ हो सके।

(2) मौखिक पाठ की पूर्ति – स्त्रोतों का प्रयोग प्रत्येक स्तर पर किया जा सकता है। शिक्षक इनका प्रयोग मौखिक पाठ की कठिन बातों का सरलीकरण करने के लिए कर सकता है। अध्यापक को उन सभी स्त्रोतों का प्रयोग करना चाहिए जिनके द्वारा वह अपने पाठ को पूर्णतया समझने योग्य बना सकता है।

(3) ऐतिहासिक आलोचनाओं की परीक्षा – इसके लिए स्त्रोत प्रयोग में लाये जा सकते हैं। अनेक पाठ्य–पुस्तकें एक मत के अनुसार लिखी हुई होती है। उनमें सत्यता को स्पष्ट नहीं किया जाता। अध्यापक इन सत्यों को स्पष्ट करने हेतु विभिन्न लिखित स्त्रोतों का उपयोग कर सकता है; उदाहरणार्थ, यदि शिक्षक पानीपत के तृतीय युद्ध के विषय में पढ़ा रहा है तो उसे पाठ्य–पुस्तकों पर ही आधारित नहीं रहना चाहिए, वरन् उनमें दिए हुए तथ्यों की सत्यता को ज्ञात करने के लिए उसको 'भाऊसाहबजी बाखर', 'काशीराज' द्वारा लिखित लेख तथा भाऊ के पत्रों का अध्ययन स्वयं करना चाहिए और छात्रों को इन स्त्रोतों के आधार पर ऐतिहासिकता को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

अध्यापक को इस विधि का प्रयोग करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए –

1. स्त्रोतों के अध्ययन को समय के अनुसार क्रम में रखे अर्थात् जितना समय प्राप्त है, उसी के अनुसार अध्ययन के लिए समय दे।
2. छात्रों के स्वाध्ययन के पश्चात् अध्यापक छात्रों की सहायता से उन पर वाद–विवाद करे।
3. उसे उन पुस्तकों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए, जिनमें इतिहास के स्त्रोतों का संकलन हो।

4. अध्यापक को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि उसे छात्रों को अनुसन्धानकर्ता नहीं बनाना है।

5. छात्रों को उनके अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे वे शिक्षक के मौखिक पाठ के पश्चात् पुस्तकालय में जाकर उनका अध्ययन करें।

6. वाद—विवाद के पश्चात् अध्यापक उन पर गृह—कार्य दे और उनके विषय में विचार प्रकट करवाए।

पाठ्य—पुस्तक विधि

बहुधा यह कहा जाता है कि भारत में समस्त शिक्षण—कार्य पाठ्य—पुस्तक विधि से किया जाता है। परन्तु यह कथन अस्पष्ट सा दिखाई पड़ता है, क्योंकि प्रत्येक शिक्षण—विधि का प्रयोग पाठ्य—पुस्तक को आधार बनाकर किया जा सकता है। यहाँ तक कि इसका उपयोग प्रगतिशील एवं क्रियाशील शिक्षण—विधियों में भी किया जा सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि पाठ्य—पुस्तक वह साधन है, जिनके द्वारा किसी निर्दिष्ट लक्ष्य या तथ्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पाठ्य—पुस्तक विधि एक स्वतन्त्र शिक्षण विधि नहीं है, बल्कि यह वह प्रक्रिया या माध्यम है, जिनके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। छात्र अनुभव तथा ज्ञान की प्राप्ति दो ढंगों से करते हैं — प्रत्यक्ष रीति तथा अप्रत्यक्ष रीति से प्रथम ढंग के अनुसार ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से वास्तविक वस्तुओं का अध्ययन किया जाता हैं। अप्रत्यक्ष रीति के अन्तर्गत दो ढंग हैं — प्रथम के अनुसार, बालक पुस्तकों में व्यक्तियों के संकलित विचारों को अध्ययन करता है, अर्थात् पुस्तक के माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति करता है। दूसरे ढंग के अनुसार बालक मौखिक रूप से किये हुए प्रस्ततुतीकरण के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति कर सकता है। इस प्रकार पाठ्य—पुस्तक वह साधन है जिसके द्वारा बालक ज्ञान की प्राप्ति कर सकता है। इस साधन की सफलता उसके उचित प्रयोग पर निर्भर है। इस साधन के उपयोग में अधोलिखित रूप हैं —

(1) इस साधन के प्रयोग का प्रथम रूप यह है कि पाठ्य—पुस्तक का कोई पाठ अध्ययन के लिए निर्धारित कर दिया जाता है। छात्रों से इस निर्धारित पाठ को अध्ययन करने तथा उसकी रूपरेखा या सारांश लिखने के लिए कहा जाता है। इसके उपरान्त शिक्षक तथा बालक दोनों मिलकर सारांश पर वाद—विवाद करते हैं और उस पाठ के विषय में निश्चित धारणा बनाते हैं। इसके उपरान्त शिक्षक विवरणात्मक रूप से इस संक्षिप्त रूपरेखा को लिखने का आदेश देता है, जिससे उनके पास उसका लेखा रह सके।

(2) इस साधन के उपयोग का एक रूप यह भी है कि शिक्षक पाठ्य—पुस्तकों के पाठों के आधार पर बालकों को पृथक कार्य निर्धारित करता है जिसमें पाठ की समस्त बातों का समावेश होता है। परन्तु यह कार्य इस प्रकार निर्धारित किया जाता है जिसकी पूर्ति के लिए छात्रों को अन्य पुस्तकों, सूत्रों तथा पत्र—पत्रिकाओं से सामग्री एकत्रित करनी पड़ती है। इस प्रकार पाठ्य—पुस्तक ज्ञानोपार्जन का आधार बन जाती है। इतिहास—शिक्षण में इसी रूप का उपयोग करना चाहिए क्योंकि इससे एक तो छात्र पुस्तकालय का उपयोग करना सीख जाएँगे दूसरे, वे स्वक्रिया द्वारा ज्ञान अर्जित करना सीख जाएँगे।

(3) सर्वप्रथम इस साधन का प्रयोग इसमें दिए हुए किसी विचार या तथ्य को याद करने के लिए किया जा सकता है। शिक्षक छात्रों को कोई पाठ घर में याद करने के लिए दे दिया करते हैं। दूसरे दिन वे बालकों से उसे मौखिक रूप से सुनते हैं।

(4) इस साधन के प्रयोग का चौथा रूप यह है कि बालक भाषा की पुस्तक की भाँति इतिहास की पाठ्य—पुस्तक को पढ़ते हैं और इस प्रकार क्रमानुसार कक्षा के सभी बालक इतिहास की पुस्तक को पढ़ते जाते हैं और पाठ पूरा हो जाता है। शिक्षक बालकों की ग्राह्यता को जाँचने के लिए बीच—बीच में प्रश्न पूछता रहता है।

(5) इसका दूसरा उपयोग पाठ को पूर्णतया स्मरण करने हेतु नहीं किया जाता है, अपितु स्मरण करने के साथ–साथ समझने के लिए भी किया जाता है। इस प्रकार के प्रयोग के द्वारा बालकों में आर्जित ज्ञान को अपने शब्दों में अभिव्यक्ति करने की शक्ति उत्पन्न की जा सकती है। इस प्रकार उनकी अभिव्यंजना–शक्ति तथा लेखन–कला का विकास किया जाता है।

इतिहास–शिक्षण में बहु–पाठ्य–पुस्तक प्रणाली को अपनाना चाहिए, क्योंकि एकाकी पाठ्य–पुस्तक के प्रयोग से छात्रों में मुद्रित पृष्ठों के प्रति निर्भरता की भावना विकसित हो जाती है। परन्तु बहु–पाठ्य–पुस्तक के प्रयोग से छात्र उनका अध्ययन करके अपना निष्कर्ष बनाना सीख जाते हैं। दूसरे इतिहास–शिक्षण में इस प्रणाली का उपयोग इसलिए भी आवश्यक है कि इतिहास में बहुत–से विवाद ग्रस्त विषयों का समावेश होता है। उनकी सत्यता की जाँच करने हेतु बहु–पाठ्य–पुस्तकों का उपयोग लाभप्रद है।

पाठ्य–पुस्तक विधि के गुण–दोष

गुण –

1. इस विधि के द्वारा बालकों को इस बात का ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि किसी प्रश्न के लिए कितनी विषय सामग्री लिखनी है तथा उसको किस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए।
2. इसमें छात्र स्वयं सक्रिय रहकर ज्ञान अर्जित करते हैं।
3. इससे छात्रों तथा शिक्षकों के समय की बचत होती है।
4. इसके द्वारा छात्रों की बोधग्राह्यता की साथ–साथ परीक्षा होती चलती है।
5. पाठ्य–पुस्तक विधि छात्रों की निपुणता बढ़ाती है तथा उनमें पढ़ने का स्वभाव उत्पन्न करती है, क्योंकि पाठ्य–पुस्तकें छात्रों के दृष्टिकोण से लिखी जाती है।
6. इसके द्वारा छात्रों को इतिहास की विषय–वस्तु का ज्ञान व्यवस्थित रूप से प्राप्त होता है।
7. पाठ्य–पुस्तक विधि छात्रों के कार्य में नियोजन उत्पन्न करती है।
8. इसके द्वारा बालकों की स्मरण–शक्ति का विकास होता है।

दोष –

1. इसके द्वारा छात्र मुद्रित पृष्ठों के तथ्यों व भावों का अन्धानुकरण करने लगते हैं।
2. यह विधि छात्रों के पूर्व–ज्ञान को जाग्रत करने और उसका प्रयोग करने में असमर्थ रहती है।
3. यह विधि शिक्षण के सूत्रों, जैसे–सरल से कठिन की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर, आदि की उपेक्षा करती है।
4. यह विधि छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित नहीं कर पाती है तथा उनके मानसिक अन्तरिक्ष को व्यापक बनाने में असमर्थ रहती है।
5. इस विधि द्वारा छात्रों में रटने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है।
6. इसके प्रयोग से कक्षा का वातावरण अरूचिकर तथा नीरस रहता है।

प्रयोगशाला विधि

शिक्षा में वैज्ञानिक प्रवृत्ति ने प्रत्येक विषय के लिए अपनी प्रयोगशाला स्थापित करने को बाध्य किया है। इतिहास शिक्षण में प्रयोगशाला की आवश्यकता क्यों ?

1. इतिहास का शिक्षक एक वैज्ञानिक विषय का शिक्षण करता है। क्योंकि इतिहास एक विज्ञान है, इसलिए इतिहास हेतु प्रयोगशाला की आवश्यकता है।
2. इसके द्वारा छात्रों के लिए एक ऐसे वातावरण की सृष्टि की जाती है, जिसमें वे स्वयं सक्रिय रहकर ज्ञान अर्जित कर सकते हैं।
3. इसकी आवश्यकता इसलिए भी वांछनीय है कि शिक्षक इसके द्वारा समय के अपव्यय एवं वस्तुओं की टूट–फूट को रोक सकता है। यदि इसकी व्यवस्था नहीं होगी तो शिक्षक को अपने विषय की सामग्री को एक कक्षा सेू दूसरी कक्षा में ले जाने में पर्याप्त समय लगेगा और उस सामग्री के टूटने–फूटने का भी डर रहेगा।
4. प्रयोगशाला द्वारा अतीत को वास्तविक बनाने में सहायता मिलती है।

इतिहास–प्रयोगशाला की सामग्री –

इतिहास की प्रयोगशाला में अधोलिखित सामग्री का होना आवश्यक है –

1. प्रायोगिक कार्य के लिए मेजें
2. श्यामपट
3. शो–केस – इसमें सिक्के, मोहरें, बर्तन, वस्त्र, औजार आदि को रखा जायगा
4. रेडियो
5. मैजिक लैन्टर्न, प्रोजेक्ट, स्क्रीन आदि
6. ऐतिहासिक मानचित्र
7. समय–रेखाएँ, रेखाचित्र, समय–ग्राफ आदि
8. ऐतिहासिक चित्र

इस विधि के प्रयोग के लिए शिक्षक कार्यों का निर्धारण करता है। इसे 'कार्य निर्धारण विधि' के नाम से भी पुकारा जाता है। शिक्षक कार्य–निर्धारण करके उसके विषय में एक रूपरेखा प्रस्तुत करता है जिसमें वह यह भी बल देता है कि इस कार्य की पूर्ति में अमुक–अमुक पुस्तकों, स्त्रोतों आदि की सहायता अपेक्षित है तथा अमुक–अमुक स्थान पर से उससे सम्बन्धित सामग्री प्राप्त होगी। इस विधि के अन्तर्गत शिक्षक का स्थान एक पथ–प्रदर्शक, मित्र एवं दार्शनिक का होता है। वह उनके कार्य में निरर्थक हस्तक्षेप नहीं करेगा। परन्तु उनको तभी सहायता प्रदान करेगा, जबकि उनको उसकी सहायता की आवश्यकता होगी। इन सूचनाओं को ग्रहण करने के उपरान्त छात्र वैयक्तिक रूप से प्रयोगशाला में बैठकर अपना–अपना कार्य करेंगे। इस प्रकार इन्हें अपनी वैयक्तिक विभिन्नताओं के अनुसार कार्य प्राप्त हो जायेगा और उनकी वैयक्तिक विशेषता का विकास सम्भव हो जाएगा। इस निर्धारित कार्य को पूर्ण करने के लिए समय निर्धारित कर दिया जाता है, जो बालक अपने कार्य को अवधि से पूर्ण कर लेगा, उसे दूसरा कार्य प्रदान कर दिया जाएगा। इनके कार्यो की पूर्ति के आधार पर छात्रों को एक कक्षा से

दूसरी कक्षा के लिए उन्नति प्रदान की जाती है। प्रयोगशाला में प्रत्येक छात्र की उन्नति का लेखा रहता है, जिसमें शिक्षक उनकी उन्नति को लिखता रहता है।

एच.सी.हिल द्वारा इस विधि का स्वरूप इस प्रकार वर्णित किया गया है –

"प्रयोगशाला विधि में छात्रों का अधिकांश समय अपनी मेजों पर अध्ययन एवं लिखित कार्य करने में व्यतीत होता है। दो या तीन छात्र किसी संदिग्ध विषय पर चर्चा कर सकते हैं। दूसरे नोट्स की तुलना या किसी कार्य की रूपरेखा तैयार कर सकते हैं। एक छात्र शब्द–कोष को देखने में संलग्न हो सकता है....... दूसरा एटलस पर ध्यान देने में व्यस्त हो सकता हैकृ तीसरा छात्र किसी कठिनाई के विषय में शिक्षक से राय ले सकता है या अपने नोट्स या रूपरेखा के विषय में आलोचना प्राप्त कर सकता है। सामान्यतः कक्षा–कक्ष शान्त स्थान है, जिसमें छात्र किसी–न–किसी लाभप्रद क्रिया में संलग्न रहता है।"

प्रयोगशाला विधि के गुण दोष

गुण –

1. इसके द्वारा छात्र स्वःक्रिया द्वारा ज्ञान अर्जित करते हैं।
2. इस विधि के प्रयोग से सामूहिक शिक्षण के दोषों को दूर किया जा सकता है।
3. इसके प्रयोग से बालकों में स्वाध्ययन की आदत का निर्माण होता है।
4. इसके प्रयोग से छात्र पुस्तकालय का प्रयोग करना सीख जाते हैं।
5. इस विधि के द्वारा वर्तमान परीक्षा–प्रणाली के दोषों को दूर किया जा सकता है।

दोष –

1. इस विधि के प्रयोग से छात्रों द्वारा अर्जित किया हुआ श्रृंखलाबद्ध एवं सुसंगठित नहीं होता।
2. भारत में छात्रों के लिए उपयुक्त पत्र–पत्रिकाओं, भारतीय–इतिहास के स्त्रोतों का संकलन, उत्तम ऐतिहासिक पाठ्य–पुस्तकों आदि का अभाव है, जिनको प्रयोगशाला में रखा जा सके और छात्र उनका उपयोग कर सकें।
3. यह विधि बहुत व्ययपूर्ण है। यह भारत जैसे बहु जनसंख्या वाले देश के लिए उपयुक्त नहीं है, क्योंकि यहाँ तो सामान्य कक्ष भी उपलब्ध नहीं हो पाते। अतः विशेष कक्षों या प्रयोगशालाओं की व्यवस्था का कार्य एक स्वप्न के समान है।
4. यदि प्रयोगशाला में उचित ध्यान नहीं दिया गया तो यह विधि यांत्रिक बन सकती है।

समस्या समाधान विधि

समस्या–समाधान एक सामान्य शैक्षिक विधि है जिसमें शिक्षक तथा छात्र सचेत, नियोजित एवं साभिप्राय प्रयास द्वारा किसी कठिनाई या प्रश्न या समस्या का हल खोजते हैं। समस्या–समाधान मात्र तथ्यों का संग्रह या तर्क के अभाव में विचारों, धारणाओं आदि की स्वीकृति नहीं है। वरन् यह विमर्शी चिन्तन की प्रक्रिया है। डीवी के अनुसार विमर्शी चिन्तन के दो पहलू हैं। प्रथम–वह संदेहात्मक स्थिति, हिचकिचाहट एवं मानसिक कठिनाई जिसमें चिन्तन का जन्म होता है। द्वितीय–वह खोज कार्य जो सन्देह एवं हिचकिचाहट को दूर करेगा तथा मानसिक

कठिनाई का समाधान प्रदान करेगा। जार्ज जान्सन ने लिखा है– "मस्तिष्क को प्रशिक्षित करने का सर्वोत्तम ढंग वह है जिसके द्वारा मस्तिष्क के समक्ष वास्तविक समस्याएँ उत्पन्न की जाती हैं और उसको उनका समाधान निकालने के लिए अवसर तथा स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है।"

यह विधि योजना विधि से पर्याप्त समानता रखती है। इन दोनों विधियों में अन्तर इस बात का है कि योजना विधि में प्रायोगिक कार्य को महत्व प्रदान किया जाता है। यह प्रायोगिक कार्य एक वास्तविक स्थिति में सम्पन्न किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि योजना विधि में शारीरिक एवं मानसिक–दोनों प्रकार की क्रियाएँ सन्निहित होती हैं जबकि समस्या विधि में केवल मानसिक निष्कर्षों पर ही अधिक बल दिया जाता है, अर्थात् इसमें मानसिक हल ही प्रदान किया जाता है। अतः इस विधि का सबसे प्रमुख गुण–मानसिक क्रिया एवं विमर्शी चिन्तन है। इतिहास–शिक्षण में इस विधि का महत्वपूर्ण स्थान है।

इस विधि में शिक्षक यों तो स्वयं बालकों को समस्या दे देता है या छात्र स्वयं प्रस्तुत करते हैं। समस्या एक छात्र के द्वारा भी प्रस्तुत की जा सकती है तथा कई छात्र उसको सामूहिक रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं। परन्तु इसके प्रयोग से इस बात पर बल दिया जाता है कि छात्र समस्या को अपनी समस्या समझकर हल करने हेतु तत्पर रहें। इसके प्रयोग में अधोलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए–

(1) समस्या को प्रस्तावित करना – इस स्तर पर छात्रों को समस्या के लिए तैयार किया जाएगा। इस स्तर पर शिक्षक समस्या–समाधान के लिए पृष्ठभूमि तैयार करेगा। वह छात्रों को समस्या के सम्बन्ध में निश्चित विचार बनाने के लिए तैयार करेगा।

(2) समस्या समाधान के लिए निर्देशित करना – इस स्तर पर शिक्षक समस्या–समाधान के कार्य को निर्देशित करेगा। वह छात्रों को समस्या–समाधान के विभिन्न स्तरों के प्रति उपयुक्त दृष्टिकोण ग्रहण करने के लिए प्रेरित करेगा। छात्रों को समस्या–समाधान के लिए सहायता प्रदान करेगा। वह उनको तथ्यों को एकत्रित एवं संगठित करने के ढंग को बताएगा। साथ ही वह समस्या के समाधान के लिए छात्रों को एकत्रित एवं संगठित तथ्यों की जाँच करने के लिए प्रेरित करेगा। वह निष्कर्षो के निर्माण में उनको सहायता देगा।

(3) निष्कर्षों के सत्यापन में सहायता – वह छात्रों के निष्कर्षों के सत्यापन में सहायता प्रदान करेगा। साथ ही वह उन्हें यह जानने के लिए प्रेरित करेगा कि ये निष्कर्ष प्रयोग में लाये जा सकते है या नहीं।

समस्या समाधान विधि के गुण–दोष

गुण –

1. इसके द्वारा छात्र तथ्यों को एकत्रित एवं व्यवस्थित करना सीख जाते हैं।
2. इसके प्रयोग से बालक ऐतिहासिक विधि से अवगत हो जाते हैं।
3. इससे छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न हो जाता है तथा वे मुद्रित पृष्ठों का अन्धानुकरण नहीं करते हैं।
4. इसके प्रयोग से छात्र स्वक्रिया द्वारा ज्ञान अर्जित करते हैं।
5. इसके प्रयोग से छात्र समस्या हल करने के ढंग को सीख जाते हैं।
6. इस विधि के प्रयोग से छात्र 'सबसे उत्तम क्या है?' – के विषय में आलोचना, निर्णय, मूल्यांकन, तुलना तथा चयन करना सीख जाते हैं।

दोष –

1. यह विधि जूनियर स्तर के छात्रों हेतु व्यवहार्य नहीं है।
2. बार–बार प्रयोग करने से यह पद्धति नीरस एवं यांत्रिक बन जाती है।
3. इसमें समय बहुत लगता है, जबकि इतिहास को समय–तालिका में आवश्यकतानुसार भी समय प्राप्त नहीं हो पाता है।
4. इसमें सदैव सन्तोषजनक परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

योजना विधि

किलपैट्रिक द्वारा डीवी के प्रयोजनावाद के सिद्धातों के आधार पर इस पद्धति का निर्माण किया गया। इसका निर्माण विद्यालय के परम्परागत एवं शुष्क वातावरण को दूर करने के लिए किया गया। इसमें छात्रों की क्रियाशीलता को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। 'प्रोजेक्ट' शब्द की परिभाषा विभिन्न प्रकार से की गई है। किलपैट्रिक के अनुसार "प्रोजेक्ट वह सह्रदयपूर्ण अभिप्रायुक्त क्रिया है, जो पूर्ण संलग्नता के साथ सामाजिक वातावरण में पूरी की जाए। "प्रो. स्टीवेन्सन के अनुसार, "प्रोजेक्ट एक समस्यामूलक कार्य है, जिसका समाधान उसके प्रकृत वातावरण में रहते हुए ही किया जाता है। "प्रो. बैलार्ड के अनुसार, "प्रोजेक्ट वास्वविक जीवन का एक छोटा–सा अंश है जिसको विद्यालय में प्रतिपादित किया जा जाता है।" इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि योजना वह क्रिया है जो वास्तविक जीवन में रहकर पूर्ण की जाती है, अर्थात् वह अपने स्वाभाविक वातावरण में ही पूर्ण होती है।

इतिहास में इस पद्धति के प्रयोग के बारे में विभिन्न मत हैं। प्रो. बाइनिंग तथा बाइनिंग का मत है कि इतिहास में योजना पद्धति का व्यवहार कठिन है। परन्तु टी. डब्ल्यू सौसम्स का कथन है कि इतिहास–शिक्षण में योजना विधि का प्रयोग किया जा सकता है; ऐतिहासिक मानचित्र, मॉडल, समय–रेखाओं, समय–ग्राफों आदि का निर्माण करना, विभिन्न नगरों के इतिहास का अध्ययन सामयिक घटनाओं का शिक्षण आदि। परन्तु फिर भी इतिहास में इस पद्धति का प्रयोग अन्य सामाजिक विज्ञानों की भाँति बहुतायात से नहीं हो सकता।

इसके प्रयोग में निम्नलिखित स्तरों को पार करना पड़ता है –

1. परिस्थिति उत्पन्न करना, 2. योजना का चयन, 3. उद्देश्य–निरूपण, 4. योजना पूर्ण करने का कार्यक्रम, 5. कार्यक्रम को क्रियान्वित करना, 6. कार्य का निर्णय, 7. कार्य का लेखा।

व्याख्यान विधि

जेम्स एम.ली ने लिखा है– "व्याख्यान एक शिक्षण–शास्त्रीय विधि है जिसमें शिक्षक औपचारिक रूप से नियोजित रूप से किसी प्रकरण या समस्या पर भाषण देता है।" रिस्क के विचारानुसार–"व्याख्यान तथ्यों, सिद्धान्तों या अन्य सम्बन्धों का प्रतिपादन है जिनको शिक्षक अपने सुनने वालों को समझना चाहता है।" एक विधि के रूप में यह विधि यह मानकर चलती है कि सीखने वाला भाषण तथा इंगित किए सम्बन्धों को समझने की योग्यता रखता है। जेम्स एम.ली. का कथन है कि व्याख्यान विधि को निर्देश या कथन प्रविधि से नहीं मिलाना चाहिए। निर्देश द्वारा शिक्षक किसी मुख्य सूचना को प्रदान करता है जो छात्रों को अपने शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक होती है। कथन अपने रूप में संक्षिप्त होता है जबकि व्याख्यान काफी बड़ा। व्याख्यान को मुख्य उद्देश्य तथ्यों तथ धारणाओं को क्रमबद्ध रूप में प्रतिपादित करना है।

व्याख्यान विधि के गुण एवं दोष

गुण –

1. यह छात्रों को सुनने की कला में प्रशिक्षित करती है।
2. इसके द्वारा विषय–वस्तु को क्रमबद्ध एवं तार्किक रूप से प्रस्तुत किया जाता है जिससे छात्र सरलता से समझ सकें।
3. यह असंगत तथ्यों की अवहेलना करके छात्रों को संगत तथ्यों को ग्रहण कराने में सहायक है।
4. यह कम से कम समय में विषय–वस्तु को पूरा करने में सहायक है। सार ही यह शैक्षिक कुशलता को उत्पन्न करती है।
5. इसके द्वारा विषय–वस्तु में निहित सम्बन्धों पर छात्रों के ध्यान को आकृष्ट किया जाता है।

दोष –

1. यह शिक्षक–केन्द्रित विधि है जबकि आधुनिक शिक्षा बाल–केन्द्रित शिक्षा पर बल देती है।
2. छात्रों में लापरवाही उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान करती है।
3. इसमें समय का अपव्यय होता है क्योंकि बालक निष्क्रिय श्रोता के रूप में बहुत कम ग्रहण कर पाता है। शिक्षक की तैयारी भी व्यर्थ हो जाती है।
4. यह छात्रों को सीखने की प्रक्रिया में निष्क्रिय श्रोता बनाती है।
5. यह इस बात की कोई गारण्टी नहीं देता है कि छात्र व्याख्यान द्वारा दी गई विषय–वस्तु को समझ लेंगे।

सुझाव –

व्याख्यान–विधि को छात्रोपयोगी बनाने के लिए निम्नलिखत सुझावों पर ध्यान देना आवश्यक हैं –

1. यह किसी एक केन्द्रीय विचार या समस्या या प्रकरण पर आधारित होना चाहिए।
2. यह मध्य गति से प्रस्तुत किया जाए।
3. यह हाव–भाव युक्त ढंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
4. व्याख्यान नियोजित होना चाहिए।
5. शिक्षक को रूपरेखा तैयार कर लेनी चाहिए।
6. इसमें मौखिक उदाहरणों तथा शाब्दिक चित्रों का प्रयोग आवश्यकतानुसार किया जाना चाहिए।

वाद–विवाद विधि

आधुनिक शैक्षिक विचारधारा के अनुसार बालक को निष्क्रिय श्रोता नहीं माना जाता है वरन् उसे सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय बनाये रखने पर बल दिया जाता है। बालक जिस ज्ञान को क्रिया करके प्राप्त करता है वह स्थायी रहता है। बालक को सक्रिय बनाये रखने के दृष्टिकोण से विभिन्न क्रियात्मक शिक्षण–विधियों का प्रयोग किया जाता है। उनमें से एक वाद–विवाद विधि है। यह शिक्षण की वह विधि है जिसमें शिक्षक और छात्र

मिल–जुलकर किसी प्रकरण प्रश्न या समस्या के सम्बन्ध में स्वतन्त्रतापूर्वक सामूहिक वातावरण में विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। इसके अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए नीचे परिभाषाएँ दी जा रही हैं –

1. जेम्स एम. ली – "वाद–विवाद एक शैक्षिक सामूहिक क्रिया है जिसमें शिक्षक तथा छात्र सहयोगी रूप से किसी समस्या या प्रकरण पर बातचीत करते हैं।"

2. रिस्क – "वाद–विवाद का अर्थ है – अध्ययन को जानने वाली समस्या या प्रकरण में निहित सम्बन्ध ों का विचारशील विवेचन।"

3. सिम्पसन व योकम – "वाद–विवाद बातचीत का एक विशिष्ट स्वरूप है। इसमें सामान्य बातचीत की अपेक्षा अधिक विस्तृत एवं विवेकयुक्त विचारों का आदान–प्रदान होता है।"

वाद–विवाद के रूप – वाद–विवाद औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही रूप में हो सकता है। औपचारिक वाद–विवाद में प्रत्येक कार्य विधिवत् ढंग से किया जाता है। इसमें निश्चित नियमों के अनुसार कार्य होता है। ऐसे वाद–विवाद के लिए कक्षा के छात्र स्वयं में से सभापति, मन्त्री तथा अन्य पदाधिकारी चुनते हैं। छात्रगण इनके निर्देशन में समस्त कार्यों को निर्धारित नियामें के अनुसार करते हैं।

अनौपचारिक वाद–विवाद के संचालन के लिए किन्हीं निर्धारित नियमों का अनुसरण नहीं किया जाता है। इस प्रकार के वाद–विवाद में छात्र किसी विषय या प्रश्न या समस्या पर शिक्षक के निर्देशन में स्वतन्त्रतापूर्वक विचारों का आदान–प्रदान करते हैं।

वाद–विवाद विधि का स्वरूप – वाद–विवाद विधि के संचालन के लिए नेता, भाग लेने वालों, समस्या या प्रश्न तथा सामग्री की आवश्यकता है। वाद–विवाद के लिए छात्रगण स्वयं या शिक्षक समस्या प्रस्तुत कर सकता है। समस्या के प्रस्तुत होने के उपरान्त शिक्षक उद्देश्यों पर प्रकाश डालेगा तथा उससे सम्बन्धित सामग्री के स्त्रोतों को बतलाएगा छात्रगण इन विभिन्न स्त्रोतों से निर्धारित विषय या प्रकरण या समस्या से सम्बन्धित सामग्री का अध्ययन करेंगे। वे इस प्रकार समस्या के किसी पक्ष पर अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए तैयार करेंगे। छात्रों के विभिन्न समूह–सदस्य सम्बन्धित सामग्री, आँकड़ों एवं सूचनाओं को एकत्रित एवं आत्मसात् करके निश्चित तिथि पर वाद–विवाद का कार्य प्रारम्भ करेंगे। निर्वाचित नेता के द्वारा वाद–विवाद का संचालन किया जाएगा। उसके निर्देशों के अनुसार वाद–विवाद का कार्य चलेगा। शिक्षक का कार्य छात्रों के संदेहों को दूर करना होगा। वह एक साधारण सदस्य के रूप में कार्य करेगा। छात्रों के विचार–विमर्श के पश्चात् निर्वाचित नेता विषय से सम्बन्धित अपनी संक्षिप्त टिप्पणी प्रस्तुत करेगा। इसके उपरान्त वाद–विवाद कार्य की समाप्ति हो जाएगी। इस सम्पूर्ण कार्यवाही को छात्र मन्त्री के द्वारा नोट किया जाएगा।

वाद–विवाद विधि के गुण एवं दोष

गुण –

1. यह छात्रों में स्वतन्त्र अध्ययन करने की आदत का विकास करती है।
2. यह छात्रों को सहयोगी रूप से कार्य करने का प्रशिक्षण प्रदान करती है।
3. यह छात्रों को विषय–सामग्री का चयन एवं संगठन करना सिखाती है।
4. इसके द्वारा छात्रों में किसी वस्तु के सम्बन्ध में चिन्तन करने की शक्ति का विकास किया जाता है।
5. इसके द्वारा छात्रों में सहयोग एवं सहिष्णुता की भावना का विकास किया जाता है।

6. इसके प्रयोग से छात्र अपने भावों एवं विचारों को सुव्यसस्थित रूप में अभिव्यक्त करना सीख जाते हैं।
7. इसके द्वारा छात्र सामूहिक रूप से निर्णय करना सीख जाते हैं।

दोष –

1. इस पद्धति के विपक्ष में यह कहा जाता है कि इसके द्वारा छात्र निरर्थक वाद–विवाद में पड़कर समय नष्ट करते हैं।
2. वाद–विवाद में कक्षा के कुछ ही छात्र प्रमुख रूप से क्रियाशील रहकर अन्य छात्रों को अवसर प्राप्त करने नहीं दे पाते हैं।
3. इससे शर्मीले तथा मन्द बुद्धि बालक समुचित लाभ नहीं उठा पाते हैं।
4. इसका समुचित संचालन उच्च कक्षाओं में ही सम्भव हो सकता है।

सुझाव –

1. सभी छात्रों को वाद–विवाद में भाग लेने के लिए अवसर प्रदान किए जाएँ इसके द्वारा अनौपचारिक वाद–विवाद नामक रूप का प्रयोग किया जाए।
2. छात्रों को निष्कर्षों एवं स्वतन्त्र निर्णयों के निर्माण में सहायता प्रदान की जाए।
3. समस्या शैक्षिक महत्व की हो। साथ ही कक्षा के लिए अर्थपूर्ण या उपयोगी हो।
4. स्मृति की अपेक्षा तर्कों तथा निर्माण पर बल दिया जाए।
5. समस्या का चयन सहयोगी रूप से किया जाए।
6. विचारों की अभिव्यक्ति एवं उनके संगठन में छात्रों को सहायता प्रदान की जाए।

अभ्यास के प्रश्न

1. इतिहास विज्ञान है अथवा कला समझाइए ।
2. इतिहास शिक्षण के प्रमुख उद्देश्यों को लिखिए।
3. इतिहास शिक्षण की व्याख्यान विधि के गुणों को लिखिए।
4. इतिहास शिक्षण में पाठ्य पुस्तक विधि के प्रमुख गुण कौन–कौन से हैं ?
5. इतिहास शिक्षण समस्या विधि को समझाते हुए इसके गुण दोषों को लिखिए।
6. इतिहास शिक्षण की प्रयोगशाला विधि को विस्तार से समझाइए।
7. इतिहास शिक्षण की प्रमुख विधियों का वर्णन कीजिए।
8. इतिहास शिक्षण के महत्व को सविस्तार लिखिए।
9. अन्तर्राष्ट्रीय सदभाव की विवेचना कीजिए।

****

इकाई – 4

प्रारंभिक स्तर पर भूगोल शिक्षण और भूगोल की समझ

भूगोल एक रोचक विषय है। भूगोल में प्रकृति के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त की जाती है। मौसमी घटना से लेकर प्राकृतिक आपदा तक का अध्ययन इस विषय के अन्तर्गत किया जाता है।इसके साथ ही साथ इसमें मानव और उसके वातावरण का भी अध्ययन किया जाता है।इस तरह इसकी विषय वस्तु ही बड़ी रोचक है। भौगोलिक परिस्थितियों के अध्ययन के बिना योजनाएँ बनाना सम्भव नहीं है। मानवजीवन में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक विभिन्नता का कारण भौगोलिक हो सकता है। पूर्व से पश्चिम उत्तर से दक्षिण में खानपान रहन–सहन वेशभूषा पहचान में अंतर क्यों है और इसका क्या कारण है?

आज शिक्षा के क्षेत्र में जो विषय की समझ पर बात हो रही है वह हमारे बदलते परिवेश की अत्यन्त महत्वपूर्ण मांग है। केवल सूचना देने से शिक्षा का उद्‌देश्य पूर्ण नहीं हो सकता। भूगोल में पाठ्यवस्तु को व्यावहारिक जीवन के विभिन्न संदर्भो से जोड़कर समझने की जरूरत है। जिससे विद्यार्थी आने वाली समस्याओं का सामना कर उनका समाधान खोज सके। मानव और प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए अपनी उपयोगिता प्रमाणित कर सके।

आधुनिक शिक्षा में भूगोल का स्थान

शिक्षा में भूगोल का विशेष स्थान है। भूगोल के बिना हम संसार को समझ नहीं सकते। किसी भी सांस्कृतिक या व्यावसायिक शिक्षा प्रणाली में भूगोल का महत्वपूर्ण जगह होना निर्विवाद है। विषय की उपयोगिता के कारण भूगोल को प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भूगोल के विशद ज्ञान कोष में विभिन्न स्तर के पाठयक्रमों में कितनी बातें रखी जाए। इसका चयन भी महत्वपूर्ण है।

आईजन हावर के शब्दों में "भूगोल मानवता का आधार है मानवता की शिक्षा के बढ़ते हुए प्रभाव को पूर्ण करने में भूगोल सबसे बड़ा सहायक है।"

आज भूगोल का महत्व न केवल एक शिक्षण के रूप में सर्वाधिक है बल्कि एक मानवतावादी विषय के रूप में सर्वोपरि है जिसकी तुलना और किसी भी शिक्षण विषय के साथ करना सम्भव नहीं है।

भूगोल शिक्षण क्यों ?

नौखुड रिपोर्ट के अनुसार "कोई भी व्यक्ति एक प्रशिक्षित भूगोल वेत्ता से अधिक इस बात को नहीं समझ सकता कि संसार के प्रदेश एक दूसरे पर आधारित हैं। उसके अतिरिक्त विश्व सद्‌भावना के लिए सही दृष्टिकोण सही तथ्यों को आधार मानकर अन्य कोई नहीं रख सकता है।"

भूगोल का ज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसे प्रमुख दो बातों से व्यक्त किया जा सकता है, पहला भूगोल विषय में पृथ्वी और पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों का ज्ञान हम अच्छी तरह दे सकते हैं। दूसरा वर्तमान असमानता और अशांति के समय में इस विषय का ज्ञान छात्रों में एक सद्‌भावनापूर्ण दृष्टिकोण पैदा कर सकता है। यह किसी भी देश के अच्छे नागरिक के लिए आवश्यक है।

हम देखते हैं कि भूमि, जलवायु, पेड़–पौधे, जीव–जन्तु, मनुष्य, पशुपक्षी, नदी–नाले, पर्वत, पहाड़ मैदान, व्यापार उद्योगों का विकास, सड़क और रेल सभी एक दूसरे से अंतर्संबंधित हैं। ये सभी दूसरे से प्रभावित होते हैं

तथा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं एक दूसरे से मिलकर संतुलन बनाए हुए हैं। इसी कारण पृथ्वी ही ऐसा ग्रह है जहाँ जीवन और सभ्यता, संस्कृति, फलफूल रही है।

भूगोल का आशय

अंग्रेजी भाषा में भूगोल का पर्यायवाची शब्द ज्योग्राफी (Geography) है। ज्योग्राफी शब्द यूनानी भाषा के Ge तथा grapho शब्दों से मिलकर बना है। Ge का अर्थ है पृथ्वी और ग्राफो grapho का अर्थ है वर्णन करना। इस तरह ज्योग्राफी का सामान्य अर्थ है पृथ्वी का वर्णन करना। परन्तु पृथ्वी का वर्णन करना किस पृष्ठभूमि अथवा किसी दृष्टिकोण से करना चाहिए इस विषय का विवेचन भूगोल के विद्वानों ने किया है।

शब्दकोष के अनुसार – '' भूगोल पृथ्वी के धरातल और उसके निवासियों का विज्ञान है।''

मोंकहाउस के अनुसार – ''भूगोल पृथ्वी तल का उसकी क्षेत्रीय भिन्नता के साथ मानवीय निवास के रूप में अध्ययन है।''

हार्टशार्न के अनुरूप – ''भूगोल वह अनुशासन है जो पृथ्वी के एक जगह से दूसरे जगह तक परिवर्तनशील स्वरूपों का वर्णन और उनकी व्याख्या मानव के संसार के रूप में करता है।''

कान्ट के अनुसार –''भूगोल वह विज्ञान है जिसमें पृथ्वी के उस भाग का अध्ययन किया जाता है जो कि मानव का घर है।''

रिट्टर के अनुसार –''भूगोल में पृथ्वी तल (Earth Surface) का अध्ययन किया जाता है जो कि मानव का निवास गृह है।''

रिचथ्रोफेन के मतानुसार – ''भूगोल में पृथ्वीतल के विभिन्न क्षेत्रों (Different arias) का अध्ययन उनकी समस्त विशेषताओं के अनुरूप किया जाता है।''

भूगोल शिक्षण के उद्देश्य

भूगोल के एक सफल अध्यापक को उसके शिक्षण के मुख्य उद्देश्यों का ज्ञान होना चाहिए। सफल अध्यापक अपनी योग्यता तथा सफल शिक्षण द्वारा हमेशा उन उद्देश्यों की पूर्ति करने का प्रयास करता है जो बालक के व्यवहार में अपेक्षित बदलाव आए उसका लक्ष्य भी भूगोल शिक्षण द्वारा निर्धारित किया जाता है। बालक उन लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है जो उसके लिए निर्धारित किए जाते हैं। अध्यापक शिक्षण विधियों,प्रविधियों और अपनी विभिन्न सहायक सामग्रियों को तभी सुनियोजित रूप से प्रयुक्त कर सकते हैं जब उन्हें हर उद्देश्य की स्पष्ट समझ हो।

भूगोल शिक्षण के मूल उद्देश्य निम्नलिखित है :–

1. भाइचारे की भावना को जन्म देना।
2. सामाजिक चेतना पैदा करना
3. राष्ट्रीयता का विकास करना।
4. मानसिक शक्तियों को दृढ़ करना।
5. जीविकोपार्जन की क्षमता विकसित करना।
6. सौन्दर्य बोध का विकास।
7. अवकाश का सदुपयोग।

8. व्यापक दृष्टिकोण पैदा करना।
9. भौगोलिक स्थिति का ज्ञान कराना।
10. तर्क शक्ति और तुलनात्मक कौशल का विकास।

प्रारंभिक स्तर पर भूगोल शिक्षण के उद्देश्य

प्राथमिक स्तर पर भूगोल शिक्षण में उद्देश्य बच्चों की क्षमताओं को देखकर ही क्रियानुसार निर्धारित करना चाहिए। इस स्तर पर बच्चों की शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ ज्यादा परिपक्व तथा स्थाई हो जाती है। बाह्य जगत के प्रति बच्चों की रूचि तथा कुतुहल और भी बढ़ जाता है। उनकी अनुसंधान की प्रवृत्ति तीव्र हो उठती है। वे वस्तुओं तथा उनके विषय में जानकारी को एकत्रित करने में रूचि लेने लगते हैं। बच्चों की निरीक्षण शक्ति भी बढ़ जाती है और हर वस्तु को सही–सही समझने की कोशिश करते हैं। घर से स्कूल आते वक्त अथवा सैर के वक्त बच्चे हर वस्तु को देखते हैं। उसकी स्मरण–शक्ति में वृद्धि होती है तथा उनके मस्तिष्क वस्तुओं को जल्दी धारण कर लेते हैं। बच्चे इस वक्त वस्तुओं तथा अनुभवों को एकत्रित करने में लगे रहते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में अविवेक से एकत्रित किए हुए विचारों को बच्चे क्रम से रखने तथा विश्लेषण करने में अपनी–अपनी बुद्धि का उपयोग करने लगते हैं।

लगभग 11 अथवा 12 वर्ष के निकट उनकी आत्म–चेतना शीघ्रता से विकसित होती है और अध्यापक द्वारा की गई प्रशंसा अथवा निन्दा का उनके मस्तिष्क पर जल्दी प्रभाव पड़ता है। इसलिए अध्यापक को बड़ी सतर्कता से कक्षा में इनका उपयोग करना चाहिए। बच्चे अपनी रूचि के अनुरूप अपने समूह बना लेते हैं और अपनी कक्षा में से नेता चुन लेते हैं। बच्चों की इस प्रवृत्ति के कारण सामूहिक योजनाएँ बहुधा सफल हो जाती हैं इस अवस्था के बच्चों में संग्रह भाव, अनुकरण, उत्सुकता, रचना करना आदि प्रवृत्तियाँ होती हैं। इस स्तर पर भूगोल शिक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं :–

1. भूगोल विषय के प्रति बच्चों की जिज्ञासा एवं रूचि को आकर्षित करना।
2. भूगोल के साधारण तथ्यों तथा उसकी परिभाषिक शब्दावली से बच्चों को परिचित कराना।
3. बच्चों में क्रमशः विकसित होने वाली जीवन की गति को सफल नागरिकता की दिशा में मोड़ना।
4. भूगोल के अध्ययन द्वारा शिक्षक को बालक–बालिकाओं की मानसिक शक्तियों का विकास करने में मद्द करना।
5. भूगोल शिक्षण का एक प्रमुख उद्देश्य यह है कि छात्र–छात्राओं में जो देश के भावी नागरिक हैं, प्राकृतिक साधनों का उचित तथा मितव्ययिता से उपयोग करने की क्षमता का विकास करना।
6. छात्र–छात्राओं में भूगोल शिक्षण द्वारा विश्व बन्धुत्व की भावना पैदा करना तथा मानवीय मूल्यों, भ्रातृत्व आदि गुणों को विकसित करना।
7. भूगोल शिक्षण द्वारा छात्र–छात्राओं में कल्पना, चिन्तन, तर्क शक्ति का विकास करना।
8. छात्र–छात्राओं में भौगोलिक कौशलों को विकसित करना।
9. प्राकृतिक वातावरण और मानव जीवन के बारे में समझ विकसित करना।
10. चित्र, मानचित्र, ग्लोब, मॉडल, ग्राफ, रेखाचित्र आदि के अध्ययन की समझ विकसित करना।

भूगोल शिक्षण की विधियाँ/प्रविधियाँ

भूगोल का अध्यापन लम्बे समय से चला आ रहा है। भूगोल एवं परम्पराओं को भावी पीढ़ी तक पहुँचाने हेतु सहज एवं सरल माध्यम कहानी एवं कविता के साथ–साथ लोक गीत भी रहे हैं। लेकिन शिक्षा जगत में कई

शोधों एवं प्रयोगों के परिणाम स्वरूप नई–नई विधियों का जन्म होता गया। भूगोल में रटंत प्रणाली को दूर करते हुए अवबोधों का विकास सभी ओर होता गया। भूगोल शिक्षण में विधियों के साथ–साथ प्रविधियों की भी विशिष्ट भूमिका है हम सामाजिक विज्ञान की अध्यापन विधियों का अध्ययन इकाई सात में करेंगे यहाँ भूगोल की अध्यापन प्रविधियों को समझने का प्रयास करते हैं –

1. क्लोज टेस्ट (Cloze test) – बच्चों में तर्कशक्ति एवं शब्दज्ञान को विकसित करने हेतु यह अत्यंत प्रभावी विधि है। इसे क्लोज ने विकसित किया था। इसमें किसी एक पैराग्राफ का चयन कर उसे श्यामपट पर लिखा या अभ्यास के लिए दिया जा सकता है। लिखते समय कुछ महत्वपूर्ण जानकारियों को गायब कर उसकी जगह खाली स्थान रखा जाता है। पूरे वाक्य को पढकर विद्यार्थियों को सोच समझकर, तर्क के आधार पर अपने शब्द ज्ञान एवं भावार्थ के आधार पर खाली स्थानों में उचित शब्द लिखने के लिए चयन करना पड़ता है। समय–समय पर ऐसे क्लोज टेस्ट देने से विद्यार्थियों में सोचने एवं तार्किक क्षमता का विकास होता है और वे सक्रिय रहते हैं । इसके माध्यम से विद्याथियों में चिंतन क्षमता, तार्किक क्षमता, शब्द ज्ञान, भावार्थ समझने की क्षमता, भाषाई पकड़,कल्पना शक्ति इत्यादि कौशलों का विकास होता है।

2. Wh – टेम्पलेट (Wh template) – अक्सर यह शिकायत देखने को मिलती है कि बच्चों को मूलभूत बातें नहीं मालूम होती। इसका कारण अध्यापक द्वारा विषयवस्तु को पुस्तक से सीधे–सीधे पढ़ा देना या विषय की तह तक नहीं जाना माना जा सकता है। शिक्षकों को भी विषय का पर्याप्त ज्ञान न होना और मुलभूत बातों को जाने बिना वे विभिन्न मुद्दों को छूकर आगे बढ़ जाते हैं। उनके विद्यार्थियों अथवा स्वयं को उस विषय से संबंधित मुद्दे पर कितना ज्ञान है इसकी जानकारी नहीं मिल पाती और अज्ञान का स्तर दिनों दिन बढ़ता जाता है। कक्षा का वातावरण भी ऐसा होता है कि बच्चे अपने शिक्षक से अपनी शंका, जिज्ञासाओं का समाधान नहीं कर पाते। इन परिस्थितियों में अध्ययन–अध्यापन का कार्य प्रायः अधूरा ही रह जाता है और मात्र एक औपचारिक शिक्षण ही हो पाता है। सीखने के क्रम में प्रश्न पूछना अथवा जिज्ञासा समाधान एक महत्वपूर्ण कड़ी होती है। इस कड़ी को बेहतर ढंग से संपन्न करवाने में Wh–टेम्पलेट महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इस प्रविधि के क्रियान्वयन करने हेतु शिक्षक सर्वप्रथम कक्षा में बच्चों को दोस्ताना माहौल तैयार कर प्रश्न पूछने का अवसर प्रदान करे ।

कक्षा में किसी एक दीवार पर चार्ट में Wh–टेम्पलेट बनाकर स्थापित करे। जब भी कोई प्रकरण पढ़ाएँ, विद्यार्थियों को अपने आप से इस Wh–टेम्पलेट से उस प्रकरण के संबंध में विभिन्न प्रश्नों के जवाब स्वयं से पूछने का कहें। इसे शिक्षक एवं विद्यार्थियों को एक नियमित आदत के रूप में अभ्यास में लाने की जरूरत है। ऐसा करने पर किसी भी विषयवस्तु में मूलभूत बातों की जानकारी हो जाती है और किसी प्रकार की शंका नहीं रह जाती। Wh प्रश्न हैं – what/who/when/where / why/how/ whose etc. (क्या, कौन, कब, कहाँ, क्यों, किससे इत्यादि)।

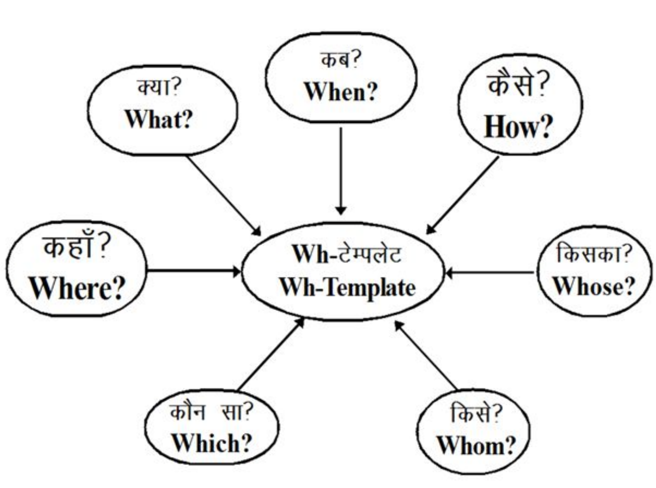

प्रविधि के इस्तेमाल से बच्चों में संकोच या भय समाप्त होगा और प्रश्न पूछने की आदत पड़ सकती है और साथ ही हर प्रकरण से जुड़े विभिन्न तथ्यों की स्वयं जाँच–परख का माहौल तैयार होगा। इस प्रविधि के इस्तेमाल से जिज्ञासा, चितंन, अनुसंधान, विश्लेषण, सश्ंलेषण, प्रस्ततुीकरण, स्व–मूल्यांकन, व्यवहार परिवर्तन इत्यादि कौशलों का विकास होगा।

ध्यान रहे कि विभिन्न प्रकरणों में अलग–अलग प्रकार के Wh लगाए जाते हैं।

3 किम (KIM) – कई बार शिक्षक को कुछ विशिष्ट तरीके समय पर याद नहीं आते या कुछ शंका हो जाती है । ऐसे में यदि वह किम तकनीक का उपयोग करे तो ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होती। इसमें इस प्रकार के नए Key Ideas को एक सारिणी बनाकर इस प्रकार लिखकर ध्यान में रखा जा सकता है। इस सारिणी में तीन कॉलम होते हैं। पहले कॉलम में मुख्य बिन्दु (की वर्ड) लिखा जाता है। दूसरे कॉलम में उससे संबंधित सूचनाएँ (Information) लिखी जाती है। तीसरे कॉलम में उस मुख्य बिन्दु (की वर्ड) को याद रखने के लिए कुछ याददाश्त सूचना या चित्र बनाये जाते हैं। किम तकनीक से ऐसे विभिन्न क्षेत्रों के लिए चार्ट तैयार किया जा सकता है।

कक्षा अध्यापन करते समय ऐसे विषयों की सूची बनाकर किसी उपयुक्त स्थान पर एक चार्ट तैयार किया जा सकता है जिसमें तीन कॉलम की सारिणी बनाकर बच्चों के समक्ष कुछ दिनों तक रखा जा सकता है ताकि उसे देखकर उन्हें उस प्रकरण की बेहतर जानकारी प्राप्त हो सके और विभिन्न मुद्दों पर कोई शंका न रह जाए। प्रायः नए शब्द आदि में भी विद्यार्थियों को शंका हो जाती है और समय पर उसका अर्थ समझ में नहीं आ पाता ऐसी स्थिति में भी यह तकनीक बहुत उपयोगी हो सकती है । इस हेतु उन्हें उस शब्द को पहले कॉलम में लिखते हुए दूसरे कॉलम में उसका अर्थ सरल वाक्य में और तीसरे में उस शब्द को याद रखने हेतु कोई चित्र या सूचना लिखी जा सकती है । चित्र बनाने में समय न लगाते हुए सरल रेखा चित्र बनाए जा सकते हैं अथवा अखबार आदि से काट कर चिपकाया भी जा सकता है । उदाहरण के लिए अकाल का अर्थ यदि हमें याद नहीं रह पाता तो हम उसे पहले कॉलम में लिखते हुए दूसरे कॉलम में उसका अर्थ यानी पानी न गिरने से सूखा अथवा अकाल की जानकारी देते हुए तीसरे कॉलम में बादल दिखाकर उस पर कट का निशान अर्थात पानी न गिरने की स्थिति को सरल चित्र से समझाया जा सकता है ।

KIM Table

KEY WORDS	INFORMATION	MEMORY CLUES

4 क्रोनो– लॉग (Chrono-log) - कई बार हमें कई ऐसी चीजें ध्यान में रखनी पड़ती है जिनमें एक विशेष क्रम होता है। कभी कभी सामाजिक विज्ञान अन्तर्गत भूगोल में भी क्रम का बहुत महत्व होता है । ऐसी स्थिति में शिक्षक यदि इन घटनाओं को क्रम से क्रोनो–लॉग के रूप में लिख कर अपने सामने या कक्षा में एक विशेष स्थान पर प्रदर्शित कर सके तो उन्हें देख– देख कर बच्चे ऐसी घटनाओं के क्रम को सही तरीके से बिना रटे याद कर सकते हैं।शिक्षक को अपने विषय में ऐसे क्षेत्र का चिह्नांकन कर लेना चाहिए जहाँ किसी घटना या गतिविधि का एक निश्चित क्रम हो और क्रम से प्रस्तुत कर सकने पर ही उसका महत्व हो । इन क्षेत्रों को उनके सही क्रम में रखते हुए चार्ट पेपर में बच्चों अथवा शिक्षक के माध्यम से क्रोनो–लॉग का विकास किया जा सकता है।

इस प्रविधि के उपयोग से स्मरण शक्ति, जानकारियों का क्रमवार संयोजन, विश्लेषण एवं संश्लेषण इत्यादि कौशलों का विकास किया जा सकता है ।

5 पाठ के आधार पर प्रश्न –प्रायः देखने में यह आता है कि शिक्षक, विद्यार्थियों से वही प्रश्न पूछते हैं, जो उनकी पाठ्य पुस्तक में दिए गए रहते हैं और विद्यार्थी भी रटकर इन प्रश्नों के उत्तर देते हैं। इस तरह के अध्ययन में मूल चरित्र, विषय पर समझ, कहीं पीछे छूट जाता है और विद्यार्थी, रटने की प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होने लगता है। शिक्षक भी अपने अध्यापन कौशल को पाठ्यपुस्तक में दिए गए प्रश्नावली तक सीमित कर लेते हैं और विद्यार्थी भी इसी रटंत पद्धति से अपना अध्ययन करने लगते हैं।

इस प्रकार की अध्ययन – अध्यापन प्रणाली उन शिक्षकों के लिए सुविधाजनक होती है, जिनकी उनके अपने विषय पर पकड़ कमजोर होती है और वे अध्यापन कार्य को मात्र औपचारिकता समझते हैं, इसमें नुकसान विद्यार्थियों को उठाना पड़ता है ।

इस प्रकार की प्रणाली के दोष को दूर करने के लिए अन्य प्रविधियों के साथ–साथ, पाठ के आधार पर प्रश्न प्रविधि अत्यंत उपयोगी साबित होती है। बच्चों में आवश्यक चिंतन कौशल का विकास हो एवं वे विषय वस्तु पर आवश्यक समझ के आधार पर शिक्षक द्वारा पूछे गए प्रश्नों का सही–सही उत्तर दे सकें।

प्रश्नों की विविधता से विद्यार्थियों में ऐसे कौशल का विकास होता है, जिसके द्वारा वे स्वयं प्रश्नों के उत्तर दे सकने में सक्षम होते हैं।

इस प्रविधि में किसी एक पाठ या एक पैराग्राफ को विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए देकर फिर उनसे कुछ प्रश्नों के उत्तर देने के लिए कहा जाता है। विद्यार्थी पाठ को पढ़ते समय उसके महत्वपूर्ण बिन्दुओं का नोट तैयार कर सकते हैं ।

विद्यार्थियों को निर्धारित समय में पठन एवं लेखन के उपरांत शिक्षक द्वारा तैयार किए गए प्रश्नों का उत्तर देना होता है । शिक्षक इन प्रश्नों को पहले से तैयार करके रखते हैं जो पाठ्यपुस्तक में दिए गए प्रश्नों से अलग हो सकते हैं । विद्यार्थी, प्रश्नों का उत्तर देने के लिए अपने नोट एवं स्मरण शक्ति की मदद ले सकते हैं।

शिक्षक को पाठ्यपुस्तक में दिए गए प्रश्नों के अलावा प्रश्न तैयार करके अध्यापन के उपरांत अध्ययन किये गए समस्त प्रकरणों पर विद्यार्थियों से प्रश्न पूछने के लिए नये– नये प्रश्न निर्माण करने की आदत डालनी चाहिए।

इस प्रविधि पर कार्य करवाते समय शिक्षक यह ध्यान दे कि, विद्यार्थी शीघ्र पठन करें और आवश्यक बिन्दुओं के नोट्स तैयार करते जाएँ एवं निर्धारित समय के भीतर उनके प्रश्नों का उत्तर दे दें। विद्यार्थियों को किसी भी विषय वस्तु को पढ़ते समय ध्यानपूर्वक समझ विकसित करनी चाहिए और उस पर महत्वपूर्ण बिन्दुओं का नोट बनाते जाएँ। विषय पर समझ ऐसी हो कि शिक्षक द्वारा पूछे गए किसी भी प्रश्न का उत्तर आसानी से दे सकें। इसके लिए उन्हें शीघ्रता से समझ विकसित करने का, शीघ्रता से नोट्स तैयार करने का और निर्धारित समय में प्रश्नों का उत्तर देने का अभ्यास करना होगा।

प्रभाव एवं कौशल विकास : इस प्रविधि से विद्यार्थी किसी भी विषय एवं प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम होंगे। रटने की प्रवृत्ति से छुटकारा मिलेगा और प्रश्नों के उत्तर देने में झिझक दूर होगी। शिक्षकों की अध्यापन प्रणाली में सुधार आएगा ।

बच्चों में त्वरित प्रतिक्रिया, विषय की शीघ्र समझ, चिंतन कौशल, स्मरण क्षमता, स्व–स्फुर्त हल खोजना, प्रस्तुतीकरण, समय बन्धन में कार्य करना, विश्लेषण, सक्रिय अध्ययन इत्यादि कौशल विकसित होंगे।

6 नोट्स लिखना (Notes Making) –हम प्रायः अध्ययन के दौरान अपनी स्मरण शक्ति पर ज्यादा विश्वास करते हुए पढ़ाये जा रहे विषय के प्रमुख बिन्दुओं को याद रखने की कोशिश में लगे रहते हैं, पर होता यह है कि बहुत से प्रमुख बिन्दुओं को एक साथ मस्तिष्क में संजोकर रखना सम्भव नहीं हो पाता है फलस्वरूप जिन तथ्यों का हमने अध्ययन किया था, वे भी विस्मृत हो जाते हैं। अतः केवल स्मरण क्षमता पर ही निर्भर न रहा जाए वरन पढ़ते समय विषय–वस्तु के प्रमुख बिन्दुओं को नोट बुक में लिखते जाएँ तो अध्ययन में स्थायित्व आ सकता है। हमारे अध्ययन का प्रमखु उद्देश्य प्राप्त किए गए ज्ञान का हमारे मष्तिस्क में लम्बे समय तक बने रहना है तो ऐसे में हमें और भी प्रभावी तरीकों की आवश्यकता होगी, जिसके लिए नोट लिखना प्रविधि एक महत्वपर्णू प्रविधि है।

इस प्रविधि में अध्ययन के दौरान महत्वपूर्ण बिन्दुओं का नोट बनाने का अभ्यास करवाया जाता है। इन नोट्स के आधार पर तत्कालिक तौर पर प्रश्न पूछ कर विद्यार्थी के ज्ञान की परख कर सकते हैं या कुछ दिनों के पश्चात विद्यार्थियों को नोट देखकर प्रकरण को पुनः याद करके लिखने को भी कहा जा सकता है।

ऐसा अभ्यास करवाने से विद्यार्थी अपने ज्ञान अर्जन के प्रति हमेशा सजग रहते हैं और किसी भी समय प्रश्नों के उत्तर देने में वे सक्षम होंगे।

यह लगातार अभ्यास आधारित प्रविधि है, इसमें शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण है। शिक्षक को पढ़ाते समय ध्यान देना होगा कि विद्यार्थी अध्ययन करते समय विषय के प्रमुख बिन्दुओं का सही ढंग से नोट्स बना रहे हों ताकि उसका सहारा लेकर आवश्यक्तानुसार उसे विस्तारित कर सकें। शिक्षक को ध्यान देना चाहिए कि विद्यार्थी कोई भी बिन्दु छोड़े नहीं और उनकी लेखनी सुस्पष्ट हो। लेखन क्षमता के कौशल को विकसित करने वाली इस प्रविधि का विद्यार्थियों को लगातार अभ्यास करना होगा।सुस्पष्ट एवं सटीक नोट्स बनाकर शिक्षक से उसका परीक्षण करवाना होगा ताकि भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर उससे पूरा प्रकरण पुनः बनाया जा सके। शिक्षक को भी सतत रूप से बच्चों के नोट्स की जाँच करते रहना चाहिए।

प्रभाव एवं कौशल विकास : विषय आधारित स्वयं के विचार से नोट्स तैयार करने से विषय वस्तु पर समझ और पकड़ स्थाई हो जाती है और यही स्थाई ज्ञान लम्बे समय तक स्मरण में बना रहता है। इस प्रविधि द्वारा बच्चों में लेखन क्षमता, विषय की शीघ्र समझ, चिंतन कौशल, स्मरण क्षमता, सुलेख, प्रस्तुतीकरण, भाषा में पकड़,मूल्यांकन एवं परीक्षण, सक्रियता से अध्ययन इत्यादि, कौशल विकसित होंगे ।

7 माइन्ड मैप (Mind Map) –जब किसी विषय–वस्तु की अवधारणा पर अच्छी तरह से समझ विकसित हो जाए एवं उसमें समाहित समस्त बिन्दुओं को मस्तिष्क में लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जाए तो अर्जित किया हुआ ज्ञान हमेशा काम आता है। ऐसे कौशल को विकसित करने में सबसे अहम बात यह है कि, हम ये अच्छी तरह से समझ लें कि अध्ययन किए जा रहे प्रकरण की प्रकृति एवं उसमें उल्लेखित बातों का वर्गीकरण किस तरह का है जैसे प्रकरण क्या है, उसके मुख्य तथ्य क्या हैं, तथ्यों में अंतःसम्बन्ध किस प्रकार के हैं आदि।

जब तथ्यों का वर्गीकरण हो जाता है, तो प्रकरण पर एक समग्र समझ बन जाती है। इस बीच हमें सूचनाओं का विश्लेषण करने का अभ्यास भी हो जाता है और इस बात की समझ भी विकसित हो जाती है कि हम पूरी सूचनाओं को किस प्रारूप में रखें ताकि समय आने पर उसे पूरी तरह से विस्तारित कर सकें। ऐसी परिस्थिति में माइंड मैप का उपयोग अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है।

माइंड मैप किसी प्रकरण को लम्बे समय तक याद रखने में सहायक होता है। ''किसी भी विषय के विभिन्न विषय–वस्तु पर उनकी प्रकृति एवं व्याख्या के आधार पर प्रमुख विचारों,तथ्यों,बिन्दुओं को चिन्हांकित किया जाए एवं उससे जुड़े हुए समस्त सहायक विचारों, तथ्यों, बिन्दुओं को रेखाचित्र के माध्यम से कम से कम शब्दों या चित्रों या प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाए तो उसे माइंड मैप कहा जाता है।"

माइंड मैप बनाने के पूर्व, उसकी संरचना को समझना आवश्यक होता है, जो कि निम्नानुसार नियम के पालन से की जाती है। प्रकरण की प्रकृति एवं व्याख्या पर आधारित मुख्य विचार (Main Idea) या केन्द्रीय भाव का चिन्हांकन कर लें। मुख्य विचार (Main Idea) से सीधे जुड़े सहायक विचार (Directly Connected to main Idea) को सूचीबद्ध कर लें।सहायक विचारों के समस्त विवरणों को सक्षिप्त रूप में नोट कर लें उपर्युक्त प्रक्रिया पूर्ण करने के बाद माइंड मैप का निर्माण (रेखांकन) इस तरह से करें कि मुख्य विचार (Main Idea) को एकदम मध्य में रखें। सीधे जुड़े सहायक विचार (Directly Connected to main Idea) – मुख्य विचार से जोड़ते हुए रेखांकित करें। सहायक विचारों के समस्त विवरणों को सहायक विचार से आगे बढ़ाते हुए छोटे छोटे विवरण के रूप में रेखांकित करें।

माइन्ड मैप (Mind Map) की संरचना

माइंड मैप संरचना का रेखांकन करते समय उपर्युक्तानुसार क्रम का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए वरना गलत तरीके से बनाया हुआ माइंड मैप दिग्भ्रमित करने वाला हो सकता है ।

हम देखते हैं कि प्रकरणों का वर्गीकरण निम्नानुसार हो सकता है :–

1. प्रमुख बिन्दु एवं उसकी व्याख्या 2. घटनाओं का क्रम 3. मुख्य विचार एवं उसके सहायक विचार 4. कारण और प्रभाव आधारित प्रकरण 5. वर्गीकरण आधारित प्रकरण 6. तुलना एवं सम्बन्ध 7. अवधारणा आधारित व्याख्या आदि। उपर्युक्त वर्गीकरण के लिए अलग– अलग प्रकार के माइंड मैप बनाते हैं, अतः यह आवश्यक है कि सही प्रकार के माइंड मैप का चुनाव प्रकरण को देखते हुए किया जाए। माइंड मैप का गलत रेखांकन विपरीत प्रभाव उत्पन्न करने वाला होगा। किसी भी विषय के प्रकरण में माइंड मैप बनवाने के पूर्व शिक्षक को सर्वप्रथम प्रकरण की व्याख्या को ध्यान पूर्वक समझना होगा और समझने के उपरांत, उसे एकदम सही या सटीक माइंड मैप का चयन करना होगा और उस पर नियमानुसार सम्पूर्ण बिन्दुओं का रेखांकन, इस प्रकार से करें, ताकि माइंड मैप को देखकर प्रकरण की सम्पूर्ण जानकारी, उसके सही सन्दर्भ के साथ समझी जा सके और आवश्यकता पड़ने पर उसे देखकर पूरे प्रकरण को विस्तारित भी किया जा सके। माइंड मैप बनाना एक आनन्द दायक प्रक्रिया है, परंतु इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि बनाने के पूर्व प्रकरण को अच्छी तरह से समझ लिया जाए कि उसमें मुख्य बिन्दु क्या है, मुख्य बिन्दु से जुड़े सहायक बिन्दु क्या हैं, सहायक बिन्दुओं का विवरण क्या है। प्रकरणों की अलग अलग प्रकृति के लिए अलग अलग प्रकार के माइंड मैप बनाये जाते हैं, अतः इसका भी ध्यान रखा जाना आवश्यक है। हम यह जानते हैं कि ज्ञान के संप्रेषण का प्रभावी तरीका दृश्य माध्यम है और सक्रिय शिक्षण में माइन्ड मैप प्रविधि से विषय–वस्तु में अंतर्निहित ज्ञान का संप्रेषण अत्यंत प्रभावी तरीके से होता है जो हमारी स्मृति में लम्बे समय तक स्थाई हो जाता है, इसमें खास बात यह है कि, इसको देखकर पूरा प्रकरण तुरंत याद आ जाता है। उदाहरण के लिए मानचित्र को पढ़ने के लिए दिशा, संकेत और पैमाना की समझ रखना जरूरी है।

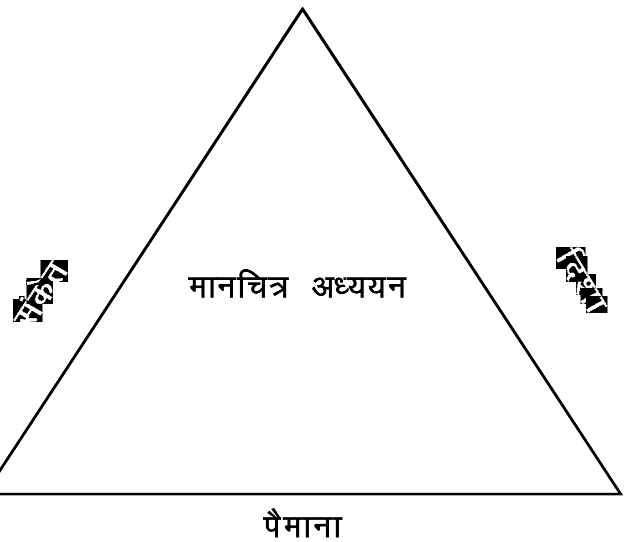

इस प्रविधि द्वारा प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण, इस प्रविधि द्वारा अनुप्रयोग, विषय की शीघ्र समझ, चिंतन कौशल, स्मरण क्षमता, तार्किक क्षमता, संश्लेषण, सक्रियता से अध्ययन, संक्षेपीकरण एवं विस्तारीकरण इत्यादि कौशल विकसित होंगे।

8. सारांशीकरण (Summarization) – किसी भी विषय पर तीव्रता से समझ विकसित करना एक प्रकार की विधा है और इसके लिए विशिष्ट कौशल की आवश्यकता होती है। हम देखते हैं कि स्मरण शक्ति की सीमाओं के भीतर रहकर विषय पर पकड़ बनानी होती है। इसके लिए मूलभूत कौशल जैसे पढ़ना, लिखना, समझना आदि का विकसित होना आवश्यक है। विषय के गूढ़ तत्वों पर यदि संक्षिप्तिकरण करने का कौशल विकसित हो सके तो किसी भी विषय पर पकड़ आसानी से बनाई जा सकती है। अतः अध्ययन के दौरान विषय–वस्तु को पढ़ते समय उसके प्रमुख बिन्दुओं पर शीघ्रता से आवश्यक समझ विकसित किया जाए और उसमें उल्लेखित तथ्यों को संक्षिप्त रूप में अंकित कर लिया जाए तो विषय–वस्तु पर समझ आसानी से विकसित हो सकती है। इस प्रक्रिया की मुख्य बात यह है कि संक्षिप्त रूप में अंकित तथ्यों के आधार पर जब भी चाहें तब उसे उसके समग्र सन्दर्भ एवं भावार्थ के साथ विस्तारित किया जा सकता है। इस प्रविधि में किसी भी विषय के किसी भी प्रकरण को विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए दिया जाता है। विद्यार्थी, दिए गए प्रकरण पर शीघ्रता से (पढ़ते समय ही) अपनी समझ विकसित करते हुए उसके महत्वपूर्ण बिन्दुओं या भावार्थों को कम से कम शब्दों में लिखते हैं या दूसरे शब्दों में कहें तो प्रकरण के मूल भाव को परिवर्तित किये बिना सारांश अपने शब्दों में लिख सकते हैं । सारांश लिखने के बाद विद्यार्थियों को पुनः अवसर दिया जाता है कि वे देखें कि उनके द्वारा कोई महत्वपूर्ण बिन्दु छूट तो नहीं गया है । इस तरह से सारांशीकरण का अभ्यास करवाया जाता है । प्रायः देखने में आता है कि, शिक्षकों को किसी भी विषय–वस्तु का नोट्स विद्यार्थियों को लिखवाना पड़ता है, जिसमें समय अधिक लगता है । सारांशीकरण प्रविधि में शिक्षक प्रकरण का पहले से नोट्स लिखवाने के स्थान पर, विद्यार्थियों को पहले प्रकरण को समझाएँ और विद्यार्थियों को उसे पढ़कर, अपने शब्दों में उसका सारांश लिखने को कहें । यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि शिक्षक देखे कि, विद्यार्थी प्रकरण के सन्दर्भित तथ्यों को सक्षिप्त में लिख रहे हैं या नहीं?

इस प्रक्रिया में कुछ विद्यार्थियों के सारांशीकरण कार्य का मूल्यांकन करते हुए उसकी विशेषताओं एवं कमियों को पूरी कक्षा को समझाएँ ताकि इस प्रविधि की प्रभावोत्पादक गुणों से विद्यार्थी लाभान्वित हो सकें। विद्यार्थियों को किसी भी प्रकरण को पढ़ते समय ही प्रकरण के प्रमुख तथ्यों को समझना होगा और उसे अपने शब्दों में सारांश लिखने का अभ्यास करना होगा। शिक्षक द्वारा मूल्यांकन में दर्शित बातों को ध्यान में रखकर अपने सारांशीकरण कौशल में आवश्यक सुधार करना होगा। इस प्रक्रिया में विद्यार्थी स्वयं इतनी समझ विकसित कर लें कि वे स्वयं ही प्रकरण के प्रमुख बिन्दुओं को चिन्हांकित करना सीख सकें और उसे शुद्ध शब्दों और वाक्यों में सारांश में बिना भूले लिख सकें। विद्यार्थी दिए गए प्रकरण का पुनः वाचन कर स्व–मूल्यांकन भी कर सकते हैं। सारांशीकरण के अभ्यास को और अधिक विकसित करना हो तो उनके द्वारा किए गए सारांश को विस्तार रूप में लिखने का अभ्यास करवाया जा सकता है। यह प्रविधि विद्यार्थियों के लिए उनके पूरे जीवन काल की विभिन्न परिस्थितियों में उपयोगी साबित होगी। इस प्रविधि के अभ्यास से यह होगा कि विद्यार्थी किसी भी प्रकरण को पढ़ते साथ ही समझ जाएगा और शीघ्रता से सारांश में उसके पूरे अर्थों के साथ लिख पाएगा।इस प्रविधि द्वारा बच्चों में भाषा का विकास , शुध्द लेखन, शीघ्र लेखन, स्मरण क्षमता, सारांशीकरण, प्रस्तुतीकरण,स्व–मूल्यांकन, विश्लेषण, शीघ्र समझ, सक्रिय अध्ययन इत्यादि कौशल विकसित होंगे।

9. वेब थीम (Web Theme) – अध्ययन और अध्यापन दोनों का क्रमबद्ध, चरणबद्ध एवं योजनाबद्ध होना आवश्यक होता है। प्रायःदेखने में यह आता है कि हम अपने पठन और लेखन को किसी प्रारूप मे नहीं बांधते, ऐसे में जब उस विषय–वस्तु को समग्र रूप में प्रस्तुत करना होता है, तब कुछ न कुछ बिन्दु छूट जाते हैं जिससे मूल्यांकन के दौरान हमारे कौशल का आकलन कमतर होता है। यह बात शिक्षक और विद्यार्थियों पर समान रूप से लागू होती है। ऐसी परिस्थितियों में अगर हम अपने द्वारा पढ़ाए जाने वाले या पढ़े जाने वाले तथ्यों का संयोजन निर्धारित प्रारूप में चरणबद्ध रूप में कर सकें, तो जब चाहें तब उसके आधार पर प्रभावी प्रस्तुतीकरण कर सकते हैं। ज्ञान के क्रमबद्ध, चरणबद्ध एवं योजनाबद्ध संयोजन को वेब थीम जाता है ।

अध्ययन– अध्यापन के दौरान किसी भी प्रकरण के प्रमुख तथ्यों को, प्रकरण की प्रकृति के आधार पर, निर्धारित प्रारूप में संयोजन इस प्रकार से किया जाए, ताकि उसको संदर्भ में लेकर पूरे प्रकरण को सही तरीके से विस्तारित किया जा सके। ध्यान देने योग्य बात यह है कि किसी भी विषय–वस्तु पर वेब थीम तैयार किया जा सकता है, आवश्यकता इस बात की है कि हमें संक्षिप्तिकरण करना आता हो और प्रमुख तत्वों का क्रमबद्ध, चरणबद्ध संयोजन आता हो। हमें इसी का अभ्यास विद्यार्थियों से करवाना होता है। अपने अध्यापन की तैयारी के दौरान विभिन्न प्रकरणों पर उनकी विभिन्न प्रकृति के अनुसार प्रमुख बिन्दुओं का एक योजनाबद्ध प्रारूप तैयार करना चाहिए, जिसकी सहायता से पूरे प्रकरण को आसानी से विस्तार में समझाया जा सकता है ।

प्रकरण की कुछ प्रकृतियाँ निम्नानुसार हो सकती हैं –

1. प्रमुख बिन्दु एवं उसकी व्याख्या 2. घटनाओ का क्रम 3. मुख्य विचार एवं उसके सहायक विचार 4. कारण और प्रभाव आधारित प्रकरण 5. वर्गीकरण आधारित प्रकरण 6. तुलना एवं सम्बन्ध 7. अवधारणा आधारित व्याख्या आदि ।शिक्षक अध्यापन कार्य निर्धारित प्रारूप देखकर तो करे परंतु विद्यार्थियों को इस बात के लिए प्रेरित करे कि वे भी प्रकरण की प्रकृति को समझ कर स्वयं ऐसी वेब थीम तैयार करें जिनसे उन्हें प्रस्तुति में आसानी हो।विद्यार्थी अध्ययन के दौरान ज्ञान के संयोजन को क्रमबद्ध, चरणबद्ध एवं योजनाबद्ध करने का प्रयास लगातार करते रहें ताकि हर प्रकरण पर वे अपना वेब थीम तैयार कर सकें और आवश्यकता पड़ने पर उसका प्रभावी प्रस्तुतीकरण कर सकें। ज्ञान के संयोजन का योजनाबद्ध तरीके से विकास होगा। प्रस्तुतीकरण समग्र एवं प्रभावी होगा। अध्ययन–अध्यापन में योजना निर्माण, विषय की शीघ्र समझ, चिंतन कौशल, संक्षिप्तीकरण, विश्लेषण, संश्लेषण, प्रस्तुतीकरण, नोट्स बनाना इत्यादि कौशल विकसित होंगे ।

10. अभिनय (Role Play) – सक्रिय शिक्षण का एक नया आयाम अभिनय (Role Play) है। अध्ययन किए जाने वाले विषय को चलते फिरते पात्रों के माध्यम से संप्रेषित किया जाए तो उसका प्रभाव चिरस्थाई हो सकता है। कोई भी शिक्षण जितना सारगर्भित और मनोरंजक होगा तो उसका प्रभाव हमारे मन मस्तिष्क में हमेशा के लिए अंकित हो जाता है। व्याख्यान विधि के रटे रटाये तरीके से हटकर अध्यापन को यदि मनोरंजक साधन से करवाया जाए तो संप्रेषण प्रभावकारी होता है। प्रायः अध्यापन में इस बात पर जोर रहता है कि ज्ञान का प्रस्तुतीकरण लेखन के माध्यम से हो, परंतु यदि उसी ज्ञान को अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत करवाया जाए तो विद्यार्थियों में स्थाई ज्ञानार्जन के साथ व्यक्तित्व विकास होगा और शिक्षक के लिए मूल्यांकन करना भी सरल होगा।

विषयों में अनेक प्रकरण ऐसे होते हैं जिन्हें विद्यार्थियों को समूह में पढ़ने के लिए दिया जाए और उन्हें उस पर आधारित एक लघु नाटक तैयार करने को कहा जाए। समूह में विद्यार्थी, विषय पर आवश्यक चर्चा करेंगे, अलग अलग भूमिका निर्धारित करेंगे और एक छोटा सा आलेख (Script) तैयार कर समूहवार उसका प्रदर्शन करेंगे।

किसी भी विषय की अवधारणा एवं उससे सम्बन्धित प्रमुख तथ्यों को समझाने के लिए ऐसे समस्त प्रकरणों को चिन्हांकित करना होगा जिन पर अभिनय के माध्यम से अध्यापन करवाया जा सकता है। प्रकरणों को चिन्हांकित करने के उपरांत पूरी कक्षा को छोटे छोटे समूह में बाँट दें और उन्हें अभिनय तैयार करने को कहें। शिक्षक उन्हें उचित सहायता एवं मार्गदर्शन प्रदान करें और समूहवार प्रस्तुतीकरण करवाएँ। अंत में अगर कोई कमी रह गई हो तो शिक्षक उसे पूरी कक्षा को पुनः समझाए।

समूह में विभाजित होकर समूह चर्चा करके विषय की अवधारणा की गहराई की समझ बनाएँ और अपने दल के सदस्यों की अभिनय क्षमता के आधार पर अभिनय मानों का निर्धारण करें, लेखन क्षमता का विकास करें एवं स्क्रिप्ट लेखन के उपरांत उसका प्रभावी प्रस्तुतीकरण करें । हम यह जानते हैं कि ज्ञान के संप्रेषण का सबसे प्रभावी तरीका दृश्य और श्रव्य दोनों माध्यम हैं और सक्रिय शिक्षण में इस प्रविधि से विषय–वस्तु में अंतर्निहित ज्ञान

का संप्रेषण अत्यंत प्रभावी तरीके से होता है जो हमारे स्मृति में लम्बे समय तक स्थाई हो सकता है। बच्चों में लेखन क्षमता, विषय की शीघ्र समझ, चिंतन कौशल, स्मरण क्षमता, तार्किक क्षमता, प्रस्तुतीकरण, भाषा में पकड़, सक्रियता से अध्ययन, व्यक्तित्व विकास, समूह भावना, संप्रेषण इत्यादि कौशल विकसित होंगे।

11 शैक्षिक खेल (Educational Games) – समय–समय पर विद्यार्थियों को पढाई की बोरियत दूर करने और पढने में आनन्द की अनुभूति कराने के लिए विभिन्न शैक्षिक खेल खिलाए जा सकते हैं। इन शैक्षिक खेलों को खिलाने से न केवल विद्यार्थियों को मजा आएगा वरन बच्चे विभिन्न अवधारणाओं को खेल के माध्यम से सीख सकते हैं। आपको पाठ के ऐसे अवधारणाओं/क्षेत्रों की पहचान करनी होगी जहाँ आप शैक्षिक खेल खिला सकते हैं। इनका स्तर विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप होना चाहिए।

कक्षाओं में हमें नियमित रूप से विभिन्न शैक्षिक खेलों का प्रदर्शन करते रहना चाहिए और विद्यार्थियों को भी नए नए खेल कक्षा में कराए जाने के अवसर दिए जाने चाहिए । सभी इस प्रकार के शैक्षिक खेलों का एक संग्रह या बैंक होना चाहिए जिसे वे अपनी शाला में बच्चों के साथ स्वयं कर सके । सक्रियता से अध्ययन, व्यक्तित्व विकास, समूह भावना, प्रस्तुतीकरण, स्व–स्फुर्त हल खोजना, समय बन्धन में कार्य करना इत्यादि **कौशल** विकसित होंगे।

12. चुटकुले कार्टून (Jokes/Cartoon) – कई बार कुछ बातों को या अवधारणा को चुटकुलों के माध्यम से ज्यादा बेहतर ढंग से समझाया जा सकता है। शिक्षक दिन–प्रतिदिन होने वाले अनुभवों के आधार पर ऐसे चुटकुलों को एकत्रित कर सही समय पर विद्यार्थियों को सुना कर कठिन अवधारणाओं को रोचक ढंग से समझा सकते हैं। विद्यार्थियों को भी ऐसे चुटकुले या कार्टून एकत्रित करने को कहा जा सकता है।

13. श्लोक–सूत्र (Formulae) – अक्सर पुराने जमाने में लोग किसी चीज को याद करने के लिए श्लोक या किसी सूत्र आदि का सहारा लेते थे । प्राचीन काल में लोग बड़ी बड़ी चीजों को आसानी से याद रख लेते थे । हमारी यह क्षमता धीरे–धीरे कम होती जा रही है । ऐसे श्लोक–सूत्रों की पहचान कर उनका इस्तेमाल किया जा सकता है । आप कुछ बिन्दुओं के लिए स्वयं भी ऐसे सूत्र या श्लोक तैयार कर सकते हैं। इससे चीजों को याद रखना आसान हो जाता है ।

14. क्विज (Quiz) – समय समय पर कुछ विशेष क्षेत्र निर्धारित कर विद्यार्थियों को क्विज कार्यक्रम के माध्यम से तैयारी करवाई जा सकती है ।भूगोल विषय की विभिन्न विषय वस्तु पर विद्यार्थियों को क्विज कार्यक्रम में सहभागी बनाया जा सकता है । विद्यार्थियों के समूहों को भी प्रश्न आदि ढूँढने एवं क्विज कार्यक्रम करवाने के लिए आगे लाते हुए प्रोत्साहित किया जा सकता है ।

भूगोल विषय को अन्य विषयों से जोड़ते हुए भी मनोरंजक प्रश्न, पहेलियाँ आदि तैयार किए जा सकते हैं। ।बच्चों में विषय की शीघ्र समझ, चिंतन कौशल, तार्किक क्षमता, प्रस्तुतीकरण, भाषा में पकड़, सक्रियता से अध्ययन, व्यक्तित्व विकास इत्यादि **कौशल** विकसित होंगे।

15. अंत्याक्षरी – इसमें विद्यार्थियों को उनकी रुचि के अनुरूप विभिन्न विषय वस्तुओं जैसे नदी, पहाड़, वृक्ष, खनिज इत्यादि के नाम पर खेलने के लिए अवसर दिए जा सकते हैं। नए नए शब्द को पुनः याद करने, दोहराने में अंत्याक्षरी बहुत ही मददगार हो सकती है।

विभिन्न विषय वस्तुओं में अंत्याक्षरी खेलने के लिए विद्यार्थियों को मानसिक और शारीरिक रूप से तैयार होना आवश्यक है । रचनात्मकता होने पर वे इस खेल को रुचिकर बनाते हुए सीख सकते हैं और एक रोचक अनुभव प्राप्त सकते हैं ।

इस प्रक्रिया द्वारा बच्चों में विषय की शीघ्र समझ, चिंतन कौशल, तार्किक क्षमता, प्रस्तुतीकरण, सक्रियता से अध्ययन, व्यक्तित्व विकास, रचनात्मकता इत्यादि कौशल विकसित होंगे।

16. वाद–विवाद – समय– समय पर कुछ उपयोगी मुद्दों पर विद्यार्थियों को वाद–विवाद प्रतियोगिताओं में सहभागिता करवाई जा सकती है । इस प्रकार के कार्यक्रमों में तैयारी करते– करते बच्चे संबंधित बिन्दुओं पर काफी तैयारी कर लेते हैं । विद्यार्थियों को समय– समय पर नियमित कक्षा के अलावा सह–शैक्षिक गतिविधियों का आयोजन करना होता है । इसके तहत विभिन्न मुद्दों पर वाद–विवाद करवाते हुए विभिन्न विषयों में उनके विचारों में स्पष्टता लाई जा सकती है और अपनी बात को तर्क के साथ बोलने का अभ्यास भी हो जाता है, जैसे–''राष्ट्र के विकास के लिए वृक्षों को काटना जरूरी है।''

इस प्रविधि द्वारा विद्यार्थियों में विषय की शीघ्र समझ, चिंतन कौशल, तार्किक क्षमता , प्रस्तुतीकरण, भाषा में पकड़, सक्रियता से अध्ययन, व्यक्तित्व विकास इत्यादि **कौशल** विकसित होंगे।

17. सुलेख प्रतियोगिताएँ (Hand writing Competitions) – परीक्षा में विद्यार्थियों के हस्तलेख का बहुत प्रभाव होता है और यह उनके पूरे व्यक्तित्व पर भी काफी प्रभाव डालता है। विद्यार्थियों को समय– समय पर सुलेख प्रतियोगिताओं में शामिल करवाने एवं नियमित रूप से सुलेख के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। इस प्रकार लगातार विशेष ध्यान देने से विद्यार्थियों की हैण्ड राइटिंग सुन्दर हो सकती है। विद्यार्थियों के मध्य सुलेख प्रतियोगिताएँ आयोजित करते हुए उन्हें अपनी हैण्ड राइटिंग सुधारने हेतु प्रोत्साहित किया जा सकता है।

इस प्रक्रिया द्वारा बच्चों में भाषा में पकड, शब्द ज्ञान, सुलेख, लेखन क्षमता इत्यादि कौशल विकसित होंगे।

18. भित्ति पत्रिका – आप अपने विद्यालय के लिए एक भित्ति पत्रिका प्रारंभ कर सकते हैं जिसे आप अपनी सुविधानुसार साप्ताहिक या मासिक रख सकते हैं। इस पत्रिका के लिए सामग्री संकलन एवं संपादन आदि का दायित्व विद्यार्थियों को ही दिया जा सकता है। इस पत्रिका के लिए समय–समय पर विभिन्न विषय दिए जा सकते हैं जिस पर आधारित सामग्री उनको एकत्रित करनी पड़ सकती है। इस प्रकार वे विभिन्न विषयों में मास्टरी हासिल कर सकते हैं। इस हेतु आप एक ऐसा कोना खोजें जहाँ खड़े होकर बहुत से विद्यार्थी एक साथ इस भित्ति पत्रिका को पढ़ सकें । प्रत्येक माह के लिए अलग– अलग विषयवस्तु एवं संपादक मण्डल का भी गठन करें ताकि सभी को अवसर मिल सके। इस प्रविधि से बच्चों में समूह भावना, प्रस्तुतीकरण, जानकारियों का संयोजन, संपादन और व्यक्तित्व विकास जैसे कौशलों के विकास होंगे।

19. पुस्तकों पर चर्चा – विद्यार्थियों को नियमित रूप से पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित करें। उनके द्वारा विभिन्न पुस्तकें पढ़ने के बाद उनसे उन पुस्तकों पर अपने सहपाठियों के साथ चर्चा करने को नियमित प्रक्रिया के रूप में अपनाएँ। बच्चे उनके द्वारा पढ़े गए पुस्तकों की अच्छी बातें बताते हुए अन्य विद्यार्थियों को भी उन पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। इस कार्य हेतु एक समय निर्धारित किया जा सकता है। पुस्तकालय के लिए निर्धारित कालखण्ड में भी इस कार्य को करवाया जा सकता है। विभिन्न शैक्षिक पत्र–पत्रिकाओं एवं उपन्यासों को पढ़ कर आपस में जानकारी बाँटी जा सकती है। जिन विद्यार्थियों को अंग्रेजी में पढ़ने की आदत डालनी हो, तो वे चाहें तो ऐसी पुस्तकें जिनके हिंदी एवं अंग्रेजी में संस्करण उपलब्ध हों, को क्रमशः हिंदी एवं अंग्रेजी में पढ़ते हुए, पढ़े हुए प्रकरण को बेहतर तरीके से समझा जा सकता है और जब उस पर बात की जाती है, तो यह समझ और बेहतर हो जाती है। धीरे– धीरे अपनी भाषा में अनुवाद की आवश्यकता से मुक्ति मिल जाती है। अमेरिका की शालाओं में बच्चों के साथ इस प्रविधि का नियमित उपयोग होता है और प्रत्येक माह सबसे अधिक पुस्तकें पढ़ने वाले विद्यार्थी को उस माह का स्टार रीडर का अवार्ड देते हुए प्रोत्साहित करने की व्यवस्था भी की जाती है। आजकल बहुत सी पुस्तकें इंटरनेट से भी डाउनलोड की जा सकती हैं ।

बच्चों में व्यक्तित्व विकास, समूह भावना, प्रस्तुतीकरण, भाषा में पकड, शब्द ज्ञान इत्यादि कौशल विकसित होंगे।

20. सपाट पासा – यह एक बहुत ही सरल पर प्रभावी शिक्षण–अधिगम उपकरण है जिसके माध्यम से शिक्षक अपने विद्यार्थियों को रोचक तरीके से अध्ययन करने में सहयोग कर सकते हैं। यह उपकरण कक्षा एक से किसी भी उच्च स्तर के विद्यार्थी उपयोग में ला सकते हैं और इसके अलग– अलग प्रकार के मॉडल भी तैयार किए जा सकते हैं। इसमें शिक्षक गोल थाली की मदद से चार्ट पेपर को काट कर एक बड़े गोल आकृति में विभिन्न विषयवस्तुओं से संबंधित कुछ मुद्दों को लिख सकते हैं और दो से चार विद्यार्थी आपस में बैठकर उस गोल चकत्ते में पासा फेंकते हैं और जिस बिंदु पर पासा गिरता है उस पर निर्देशित कार्य करना होता है। गिरने वाले शब्द के बारे में भी अनेक प्रकार के प्रश्न तैयार किए जा सकते हैं। शिक्षक अपनी रचनात्मक कौशल का इस्तेमाल कर बहुत से क्षेत्रों में सपाट पासे का इस्तेमाल कर सकते हैं। उदाहरणार्थ–भारत के मौसम,जलवायु और जलवायु को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन इस प्रविधि से आसान हो सकता है।

इस प्रक्रिया द्वारा विद्यार्थियों में विषय की शीघ्र समझ, प्रस्तुतीकरण, सक्रियता से अध्ययन, रचनात्मकता, समूह भावना इत्यादि कौशल विकसित होंगे।

21. प्रोजेक्ट कार्य – विद्यार्थियों को समय– समय पर विभिन्न प्रकार के प्रायोजना कार्य स्वयं करने को दिए जाने चाहिए। इस प्रायोजना को उनके आंतरिक मूल्यांकन से जोड़ना चाहिए, ताकि इसे वे गंभीरता पूर्वक लेते हुए कुछ नया सीखने का प्रयास करें ।

इस प्रविधि द्वारा बच्चों में अनुप्रयोग, विषय की शीघ्र समझ, प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण, संश्लेषण, सक्रियता से अध्ययन, समूह भावना, मूल्यांकन एवं परीक्षण इत्यादि **कौशल विकसित होंगे।**

22. क्षेत्र भ्रमण – विद्यार्थी अपने आसपास के किसी गाँव या अन्य किसी क्षेत्र के शैक्षिक भ्रमण कर उस क्षेत्र के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं । इस हेतु विषयवस्तुवार भी क्षेत्र एवं समूह निर्धारित किए जा सकते हैं। जैसे भूगोल के विद्यार्थी किसी भौगोलिक स्थल का भ्रमण कर डाटा एकत्रित कर सकते हैं। क्षेत्र भ्रमण के दौरान उन्हें विभिन्न प्रकार की जिम्मेदारियाँ भी दी जा सकती है, ताकि उनमें सामाजिक गुणों के विकास के साथ साथ जिम्मेदारियाँ निभाने की क्षमता भी विकसित हो सके ।

इस प्रविधि द्वारा बच्चों में सामाजिक गुणों का विकास, विश्लेषण, संश्लेषण, सक्रियता से अध्ययन, समूह भावना, योजना निर्माण इत्यादि कौशल विकसित होंगे।

23. सोचें, लिखें–जोड़ी बनाएँ– समूह में आपस में बाँटे (Think/Write, Pair, Group and Share) – शिक्षक द्वारा अपने विषयवस्तु के आधार पर कुछ छोटे और विचारोत्तेजक प्रश्न पहले से तैयार कर लिया जाता है। इन प्रश्नों पर सबसे पहले व्यक्तिगत स्तर पर विद्यार्थी अपनी राय स्थापित करते हैं । इन बिन्दुओं को सर्वप्रथम स्वयं सोचकर उन्हें लिखना होता है। विचारोत्तेजक प्रश्न पर (Think/Write) अपनी राय बनाने के बाद सभी प्रतिभागी अपने पास के साथी के साथ जोड़ी (Pair) बनाकर एक दूसरे के विचारों को सुनते हैं और उसमें दोनों के विचारों के आधार पर विकास करते हैं। तीसरे चरण में टीम लीडर समूह में से कुछ को सामने आकर अपने विचार प्रस्तुत करने को कह सकता है या पूरी कक्षा उस बिन्दु पर अपने विचार रखते हुए आपस में सहभागिता (share) कर सकते हैं। इस प्रविधि द्वारा बच्चों मे समूह भावना और सामाजिक गुणों का विकास होता है।

24. समस्या आधारित अधिगम – इस प्रविधि के बारे में अधिक जानकारी के लिए आप स्वयं सोचना शुरु करें और अपने आसपास से जानकारी प्राप्त कर उपयोग करना प्रारंभ करें । यह प्रविधि बहुत ही प्रभावी होती

है और इसमें हल किए जा सकने योग्य कोई वास्तविक समस्या को देकर विद्यार्थियों से उस समस्या का हल खोजने को कहा जाता है ।उदाहरण के लिए–''सालभर भारत में वर्षा न हो तो क्या होगा?'' इस प्रविधि द्वारा बच्चों में विश्लेषण, संश्लेषण, सक्रियता से अध्ययन, समूह भावना इत्यादि कौशलों के विकास होंगे।

25. सहयोगात्मक अधिगम – एक दूसरे से सीखने हेतु विभिन्न प्रणालियाँ

कक्षा में विद्यार्थियों को आपस में सीखने के मौके देने हेतु शिक्षक इन प्रणालियों का समय –समय पर इस्तेमाल कर सकते हैं :–

1. सीखने के स्टेशन

विद्यार्थियों को एक दूसरे से सीखने के अवसर प्रदान करने का एक सरल तरीका सीखने के स्टेशन वाली प्रणाली है। इसमें आवश्यकतानुसार विद्यार्थियों को 4 से 6 या अधिक समूह में बांटा जाता है। एक समूह को एक–एक स्टेशन के रूप में संबोधित किया जाता है। प्रत्येक लर्निंग स्टेशन को किसी प्रकरण का एक हिस्सा दिया जाता है। इस प्रकार किसी प्रकरण में जितने हिस्से बन सके, उतने लर्निंग स्टेशन बनाना बेहतर होता है। एक मुद्दे पर काम करने के लिए एक निश्चित समय निर्धारित करने के बाद सभी समूह को एक एक स्टेशन आगे बढते हुए अगले हिस्से पर काम करने को कहा जाता है। इस प्रकार धीरे–धीरे आगे बढ़ते हुए पूरी कक्षा उस प्रकरण के समस्त हिस्से पर अपनी समझ बना लेती है। शिक्षक लर्निंग स्टेशन के लिए आवश्यक संसाधन और आवश्यकता पड़ने पर मार्गदर्शन देने का कार्य करता है।

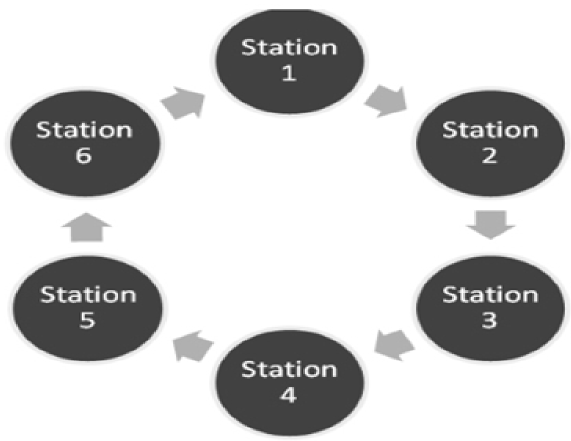

2. जिगसॉ

यह एक दूसरे से सीखने के लिए एक बहुत ही प्रभावी तकनीक है। इसमें प्रक्रिया निम्नानुसार होती है -

लर्निंग स्टेशन की भांति आवश्यकतानुसार विद्यार्थियों को अलग अलग **गृह समूह** में बिठाया जाता है। प्रत्येक समूह को किसी एक प्रकरण या मुद्दे पर काम करने को कहा जाता है।

उस प्रकरण पर उस समूह के प्रत्येक सदस्य को कार्य करने के लिए आवश्यक सहयोग एवं मार्गदर्शन दिया जाता है ताकि प्रत्येक सदस्य उस मुद्दे पर अपनी मास्टरी हासिल कर सके।

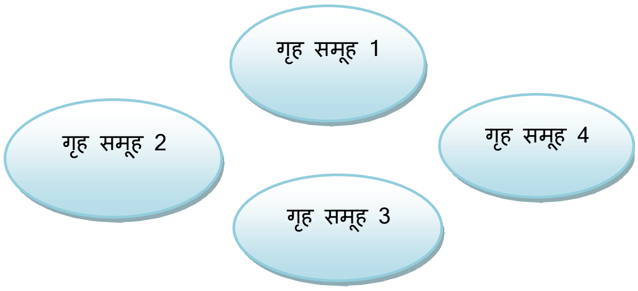

अब एक नया समूह बनाया जाता है जिसे जिगसा समूह कहा जाता है। इस समूह में गृह समूह में प्रत्येक मुद्दे पर मास्टरी हासिल किए हुए एक–एक सदस्य होते हैं।

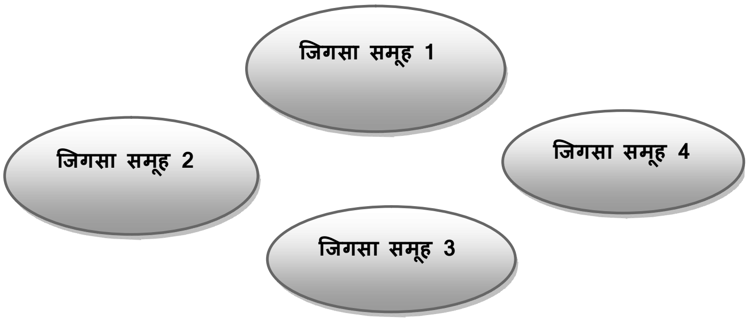

अब इस समूह में प्रत्येक सदस्य अपने समूह के अन्य सदस्यों को अपने –अपने पूर्व के समूह में मास्टरी हासिल किए गए मुद्दे से संबंधित बातों को सिखाता है । इस प्रकार इस छोटे समूह में प्रत्येक सदस्य एक दूसरे को अपनी सीखी हुई बात को सिखाता है ।ऐसे में एक ही समय में बहुत सारे बच्चे अपने अपने समूह में अपने सहपाठियों को नवीन चीजें सिखाने का प्रयास करते हैं। इससे न केवल समय की बचत होती है वरन छोटे समूह में सीखना भी बेहतर ढंग से हो पाता है ।

- जिगसा समूह में चर्चा उपरांत सभी सदस्य अपने–अपने गृह समूह में वापस आकर पुनः सीखी गई बातों पर आपस में समझ बनाते हैं।

3.ओपन स्पेस तकनीक

यह विभिन्न प्रकार की बैठेकें, कॉफ्रेंस, सिम्पॉजियम आदि आयोजित करने का एक तरीका है। इसमें किसी के विशेष कार्य या मुद्दे पर फोकस होता है लेकिन इसकी शुरुआत बिना किसी फॉर्मलएजेण्डा से होती है ।

इस उपागम की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :–

1. प्रतिभागियों को विषय की अग्रिम सूचना
2. प्रतिभागियों को बैठने के लिए गोल घेरा
3. समूह में कार्य करने हेतु अलग अलग जगह
4. इस उपागम से 5 से लेकर 2000 प्रतिभागियों के साथ कार्य करने की क्षमता
5. केवल एक सुविधादाता की आवश्यकता

ओपन स्पेस तकनीक के पाँच प्रमुख सिद्धांत :–

- जो भी आते हैं वे सही लोग आते हैं। (Whoever comes are the right people)
- जब भी शुरुआत होती है वही सही समय है। (Whenever it starts is the right time)
- जो भी होता है वही हो सकता था। (Whatever happens is the only thing that could have)
- जब कुछ संपन्न हो जाता है तो हो जाता है। (When it is over, it is over)
- जब कुछ संपन्न नहीं होता तो नहीं होता। (When it is not over, it is not over)

इस तकनीक में विभिन्न छोटे छोटे समूह में काम करते समय यदि प्रतिभागी को लगता है कि वह उस समूह के लिए उपयोगी नहीं है और अपनी पूरी सक्रियता दे चुका है तो वह दूसरे समूह में जाकर वहाँ अपनी सक्रिय भूमिका निभा सकता है। प्रतिभागियों को निर्धारित किसी एक समूह में पूरे समय बैठे रहने की कोई आवश्यकता नहीं होती । उसे एक समूह से दूसरे समूह में जाने के लिए किसी की अनुमति की भी आवश्यकता नहीं होती ।उसे स्वयं तय करना होता है कि वह किस समूह में अपनी सक्रिय भूमिका निभा सकता है ।

ओपन स्पेस तकनीक में कार्य करने का तरीका – शिक्षक अपने विद्यार्थियों अथवा प्रतिभागियों को कोई एक सामान्य मुद्दे पर चर्चा के नाम से आमंत्रित करे ।कोई विस्तृत विवरण देने की आवश्यकता नहीं है। बैठक के लिए एक बड़े गोल घेरे में व्यवस्था करे ताकि सभी एक दूसरे को देख सकें और प्रतिभागी प्रशिक्षक के बीच कोई भेद न दिखाई दे। अधिक संख्या में प्रतिभागी होने पर concentric circles बनाए जा सकते हैं। सुविधादाता बैठक के मुद्दे से परिचित कराते हुए पूरी प्रक्रिया अर्थात तकनीक के सिद्धांतों एवं संचालन व्यवस्था से अवगत कराए। इसके बाद वह उस थीम या मुद्दे से जुड़े विभिन्न पहलुओं या विषयवस्तु के लिए इच्छुक प्रतिभागियों से प्रस्ताव आमंत्रित करे।

ये प्रस्ताव पहले से तैयार कागज के लगभग नेमप्लेट के आकार की शीट में व्यक्तिगत रूप से लिखे जाएँगे और एक निर्धारित स्थान पर रखे जाएँगे ।

विभिन्न विषयवस्तुओं के लिए प्रस्ताव देते समय किसी को सुझाव नहीं देना है, परंतु यह ध्यान में रखना होगा कि विषयवस्तु को प्रस्तावित करने वाला उस विषयवस्तु के लिए बहुत रुचि लेता हो और उसकी आवश्यकता हो।

सुविधादाता और कुछ प्रतिभागी इन विषयवस्तुओं को देखकर लगभग एक जैसे मुद्दों को इकट्ठा करेंगे और प्रत्येक मुद्दे के लिए समय, सत्र और स्थान का निर्धारण करते हुए प्रस्तावक से परिचय कराएँगे।

कुल प्रस्तावों एवं अलग अलग समूह बनाने हेतु उपलब्ध व्यवस्था के आधार पर विभिन्न सत्रों का निर्धारण कर लिया जाता है। स्थल का चयन एवं बैठक व्यवस्था पूर्व से कर लेना चाहिए।

इस प्रकार शिक्षक को अपने अध्यापन को निखारने के दौरान और भी बहुत सी प्रविधियाँ अपने–आप मिलेंगी जिनका उपयोग कक्षा में करते हुए कक्षा अध्ययन–अध्यापन बहुत ही रोचक बनाया जा सकता है। परन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि पुस्तकों के विभिन्न प्रकरणों को लेकर उन्हें उपर्युक्तानुसार विभिन्न उचित प्रविधियों में ढालना एक कौशल है जिसे अभ्यास,उपयोग, चिंतन एवं रचनात्मक कौशल के उपयोग के आधार पर ही बेहतर तरीके से तैयार किया जा सकता है। **सक्रिय रहकर सीखने हेतु पाठयोजना के प्रारूप में** 1.पाठ का नाम 2 अध्यापन के उद्देश्य 3. सीखने के प्रतिफल 4.सहायक सामग्री 5.प्रक्रिया और 6.मूल्यांकन को समावेश किया जाना नितान्त जरूरी है।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न 1. आधुनिक शिक्षा में भूगोल के महत्व को लिखिए।

प्रश्न 2. भूगोल शिक्षण की आश्यकता क्यों है ?

प्रश्न 3. भूगोल शिक्षण के प्रमुख उद्देश्यों को लिखिए।

प्रश्न 4. आधुनिक शिक्षा में भूगोल के महत्व को प्रतिपादित करते हुए इसके मूल उद्देश्यों को लिखिए।

प्रश्न 5 सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत भूगोल शिक्षण क्यों जरूरी है ? उदाहरण देकर समझाइए।

प्रश्न 6. प्रारंभिक स्तर पर भूगोल शिक्षण के प्रमुख उद्देश्यों को सविस्तार लिखिए।

प्रश्न 7. किसी एक विषयवस्तु को लेकर Wh –टेम्पलेट (Wh template) प्रविधि से अध्यापन को समझाइए।

प्रश्न 8. नोटस लिखना प्रविधि द्वारा विद्यार्थियों में किन –किन कौशलों का विकास किया जा सकता है? उदाहरण सहित लिखिए।

****

इकाई – 5

राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र के एकीकृत विषय के रूप में सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन

सामाजिक विज्ञान विकास की संकल्पना

मानव की क्रियाओं, शक्ति, राजनैतिक व्यवस्था, निर्णय, निर्माण और निर्णय प्रक्रिया का अध्ययन राजनीति विज्ञान है। राजनीति सामाजिक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण और जटिल पहलू है। मानव जीवन राजनीति से इतना अटूट रूप से जुड़ा है कि किसी भी पहलू को राजनीति से पृथक नहीं किया जा सकता लेकिन राजनीति क्या है? ये एक विवाद ग्रस्त एवं जटिल प्रश्न है। सभ्य मानव सदैव से इस प्रश्न का उत्तर खोजता आ रहा है। साधारण मनुष्य से लेकर राजनीति के विद्वानों ने अपने–अपने तरीकों से राजनीति की व्याख्या की है। अरस्तु ने राजनीति को सर्वोच्च विज्ञान कहकर पुकारा और ये सिद्ध करने का प्रयास किया कि मानव जीवन के चारों ओर के वातावरण को समझने के लिए राजनीति का ज्ञान नितांत आवश्यक है। अरस्तु के अनुसार राजनीति वैधानिक रूप से निर्धारित करती है कि हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? वास्तव में राजनीति एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समाज अपनी समस्याओं का समाधान करता है और ''जियो और जीने दो'' का वातावरण स्थापित करता है।

राजनीति निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। प्रत्येक समाज में सीमित साधन होते हैं, इसे प्राप्त करने वाले अधिक होते हैं अंत में यह कहा जा सकता है कि संघर्ष और संघर्ष को सुलझाने की प्रक्रिया का अध्ययन ही राजनीति की विषय वस्तु है। राजनीति दो शब्द राज–शासन और नीति–नियम से बना है अर्थात् शासन करने के नियम को हम राजनीति कहते हैं। जितनी अच्छी राजनीति होगी उतना ही विकास होगा। राजनीति घर से शुरू होती है। हम कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। परिवार हित के लिए घर का मुखिया राजनीति का कार्य करता है। आपने घर में पिता का कहना सुना होगा कि तुम ये काम करो, यह मत करो। दोस्तों का कहना इधर जाओ, उधर जाओ आदि भी राजनीति का हिस्सा है।

राजनीति के संबंध में आम अवधारणा

आम लोगों की धारणा में राजनीति का मतलब धोखाधड़ी, बेईमानी, नाइन्साफी मक्कारी आदि है। समाज या राजनैतिक व्यवस्था में नेताओं द्वारा नारेबाजी कर खोखली राजनैतिक आश्वासन दिया जाना, जनता के बीच द्वेष फैलाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना आदि को ही अक्सर राजनीति समझ लिया जाता है या कह दिया जाता है लेकिन यह वास्तव में राजनीति के प्रति एक दृष्टिकोण मात्र है।

राजनीति के क्रमबद्ध अध्ययन की शुरूआत लगभग 300 BC में प्लेटो और अरस्तू ने यूनान में की। आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत की शुरूआत बोंदा और मैकियावली ने की। राजनीति के क्रमबद्ध अध्ययन को ही राजनीति विज्ञान नाम दिया गया है। राजनीति का महत्व देश का विकास, राष्ट्र सेवा (लोगों की उन्नति करे) और कर्तव्यशील राष्ट्र होता है। जब राज्य प्रबंधन को चलाए जाने वाली नीति, चुने हुए लोगों द्वारा अन्य लोगों के विकास के लिए बनायी जाती है तो यह सकारात्मक राजनीति है। वहीं जब पूँजीपति के लिए कार्य करे अर्थात् उनसे चुनाव लड़ने चंदा लिया जाता है अतः उनके हित में कार्य करते हैं, सत्ता हथियाने के लिए लोगों को लिंग, धर्म व जाति के आधार पर बाँटना नकारात्मक राजनीति है।

अर्थशास्त्र की समझ

अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान की एक शाखा है जिसके अन्तर्गत, उत्पादन, उपभोग विनिमय तथा वितरण का अध्ययन किया जाता है परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्र में कई नई शाखाओं को जोड़कर राजस्व कल्याण, जनकल्याण, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विदेशी विनिमय बैकिंग आदि के अध्ययन को महत्व दिया है।

साधारण भाषा में धन या अर्थ से सम्बन्धित सभी मानवीय गतिविधियाँ अर्थशास्त्र की विषयवस्तु है। इन मानवीय गतिविधियों को किसी एक व्यक्ति या किसी समूह के द्वारा सम्पन्न किया जाता है उदाहरण के तौर पर किसी व्यक्ति द्वारा किसी वस्तु की खरीदी करना और किसी परिवार, सरकारी या निजी कम्पनी द्वारा की गई गतिविधि व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधि का उदाहरण है।

अर्थव्यवस्था अर्थशास्त्र का व्यावहारिक पक्ष है। जिसे बहुत से लोग अर्थशास्त्र ही मान लेते हैं। अर्थव्यवस्था में एक निश्चित क्षेत्र या देश में रहने वाले लोग अपनी अजीविका प्राप्त करते हैं जैसे भारतीय अर्थव्यवस्था, चीनी अर्थव्यवस्था, विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था आदि। पिछली आधी शताब्दी के दौरान अर्थशास्त्र के अध्ययन में विभिन्न विषयों को शामिल किया गया है क्योंकि यह अलग–अलग क्षेत्रों के भिन्न उद्देश्यों को पूरा करता है। विकसित देशों में अधिक लोग स्वयं को अमीर बनाने के लिए ही अर्थशास्त्र पढ़ते हैं। लेकिन विकासशील देशों के लिए अर्थशास्त्र केवल पढ़ा और पढ़ाया जाता है उसका प्रयोग नहीं होता। गरीबी, बेरोजगारी, शेयर लाभांश, मानव संसाधन विकास, मूल्य उसमें आने वाले बदलाव हैं, कॉमर्स आदि के बारे में जानने के लिए कुछ लोग अर्थशास्त्र को पढ़ते हैं कुछ लोग अपनी जानकारी बढ़ाने के लिए अर्थशास्त्र पढ़ते हैं मानव जीवन पृथ्वी पर मौजूद संसाधनों से बनाए गए विभिन्न उत्पादों पर निर्भर करता है। हमारी जरूरतों और चाहतों को पूरा करने के लिए हमें असीमित संसाधनों की जरूरत है लेकिन संसाधन सीमित हैं अर्थात् दुर्लभ संसाधनों की जरूरत है लेकिन संसाधन सीमित है अर्थात् दुर्लभ संसाधनों को उपयोग करने से पहले हमें अपनी जरूरतों को प्राथमिकता के हिसाब से तय करने की जरूरत है। अर्थशास्त्र वह विषय है जिसमें यह अध्ययन किया जाता है कि व्यक्ति समाज और सरकार किस तरह से अपनी प्राथमिकताओं के हिसाब से संसाधनों का इस्तेमाल, जरूरत और चाहतों के लिए करते हैं। अर्थव्यवस्था मानव समाज की आर्थिक गतिविधि का अध्ययन है। कभी आपने सोचा है कुछ लोग किफायती कार का इस्तेमाल क्यों करते हैं और कुछ लोग ईधन फूँकने वाली स्पोर्ट्स कार का इस्तेमाल क्यों करते हैं। गरीब लोग गरीब क्यों है? क्या पूँजीवाद आर्थिक असमानता को बढ़ा रहा है? क्या भूमंडलीयकरण से अमीर और गरीब के बीच की खाई कम हुई है? ऐसे ही ढेरों सवाल अर्थशास्त्र के दायरे में आते हैं।

अर्थशास्त्र बाजार के सिद्धांतों, रोजगार आदि की बात करता है जबकि अर्थव्यवस्था खास क्षेत्रों में सिद्धांतों को अपनाने के बाद की वास्तविक तस्वीर होती है। आर्थिक सिद्धांत मानव समाज की आर्थिक गतिविधियों के व्यवहार और उनकी उम्मीदों पर आधारित होता है अर्थशास्त्र का वास्तविक उद्देश्य क्या रहा है? हम अब तक के विकास का सार निकालें तो अर्थशास्त्र पृथ्वी पर मानव जीवन की बेहतरी रही है।

हम एक उदाहरण लेते हैं जिसे पढ़कर आप निष्कर्ष निकालने का प्रयास करें क्या यह अर्थशास्त्र का अंग है? एक साहूकार ब्याज में लोगों को पैसा देता था। उनके बुरे वक्त में साथ देकर उनका सहयोग करता था। परन्तु अपनी रकम की वसुली ब्याज सहित पाई–पाई कर लेता था। अपने व्यर्थ की वस्तुओं को जरूरतमंद में बाँट दिया करता था। किसानों को कृषि कार्य में सहयोग भी दिया करता था।

अर्थशास्त्र दो शब्दों से मिलकर बना है। अर्थ = धन, शास्त्र = वैज्ञानिक अध्ययन। हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन कमाते हैं वह अर्थशास्त्र में आता है। अर्थशास्त्र वह शास्त्र है जिसमें मनुष्य के उन कार्यो का अध्ययन किया जाता है जिन्हें वे अपनी असीमित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सीमित

साधनों अर्थात् धन को प्राप्त करने के संबंध में करते हैं। केवल धन ही अर्थशास्त्र नहीं बल्कि प्रत्येक कार्य जो दुर्लभता , आर्थिक विकास और अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने के लिए किया जाता है वह भी अर्थशास्त्र है।

अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान में संबंध

राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र में धनिष्ठ संबंध होने के मुख्य कारण दोनों सामाजिक विज्ञान के विषय हैं। दोनों विषय का उद्देश्य मानव कल्याण से सम्बन्धित है। दोनों में मानव जीवन को सुखी बनाने के उद्देश्य निहित हैं दोनों एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं रह सकते हैं। इनमें परस्पर निर्भरता है।

प्राचीन समय में अर्थशास्त्र को राजनीति की शाखा समझा जाता था, ग्रीक लेखक इसे राजनीतिक अर्थशास्त्र कहते थे। इसलिए राजनीतिक सिद्धांतों पर आधारित ग्रंथों में आर्थिक सिद्धांतों की व्याख्या की गई है, जैसे चाणक्य के अर्थशास्त्र और काल मार्क्स के दास कैपीक्ल में। हमें प्रायः सामाज में देखने को मिलता है कि आर्थिक क्रियाएँ राजनीतिक गतिविधियों को प्रभावित करती हैं। मार्क्स ने लिखा है कि हमारी समस्त राजनैतिक सामाजिक, बौद्धिक संबंध सभी धार्मिक, कानूनी पद्धतियाँ तथा हमारा बौद्धिक दृष्टिकोण जो इतिहास के विकास के क्रम में जन्म लेता है, वे सब जीवन की भौतिक अवस्थाओं से उत्पन्न होती हैं। जैसे–जैसे हमारे उत्पादन का तरीका बदलता है हमारे सोचने विचारने के तरीके में परिवर्तन होता है एक हाथ से चलने वाली चक्की समाज में औद्योगिक पूँजीपति व्यवस्था को दर्शाता है अर्थात् मानव की सामाजिक अस्तित्व के द्वारा उसके चेतना का निर्धारण होता है।

ठीक इसी प्रकार राजनीतिक क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य आर्थिक क्रियाओं को नियंत्रित करना है। व्यक्तिवाद आर्थिक क्षेत्र में अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण करता है। जबकि लोक कल्याणकारी विचारधारा आर्थिक नियोजन में विश्वास करती है। आधुनिक राजनीतिक विश्लेषण में जहाँ राजनीतिक विकास, आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण एवं सामाजिक परिवर्तनों का महत्वपूर्ण स्थान है वहाँ आर्थिक साधनों का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्थिक असंतोष अनेक राजनीतिक आंदोलनों, क्रांतियों या असंतोष का कारण है। आय की असमानता आर्थिक असंतोष को जन्म देती है रोमन साम्राज्य का पतन का मुख्य कारण मध्यम वर्ग का विनाश था जर्मनी में वीमर संविधान की अस्थिरता मध्यम वर्ग की अस्थिरता थी। अमेरिका, चीन, फ्रांस, रूस में हुए क्रांति का संबंध भी आर्थिक असंतोष था। नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग आर्थिक संबंधों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना ताकि विकसित देश व्यापार में आर्थिक सहायता, बाजार, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा पद्धति के क्षेत्र में अविकसित राष्ट्रों को खुले दिल से मदद् करें।

राजनीति आर्थिक तत्वों को प्रभावित करती है। राज्य नियम बनाकर आर्थिक तत्वों को प्रभावित एवं नियंत्रित करता है। जैसे कर, राजस्व नीति, वितरण, उपयोग, आयात निर्यात, मुद्रा, व्यापार तथा बैंकिग आदि। राजनीतिशास्त्र को निर्माणात्मक शास्त्र कहा जाता है। इन सबके बाद भी राजनीति विज्ञान का क्षेत्र व्यापक और सजीवों से संबंधित है। जबकि अर्थशास्त्र का क्षेत्र संकुचित होने के साथ हम इसमें निर्जीव वस्तुओं का अध्ययन करते हैं । अर्थशास्त्र राजनीतिशास्त्र के आदर्शो को प्राप्त करने का साधन है। लोगों की आर्थिक स्थिति को सुधारकर राज्य नागरिकों के नैतिक विकास के लिए अच्छी बाह्य परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है।

प्रोजेक्ट कार्य

1. जिस घर या संस्था के नियम कानून कठोर हैं उनकी गतिविधियाँ व विकास जिस घर या संस्था के नियम कानून लचीले हैं उनसे किस प्रकार भिन्न है? बेहतर व्यवस्था आपने किसमें देखा उत्तर का स्पष्टी करण दीजिए।

2. कक्षा कप्तान का चुनाव, चुनाव पद्धति से कराने पर बच्चों में कौन–कौन से गुणों का विकास हुआ अध्ययन करें।
3. अपने आस–पास के किन्ही 3 घरों में आय की असमानता का अध्ययन करें।
4. बाल दिवस पर आयोजित आनंद मेला में बच्चों ने स्टॉल लगाया। अंत में वे अर्थशास्त्र की कौन–कौन सी गतिविधियों को सीखे इसका अध्ययन करना।
5. किसी दुकान में 5 प्रकार के चावल और 5 प्रकार के दालों के मूल्यों की सूची तैयार कर उनके मूल्य में अंतर के कारण का विश्लेषण करना।

अभयास के प्रश्न

प्रश्न 1. राजनीति के संबंध में आम लोगों की अवधारणा कैसी है ?

प्रश्न 2. राजनीति विज्ञान को समझाइए।

प्रश्न 3. अर्थशास्त्र विषय की संक्षिप्त जानकारी दीजिए।

प्रश्न 4. अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान में धनिष्ठ संबंध है। इसे आप कैसे समझाऍंगे ? लिखिए।

प्रश्न 5. अर्थशास्त्र अध्यापन की विधि को उदाहरण के माध्यम से समझाइए।

****

इकाई – 6

अधिगमकर्ता की प्रकृति और स्थानीय संदर्भ की समझ

अधिगमकर्ता की प्रकृति – सामाजिक विज्ञान विषय की समझ अधिगमकर्ता की प्रकृति को समझे बिना अधुरी है। आपने अध्याय एक में सामाजिक विज्ञान की प्रकृति और उसकी विशेषताओं का अध्ययन किया है। हम इस पाठ के माध्यम से अधिगमकर्ता की प्रकृति को समझेंगे। मनोवैज्ञानिक विकासक्रम के अनुसार स्कूली शिक्षा के आयु वर्ग के विद्यार्थी बाल्यावस्था से लेकर प्रारंभिक किशोरावस्था की वय तक के होते हैं। प्राथमिक स्तर के विद्यार्थी प्रमुख रूप से बाल्यवस्था के होते हैं। 6–7 वर्ष का बालक प्रत्येक वस्तु को देखकर, छूकर अथवा अन्य क्रियाओं के माध्यम से उसे जानने को व्यग्र रहता है। अतः वह वस्तुओं के साथ छेड़–छाड़ करता है। 7–8 वर्ष की अवस्था में उसकी निरीक्षण शक्ति बढ़ती है। उसकी मांसपेशियाँ भी मजबूत होने लगती हैं। उसे परियों की कहानियों की अपेक्षा साहसिक कहानियाँ अधिक पसंद आती हैं। इस अवस्था के आते–आते वह आस–पास की चीजों को समझने लगता है। वह उनका संग्रह करना भी चाहता है। उसमें टोली बनाने की प्रकृति दिखाई देने लगती है। वह अपनी रूचि और क्षमताओं के अनुकूल अन्य बच्चों के साथ समूह में रहना पसंद करता है।

प्राथमिक स्तर का विद्यार्थी अपने आस–पास को आश्चर्य से देखता है।उसे जानने का प्रयास करता है। वह भौगोलिक और अन्य तथ्यों में अन्तर नहीं समझता है। अतः वह प्रेक्षण और क्रिया के माध्यम से जानना–सीखना चाहता है। वह स्वतंत्र अभिव्यक्ति करना और उत्सुकता प्रदर्शित करना चाहता है। वह पढ़ने लग जाता है। उसमें कल्पना शक्ति का विकास होता है और स्मरण शक्ति भी बढ़ती है।

उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की आयु वर्ग का विस्तार बाल्यावस्था के अन्तिम चरण से लेकर तरूणावस्था तक होता है। उस समय एक ओर तो बचपन समाप्ति की ओर होता है और दूसरी ओर युवा बनने की ओर विद्यार्थी के कदम उठ जाते हैं। उसे काल्पनिक जगत में उतना आनन्द नहीं आता और अब वह वास्तविक जगत पर विश्वास करने लगता है। वह सश्जनात्मक महत्व की क्रियाएँ करना पसंद करता है। इस अवस्था में विद्यार्थी में अन्तर्द्वन्द तो होता है किन्तु वह सांस्कृतिक भौगोलिक तथा प्राकृतिक दशाओं में परस्पर संबंध खोजने का प्रयास करता है। वस्तुओं की रूचि और आवश्यकता के अनुसार चयन, वर्गीकरण और संगठन की क्षमता उसमें विकसित होने लगती है। वह तर्क के आधार पर निष्कर्ष निकालने का प्रयास करता है।

अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक – अधिगमकर्ता की अधिगम प्रक्रिया को कई कारक प्रभावित करते हैं उनमें निम्नलिखित कारक महत्वपूर्ण हैं –

1. शिक्षार्थी से संबंधित तत्व
2. शिक्षक से संबंधित कारक
3. पाठ्य सामग्री से सम्बन्धित कारक
4. अधिगम व्यवस्था से संबंधित कारक
5. वातावरण से संबंधित कारक
6. समूह की विशेषताएँ तथा अन्तःक्रियात्मक प्रक्रिया

शिक्षार्थी से सम्बन्धित तत्व

1. शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य – शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ बालक नवीन ज्ञान अथवा क्रिया को शीघ्र ही ग्रहण कर लेता है। बीमार, कमजोर बालक सीखने, पढ़ने–लिखने में रूचि नहीं लेता है।

2. परिपक्वता – अधिगम की प्रक्रिया को बालक की शारीरिक व मानसिक परिपक्वता विशेष योग प्रदान करती है। छोटी कक्षाओं में बालक की माँसपेशियों को प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वे कलम, किताब आदि को पकड़ सकें। उन्हें व्याकरण आदि का ज्ञान भी नहीं कराया जाता है। कुछ बड़े होने पर तथा कुछ कक्षाओं के बाद यह ज्ञान दिया जाता है।

3.सीखने की इच्छा – यदि बालक में सीखने की इच्छा हो तो वह नवीन एवं कठिन ज्ञान को आसानी से सीख सकता है। नवीन ज्ञान को सीखने का इच्छुक छात्र विपरीत परिस्थितियों में भी सीख लेता है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, विवेकानन्द आदि इसके उदाहरण हैं।

4. बुद्धि – तीव्र बुद्धि वाला बालक नवीन समाग्री को शीघ्रता से सीख लेता है। तीव्र बुद्धि के साथ अभिप्रेरणा भी अति आवश्यक है। मन्द–बुद्धि वाले छात्र को नवीन सामग्री सीखने में कठिनाई होती है।

5. सीखने वाले की अभिवृत्ति – यदि सीखने वाले की विषय के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति हो तो वह उस विषय–वस्तु को सरलता से सीख लेता है। इसके विपरीत नकारात्मक अभिवृत्ति वाला बालक शिक्षक के काफी परिश्रम करने के उपरान्त भी नहीं सीख पाता है।

6. अभिप्रेरणा – सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा का महत्वपूर्ण योगदान है। यदि बालक को किसी नवीन ज्ञान अथवा कार्य को सीखने के लिए प्रेरित किया जाता है तो वह उस क्रिया में रूचि लेता है। अभिप्रेरणा से सीखने की इच्छा प्रबल हो जाती है।

7. कार्य का समय – यदि बालक लगातार अधिक समय तक कार्य करता रहता है तो वह थकान का अनुभव करने लगता है। थकान के समय अधिगम प्रक्रिया में अवरोध आ जाता है। समय विभाग चक्र बनाते समय भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालकों को थकान कम हो ।

8. आकांक्षा का स्तर – यदि छात्र का आकांक्षा का स्तर उच्च कोटि का है तो वह उच्च स्तर के ज्ञान को सीखने में रूचि लेगा। आकांक्षा का निम्न स्तर छात्र को निम्न स्तर का ज्ञान ही प्राप्त करने के लिए उत्साहित करता है।

शिक्षक से संबंधित कारक

सीखने को प्रभावित करने वाले कारकों में शिक्षक भी एक महत्वपूर्ण कारक होता है –

1. विषय का ज्ञान – यदि शिक्षक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान है तो वह अपनी योग्यता एवं अनुभव से छात्रों के सीखने को प्रभावित कर सकता है। अपूर्ण ज्ञान से वह छात्रों को सीखने में प्रभावित नहीं कर सकता है। पूर्ण ज्ञान होने पर वह छात्रों को आत्मविश्ववास के साथ पढ़ा सकता है।

2. शिक्षक के गुण – प्रभावी अधिगम के लिए शिक्षक के गुण महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। उसके अन्दर सहानुभूति, प्रेम, सहयोग, समानता, शिक्षण कला तथा व्यवहार आदि अच्छा होना चाहिए तभी छात्र भली प्रकार सीख सकेंगे।

3. शिक्षक की पढ़ाने की इच्छा – यदि शिक्षक की पढ़ाने की इच्छा प्रबल हो तो वह कक्षा में एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकता है कि सभी छात्र सीखने को अभिप्रेरित हो जाएँ तथा पाठ को भली–भाँति सीख जाएँगे।

4. शिक्षण विधि – शिक्षण विधि भी सीखने में एक महत्वपूर्ण कारक होती है। प्रभावपूर्ण शिक्षण विधि से पाठ्य–वस्तु में छात्रों की रूचि उत्पन्न होती है। बच्चों को खेल विधि द्वारा सिखाना, करके सीखना, निरीक्षण द्वारा सीखना, योजना विधि द्वारा सीखना आदि का महत्व काफी होता है।

5. व्यक्तिगत भेदों पर बल – प्रत्येक छात्र की बुद्धि, रूचि, योग्यता, क्षमता, अलग–अलग होती है। शिक्षक के शिक्षण को कुछ छात्र सरलता से समझ लेते हैं तथा कुछ छात्र नहीं समझ पाते। व्यक्तिगत भेदों के कारण छात्रों को व्यक्तिगत शिक्षण की आवश्यकता होती है। इसलिए मनोविज्ञान में प्रतिभाशाली, मंद–बुद्धि, दिव्यांग आदि प्रकार के बालकों की शिक्षा के लिए अलग–अलग शिक्षा की आवश्यकता पर महत्व दिया गया है।

6. बाल–केन्द्रित शिक्षा – आज की शिक्षा बाल–केन्द्रित शिक्षा मानी जाती है। शिक्षा बालक की रूचियों, अभिवृत्तियों, क्षमताओं आदि के अनुकूल होनी चाहिए। शिक्षक को यदि बालक की रूचियों व क्षमताओं का ज्ञान हो तो अच्छी प्रकार से उनको शिक्षा दे सकता है और छात्र भी भली–भाँति सीख सकेंगे।

7. शिक्षक का व्यक्तिगत प्रभाव – शिक्षक का व्यक्तिगत प्रभाव छात्रों के सीखने को प्रभावित करता है। इसमें शिक्षक की योग्यता तथा व्यक्तित्व छात्रों के सीखने को विशेष रूप से प्रभावित करता है।

पाठ्य–सामग्री से सम्बन्धित कारक

सीखने को प्रभावित करने वाले पाठ्य–सामग्री से सम्बन्धित कारक निम्न प्रकार हैं –

1. विषय–वस्तु की प्रकृति – विषय–वस्तु की प्रकृति मानवीय अधिगम पर प्रभाव डालती है। कठिन विषय–वस्तु को सीखने के लिए सरल वस्तु की अपेक्षा अधिक समय लगता है तथा कठिन विषय–वस्तु को सीखने में छात्र रूचि भी नहीं लेता है तथा सीखने की गति मन्द होती है।

2. विषय–वस्तु की लम्बाई – विषय–वस्तु का आकार, लम्बाई या मात्रा सीखने को प्रभावित करती है। लम्बे–लम्बे पाठ या विषय–वस्तु को सीखने में छात्र अरूचि प्रदर्शित करते हैं तथा छोटी विषय–सामग्री को शीघ्र सीख लेते हैं।

3. विषय–वस्तु का क्रम – बच्चों के सीखने को विषय–वस्तु का क्रम भी प्रभावित करता है। यदि पहले सरल विषय–वस्तु बालकों को सिखाई जाती है तो कठिन विषय–वस्तु सीखने में भी उन्हें सरलता होती है। सरल से कठिन की ओर शिक्षण सिद्धान्त इसका उदाहरण है। पाठ्यवस्तु बालकों के दैनिक जीवन से भी सम्बन्धित होनी चाहिए।

4. भाषा – विषय–वस्तु को यदि सरल भाषा में बालकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो वे सरलता से उसे सीख जाते हैं। कठिन भाषा उनके सीखने में अवरोध उत्पन्न करती है।

5. पाठ्यवस्तु का रूचिकर होना – पाठ्यवस्तु रूचिकर हो तो उसे छात्र मन लगाकर पढ़ते हैं। पाठ्यवस्तु रूचिकर न होने पर छात्र सीखने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त यदि पाठ्य–सामग्री उद्देश्यपूर्ण है और छात्रों की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करती है तो उसे छात्र सरलता से सीख लेते हैं। साथ ही कठिन विषय–वस्तु को दृश्य–श्रव्य सामग्री की सहायता से रूचिकर बनाया जा सकता है।

अधिगम व्यवस्था से सम्बन्धित कारक

अधिगम व्यवस्था इस बात पर निर्भर करती है कि छात्र को किस विधि से सिखाया गया है। वास्तव में अधिगम की व्यवस्था जितनी उपयुक्त होगी विषय–वस्तु की स्मृति उतनी ही अच्छी होगी। अधिगम व्यवस्था के अन्तर्गत निम्नलिखित विधियाँ आती हैं –

1. सम्पूर्ण बनाम खण्ड विधि – इस विधि में यह बात महत्वपूर्ण है कि सम्पूर्ण विधि अथवा खण्ड विधि से याद करके स्मृति शक्ति बनायी जा सकती है। सम्पूर्ण विधि का अर्थ है कि सीखने वाली समस्त वस्तु या पाठ्य सामग्री को एक साथ ही याद कर लिया जाए। खण्ड विधि का तात्पर्य यह है कि उस वस्तु के विभिन्न खण्ड या भाग कर लिए जाएँ तब उन्हें एक–एक खण्ड करके याद किया जाए। साधारणतया सम्पूर्ण विधि उत्तम मानी जाती है। एवलिंग ने 240 पंक्तियों की कविता को दोनों विधियों से याद करने में तुलना की। उसने सम्पूर्ण विधि को उत्तम पाया। खण्ड विधि कभी–कभी उस समय अत्यन्त लाभदायक होती है जब याद करने वाला अनुभवहीन या आत्म–विश्वासी न हो तथा किया जाने वाला विषय प्रतिकूल एवं जटिल हो।

2. संकलित बनाम वितरित विधि – संकलित विधि में सम्पूर्ण अधिगम एक ही सत्र में बिना किसी प्रकार के विश्राम के लगातार प्रयासों द्वारा सम्पन्न होता है, जबकि वितरित विधि में विश्राम काल दिया जाता है तथा अधिगम वितरित प्रयासों में सम्पन्न होता है। अनेक विद्वानों के द्वारा किए गए प्रयोगों से यह परिणाम निकला है कि वितरित विधि द्वारा किया गया अधिगम अधिक प्रभावशाली होता है। परन्तु यदि किसी विषय–वस्तु की ओर ध्यान दें तो यह मिलता है कि अधिगम के समय अधिक विश्राम देने पर अधिगम में अवरोध उत्पन्न हो जाता है।

3. सक्रिय बनाम निष्क्रिय विधि – सक्रिय विधि का अर्थ है कि विषय–वस्तु को बोल–बोल कर कंठस्थ किया जाए। निष्क्रिय विधि का अर्थ है विषय–वस्तु को मन ही मन पढ़कर कंठस्थ कर लिया जाए। गेट्स, एविंगहास एवं उनके साथियों ने सक्रिय विधि को उपयोगी बताया है। किसी नवीन पाठ्य वस्तु या विषय को सीखने में निष्क्रिय विधि उपयोगी सिद्ध होती है।

वातावरण से सम्बन्धित कारक

वातावरण के बहुत से कारक अधिगम को प्रभावित करते हैं –

1. वंशानुक्रम – वंशानुक्रम का बालक के सीखने पर काफी प्रभाव पड़ता हैं। यदि वंशानुक्रम दोष रहित होता है तो उन बालकों अथवा व्यक्तियों में उत्तम गुणों का विकास होता है। वास्तव में बालक की 80 प्रतिशत क्षमताएँ एवं योग्यताएँ उसके वंशानुक्रम की ही देन होती है। रॉस के अनुसार, "बालक जो कुछ भी है और जिस रूप में विकसित होता है वह वंशानुक्रम की देन है।"

2. सामाजिक वंशक्रम का ज्ञान – बालक अपने पूर्वजों से सामाजिक वंशक्रम का ज्ञान प्राप्त करता है। वह अपने पूर्वजों के आदर्शों पर चलने का प्रयत्न करता है, उनके जीवन से बहुत कुछ सीखता है तथा उनके अनुसार बनने का प्रयास करता है।

3. वातावरण का प्रभाव – वंशानुक्रम से प्राप्त गुणों का विकास वातावरण में होता है। यदि बालक को अच्छा वातावरण नहीं मिलता तो वंशानुक्रम से प्राप्त अच्छे गुणों का विकास नहीं हो पायेगा। यानि उसका गलत दिशा में विकास होगा। अतः वातावरण का उपयुक्त होना सीखने के लिए अति आवश्यक है।

4. सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण – छात्र का सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण भी उसके सीखने पर काफी प्रभाव डालता है। सामाजिक रीति–रिवाज, चाल–चलन, प्रचलित भावनाएँ आदि बालक के सीखने को निश्यच ही प्रभावित करती हैं।

5. कक्षा का भौतिक वातावरण – कक्षा में भौतिक वातावरण भी बालक के सीखने पर प्रभाव डालता है। यदि कक्षा के कमरे में उनके बैठने का पर्याप्त स्थान नहीं है, कमरे में अन्धेरा है, रोशनी व हवा का कोई प्रबन्ध नहीं है तो छात्रों को थकान हो जाएगी तथा उनका पढ़ने में मन नहीं लगेगा।

6. पारिवारिक वातावरण – बालक के सीखने में उसके परिवार का वातावरण काफी महत्व रखता है। यदि परिवार में लड़ाई–झगड़े होते रहते हैं तो उसका बालक के मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है और वह भली–भाँति सीख नहीं पाता है।

समूह की विशेषताएँ तथा अन्तःक्रियात्मक प्रक्रिया

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। वह कभी अकेला नहीं रह सकता। उसका विकास समाज में ही होता है। समाज में रहकर वह अनेक व्यक्तियों तथा समुदायों से अपना सम्पर्क बना लेता है। किसी समूह के नियम, रीति–रिवाज, मान्यताएँ, परम्पराएँ आदि व्यक्ति व उसके व्यवहार को प्रभावित करते हैं। अधिगम की प्रक्रिया को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षक को समूह मनोविज्ञान का ज्ञान होना अति आवश्यक है।

सामाजिक अध्ययन/विज्ञान के ज्ञान की संरचना और कक्षा कक्ष अन्तःक्रिया

शिक्षण प्रक्रिया में पाठ्यचर्या का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसी से यह बात स्पष्ट होती है कि क्या पढ़ाना है यह एक दर्पण के समान शिक्षा के उद्देश्य को प्रतिबिम्बित करती है। केवल इतना ही नहीं बल्कि उन उद्देश्यों की पूर्ति का सशक्त साधन भी है।एक अध्यापक को विषय–वस्तु की समझ बनाने के लिए शिक्षण के सिद्धांतों और शिक्षण उपागमों की समझ होना आवश्यक है। यहाँ शिक्षण के सिद्धांतों और उपागमों के साथ प्रारंभिक स्तर पर अध्ययन की जाने वाली विषय–वस्तु दी गई है। शिक्षक सिद्धांतों और उपागमों के आधार पर विषय–वस्तुओं को समझने का प्रयास करेंगे।

सामाजिक विज्ञान या अध्ययन के पाठ्यक्रम का क्षेत्र

सामाजिक विज्ञान या अध्ययन पाठ्यक्रम के माध्यम से ही सामाजिक विज्ञान या अध्ययन शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है। शैक्षिक नियोजन के लिए पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है। सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम का क्षेत्र इस प्रकार है –

1. शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति – शिक्षा की व्यवस्था पाठ्यक्रम आधारित होती है। जब तक पाठ्यक्रम का सही नियोजन नहीं किया जाता तब तक शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो सकती है क्योंकि पाठ्यक्रम का स्वरूप शिक्षा के उद्दश्यों के अनुसार निर्मित होता है।

2. शिक्षा प्रक्रिया का व्यवस्थीकरण – पाठ्यक्रम एक ऐसा लेखा–जोखा है, जिससे यह स्पष्ट रूप से अंकित किया जाता है कि शिक्षा के जीवन स्तर पर विद्यालयों में कौन सी क्रियाओं की तथा कौन सी विषयों की शिक्षा दी जाएगी। इस प्रकार पाठ्यक्रम विद्यालयी कार्यक्रम की रूपरेखा बनाता है अथवा शिक्षा की प्रक्रिया व्यवस्थित करता है।

3. ज्ञानोपार्जन – ज्ञानोपार्जन करने में पाठ्यक्रम विद्यार्थियों की सहायता करता है यह सही है कि ज्ञान एक है परन्तु मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए उसके कई भाग कर लिए है जैसे साहित्य, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान इत्यादि। ज्ञान के इन विभिन्न भागों के ज्ञानार्थ पाठ्यक्रम की रचना की जाती हैं।

4. चारित्रिक विकास – चारित्रिक विकास की दृष्टि से शिक्षा इस बात पर बल देती है कि विद्यार्थियों के अन्दर मानवीय गुण जैसे – सत्यसेवा, त्याग, परोपकार, सदभावना इत्यादि उत्पन्न किये जाएँ यह कार्य पाठ्यक्रम के द्वारा ही पूर्ण होता है। इन गुणों को विकसित करके इन्हीं के अनुसार विद्यार्थियों से आचरण की प्रत्याशा पाठ्यक्रम का उद्देश्य है। विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से भी पाठ्यक्रम एक उपयोगी वस्तु है विद्यार्थी के नैसर्गिक गुणों तथा शक्तियों को समुचित तथा उपयुक्त दिशा में विकसित करना पाठ्यक्रम का ही कार्य हैं। नैसर्गिक गुणों एवं शक्तायों के विकास के बिना व्यक्ति का समुचित विकास सम्भव नहीं हैं

5. पाठ्यपुस्तकों का निर्माण – पाठ्यक्रम के आधार पर ही पाठ्यपुस्तकों की रचना की जाती है पाठ्यपुस्तकों में वही सामग्री रखी जाती है जो किसी स्तर के पाठ्यक्रम के अनुकूल हों। पाठ्यक्रम न होने पर पुस्तकों में अनावश्यक बातें भी सम्मिलित हो सकती हैं। पाठ्यक्रम इस स्थिति से हमारी रक्षा करता है।

6. अन्वेषकों की उत्पत्ति – किसी भी कक्षा स्तर के पाठ्यक्रम ऐसे ज्ञान पिपासुओं तथा विद्वानों को जन्म देता है जो अध्ययन, उद्योग एवं शोधकार्य ज्ञान में वृद्धि करते हैं।

7. समय एवं शक्ति का प्रयोग – पाठ्यक्रम से अध्यापकों यह ज्ञात रहता है कि उन्हें क्या सिखाना है और कितने समय में सिखाना है? इसी प्रकार विद्यार्थियों को भी यह ज्ञान रहता है कि उन्हें क्या सीखना है और कितने समय में सीखना है? इस प्रकार शिक्षक और विद्यार्थी दोनों ही एक निश्चित समय के भीतर कार्य पूरा करते हैं। अतः इसके द्वारा समय एवं शक्ति का सदुपयोग होता है।

8. क्या और कैसा ज्ञान – पाठ्यक्रम अध्यापकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। बिना इसके वे यह नहीं जान सकते कि उन्हें क्या और कितना ज्ञान बालकों को देना है? पाठ्यक्रम के आधार पर ही वे ठीक प्रकार से काम करते हैं और उन्हें यह मालूम रहता है कि एक निश्चित अवधि के अन्दर उन्हें यह मालूम रहता है कि एक निश्चित अवधि के अन्दर उन्हें अमुक कक्षा में कितना कार्य समाप्त करना है।

9. नागरिकों का निर्माण – शिक्षा का उद्देश्य उपयोग एवं आदर्श नागरिकों का निर्माण करना है। आदर्श एवं उपयोगी नागरिक वही है, जिसकी शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित हों, जो कानून का पालन करे, न्यायानुकूल आचरण करे और जिसमें स्वतन्त्र चिन्तन और निर्माण की शक्तियाँ शामिल हों, इन बातों की क्षमता एवं योग्यता उत्पन्न करने के लिए ही पाठ्यक्रम का निर्माण होता है।

10. मूल्यांकन में सरलता – किसी कक्षा स्तर के पाठ्यक्रम के आधार पर ही उस कक्षा के छात्रों की योग्यता का मूल्यांकन सम्भव होता है। पाठ्यक्रम के अभाव में मूल्यांकन कठिन होगा।

शिक्षण के सिद्धान्त

शिक्षण विधियाँ अथवा नीतियाँ कुछ सिद्धातों पर आधारित होती हैं, शिक्षण के दौरान शिक्षक को इन सिद्धातों को पालन करना आवश्यक होता है। व्यवहार को नियंत्रित करने में सिद्धांत सहायक होते हैं। शिक्षक के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए मुख्य रूप से दो प्रकार के सिद्धातों पर बल दिया गया है –

1.शिक्षण के सामान्य सिद्धांत

2.शिक्षण के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत

शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त

1. प्रेरणा के सिद्धान्त – प्रेरणा वह विधि है जिसके द्वारा विद्यार्थियों को पाठ्य–सामग्री में रूचि उत्पन्न हो जाए। इस दृष्टि से प्रेरणा के सिद्धान्त का तात्पर्य विद्यार्थियों में ज्ञान प्राप्त करने के लिए रूचि उत्पन्न करना है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जिस समय शिक्षक विद्यार्थियों को ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित कर देता है तो सीखने और सिखाने की प्रक्रिया सुचारू रूप से सम्पन्न होते रहती है पर उचित प्रेरणा के अभाव में विद्यार्थी सीखने में थोड़ा भी रूचि नहीं लेते। इससे समस्त शिक्षण असफल हो जाता है। अतः प्रत्येक शिक्षक को प्रेरणा के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। अब प्रश्न यह उठता है कि विद्यार्थी को ज्ञान प्राप्त करने के लिए किस प्रकार तैयार किया जाए। इसके लिए शिक्षक को विद्यार्थियों की जन्मजात प्रवृत्तियों का सावधानी के साथ प्रयोग करना चाहिए। यह अनुभव की बात है कि प्रत्येक विद्यार्थी को वातावरण सम्बन्धी नई–नई अनेक बातों का

ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल जिज्ञासा होती है। अतः शिक्षक को ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करना चाहिए कि प्रत्येक्ष विद्यार्थी में वातावरण सम्बन्धी अधिक से अधिक नई–नई बातों अथवा पाठ्य–सामग्री को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो जाए। उदाहरण के लिए इतिहास पढ़ाते समय ताजमहल, उसका मॉडल अथवा चित्र दिखाकर विद्यार्थियों में ताजमहल सम्बन्धी ऐतिहासिक घटनाओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न की जा सकती है। कारखानों तथा आर्ट–गैलरियों को दिखाने से विज्ञान तथा कला के प्रति जिज्ञासा विकसित की जा सकती है। ऐसे ही जिज्ञासा तथा आत्म–गौरव की भावनाओं को जागृत करते हुए विद्यार्थियों को अन्ताक्षरी द्वारा कविताओं को स्मरण करने की प्रेरणा दी जा सकती है।

2. क्रियाशीलता अथवा करके सीखने का सिद्धान्त – क्रियाशीलता के सिद्धान्त का यह अर्थ है कि शिक्षक को प्रत्येक प्रकार के पाठ में क्रियाशीलता उत्पन्न करनी चाहिए। स्मरण रहे कि क्रियाशीलता दो प्रकार की होती है – (1) शारीरिक, तथा (2) मानसिक। शारीरिक क्रियाशीलता का अर्थ है विद्यार्थियों की कर्मेन्द्रियों को क्रियाशीलता प्रदान करना तथा मानसिक क्रियाशीलता का तात्पर्य विद्यार्थियों की ज्ञानेन्द्रियों को क्रियाशील रखना है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्येक विद्यार्थी अपने स्वभाव से ही क्रियाशील होता है। अतः क्रियाशीलता उसकी प्रकृति के अनुरूप है। मैक्डूगल के अनुसार प्रत्येक बालक में रचना की जन्मजात प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति के आधार पर बालक प्रायः हर समय कुछ न कुछ करता ही रहता है। स्मरण रहे कि बालक की जितनी अधिक क्रिया होगी उतनी ही अधिक सीखने और सिखाने की प्रक्रिया होगी। अतः सफल शिक्षण के लिए शिक्षक को विद्यार्थी की रचना तथा अन्य मूल प्रवृत्तियों एवं इन्द्रियों का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शिक्षण के समय विद्यार्थी की मूल प्रवृत्तियों तथा इन्द्रियों को जितना अधिक प्रयोग किया जाएगा शिक्षण भी उतना ही आधिक प्रभावशाली होता जाएगा। ध्यान देने की बात है शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की क्रियाशीलताएँ एक दूसरे पर निर्भर रहती हैं। इसका प्रमाण यह है कि जन्म लेने के कुछ क्षण पश्चात् ही विद्यार्थी शारीरिक दृष्टि से क्रियाशील होने लगता है तथा जैसे–जैसे वह बड़ा होता जाता है उसकी मानसिक क्रियाशीलता का क्षेत्र भी विस्तृत हो जाता है। चूँकि विद्यार्थी का शरीर और मन दोनों साथ–साथ कार्य करते हैं, इसलिए वह प्रत्येक नई बात को सीखने में अधिक से अधिक रूचि लेता है। प्रसिद्ध शिक्षा–शास्त्री फ्रोबिल ने इसी बात को ध्यान में रखते हुए करके सीखने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा इसी सिद्धान्त के आधार पर अपनी किण्डर–गार्टन पद्धति का प्रतिपादन किया। प्रायः लोग क्रियाशीलता अथवा करके सीखने के सिद्धान्त का अर्थ गलत समझ बैठते हैं। इस सम्बन्ध में यह बात बताने योग्य है कि क्रियाशीलता के सिद्धान्त का अर्थ यह नहीं है कि केवल विद्यार्थी को स्वयं ही नई बात को सिखाने के लिए क्रियाशील बनाएँ। उदाहरण के लिए यदि इतिहास पढ़ाते समय विद्यार्थियों को पुस्तकों की अपेक्षा ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं को नाटक के रूप में दिखाया जाए तो खेलते ही खेलते उनको इतिहास के विषय में ज्ञान अधिक सरलता से प्राप्त हो सकता है। ऐसे ही भूगोल का ज्ञान प्राप्त करने की रूचि उत्पन्न की जा सकती है। चूँकि क्रियाशील रहने से विद्यार्थियों में अच्छी–अच्छी भावनाएँ जाग्रत होती हैं तथा उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है, इसलिए आधुनिक शिक्षण प्रणालियाँ जैसे – माण्टेसरी प्रणाली, किन्डर–गार्टन प्रणाली, अन्वेषण प्रणाली, डाल्टन प्रणाली, योजना प्रणाली, बेसिक प्रणाली आदि इसी सिद्वान्त पर आधारित हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि क्रियाशीलता का सिद्धान्त अत्यन्त लाभप्रद है। अतः इस सिद्धान्त का प्रयोग प्रत्येक कक्षा के प्रत्येक विषय तथा स्कूल के अन्य सभी कार्यों, जैसे – स्कूल परिषद्; वाद–विवाद प्रतियोगिता तथा विभिन्न सभाओं, सोसाइटियों, गोष्ठियों, क्लबों एवं खेलकूद, आदि में होना चाहिए। इससे विद्यार्थियों में प्रशंसनीय आदतों का विकास होगा तथा उन्हें समाज–सेवा का पर्याप्त एवं उचित प्रशिक्षण मिलेगा।

3. रूचि का सिद्धान्त – रूचि के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि शिक्षा को उपयोगी तथा प्रभावशाली बनाने क लिए विद्यार्थी की पाठ्य–विषय में रूचि उत्पन्न की जाए। जब विद्यार्थी को पाठ्य–विषय में रूचि उत्पन्न हो जाती है तो वह ज्ञान को सरलतापूर्वक ग्रहण कर लेता है। दूसरे शब्दों में उसे पढ़ते समय किसी प्रकार की

कोई कठिनाई नहीं आती। अब प्रश्न यह उठता है कि विद्यार्थी की पाठ में रूचि किस प्रकार उत्पन्न की जा सकती है। इसके लिए अनेक विधियाँ है, उदाहरण के लिए– (1) विद्यार्थी की जिज्ञासा को जागृत किया जाए तथा उसे पाठ को उद्देश्य स्पष्ट रूप से बताया जाए। यदि विद्यार्थी तथा शिक्षक दोनों को पाठ का उद्देश्य स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाएगा तो विद्यार्थी की पाठ के प्रति रूचि अवश्य जाग्रत हो जाएगी, (2) पाठ्य–विषय का विद्यार्थी की क्रियाओं और उद्देश्यों से सम्बन्ध स्थापित किया जाए, (3) क्रियाशील के सिद्धान्त का अनुसरण किया जाए, तथा (4) शिक्षण को विद्यार्थी के सक्रिय जीवन से सम्बन्धित किया जाए। उदाहरण के लिए यदि किसी विद्यार्थी को कविता याद करने में रूचि नहीं है तो उसे अन्त्याक्षरी में भाग लेने का अवसर प्रदान किया जाए। जब वही विद्यार्थी अपनी टोली को हारते हुए देखेगा तो उसमें कविता याद करने की रूचि स्वयं ही उत्पन्न हो जाएगी।

4. जीवन से संबंध स्थापित करने का सिद्धांत – मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्येक स्तर के विद्यार्थी की अपनी–अपनी दुनिया अलग–अलग होती है। दूसरे शब्दों में जैसे–जैसे विद्यार्थी बड़ा होता जाता है वैसे–वैसे अपने ढंग से नई दुनिया की कल्पना करना आरंभ कर देता है। इस प्रकार प्रत्येक विद्यार्थी केवल उन क्रियाओं अथवा विषयों में ही अधिक रुचि लेता है। जिनका उसकी अपनी निजी दुनिया से संबंध होता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए आधुनिक युग में शिक्षण करते समय क्रिया अथवा विषय को सीखने वाले के जीवन से संबंधित किया जाता है। अतः जीवन से संबंध जोड़ने के सिद्धांत का तात्पर्य यह है कि पाठ्यसामग्री को विद्यार्थियों के जीवन से संबंधित किया जाए। ठीक भी है, हम सब दिन–प्रतिदिन देखते हैं कि विद्यार्थी केवल उसी बात को सीखने में रुचि लेते हैं जिनका संबंध उसके जीवन से स्थापित हो जाता है। रायबर्न के अनुसार –"जीवन एक निरन्तर अनुभव है। जो कुछ हम करते हैं उसका अतीत और भविष्य में संबंध होता है।

हमारे इन दिन–प्रतिदिन के नये–नये अनुभवों में केवल वहीं अनुभव स्थायी रह पाते हैं जिनका संबंध हमारे पिछले अनुभवों से होता है। अतः नये–नये अनुभवों को पुराने अथवा पूर्वार्जित अनुभवों से संबंधित करना परम आवश्यक है। नये और पुराने दोनों अनुभवों का संबंध स्थापित हो जाने पर नवीन अनुभव अथवा ज्ञान विद्यार्थी के जीवन का अंग बन जाता है। इस दृष्टि से जीवन से संबंध जोड़ने के सिद्धांत को शिक्षण–पद्धति में अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाता है।

5. निश्चित उद्देश्य का सिद्धांत – इस सिद्धांत का अर्थ यह है कि प्रत्येक पाठ का कोई न कोई निश्चित लक्ष्य अथवा उद्देश्य अवश्य होना चाहिए। उद्देश्य के अभाव में शिक्षक उस नाविक के समान है जिसे अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं तथा सीखने वाला विद्यार्थी उस पतवारविहीन नौका के समान है जो समुद्र की लहरों के थपेड़े खाती हुई बह रही है। इस दृष्टि से पाठ को रोचक तथा प्रभावशाली बनाने के लिए कोई न कोई निश्चित, स्पष्ट तथा पूर्ण परिभाषित उद्देश्य होना चाहिए। स्मरण रहे कि उद्देश्य तथा शिक्षण–पद्धति का गहरा संबंध होता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक शिक्षण पद्धति किसी न किसी उद्देश्य पर अवश्य आधारित होती है। जैसा हमारा उद्देश्य होता है उसी के अनुसार शिक्षण पद्धति का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि हमारा उद्देश्य समाज की अनुभूति कराना है तो इसकी शिक्षण–पद्धति उसी के अनुरूप होगी। अतः प्रत्येक पाठ का कोई निश्चित उद्देश्य होना परम आवश्यक है यही नहीं, उसके विषय में विद्यार्थियों तथा शिक्षक को पूरी–पूरी जानकारी भी होनी चाहिए। इससे शिक्षक को अपने शिक्षण कार्य में सफलता मिलती है तथा विद्यार्थियों को पाठ के प्रति रुचि जाग्रत हो जाता है।

6.व्यक्तिक भिन्नता को जाग्रत करने का सिद्धांत – इस सिद्धांत का अर्थ यह है कि शिक्षण के समय विद्यार्थियों को विभिन्नताओं का ध्यान रखा जाए। मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक विद्यार्थी बुद्धि, स्वभाव, योग्यता तथा रुचियों क्षमताओं एवं आवश्यकताओं में एक सा नहीं होता। यही कारण है कि प्रत्येक विद्यार्थी एक ही स्तर पर नहीं होता। इस दृष्टि से सभी विद्यार्थियों के विकास हेतु समान अवसर

प्रदान करने के लिए शिक्षक को योग्य विद्यार्थियों को आगे बढ़ने के लिए उचित निर्देश देना चाहिए, असामान्य विद्यार्थियों के साथ सहानुभूति रखनी चाहिए तथा मंद बुद्धि अथवा पिछड़े हुए विद्यार्थियों को सामान्य स्तर पर लाने के लिए प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए संक्षेप में शिक्षक को सभी विद्यार्थियों का वैयक्तिक विभिन्नता के आधार पर, अधिक से अधिक विकास करना चाहिए।

7. चयन का सिद्धांत – पाठ्यपुस्तक के चयन का सिद्धांत एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इस सिद्धांत पर प्रकाश डालने से पहले हम यह बताना चाहते हैं कि पाठ्यपुस्तक का शिक्षा के उद्देश्य से घनिष्ठ संबंध होता है। दूसरे शब्दों में ऐसा उद्देश्य होता है उसी के अनुसार पाठ्यपुस्तक वस्तु चुन ली जाती है। अब पाठ्यपुस्तक के संबंध में यह बात जान लेना परम आवश्यक है कि जब से मानव ने इस भूमि पर जन्म लिया है तभी से उसने इस जटिल संसार के संबंध में अत्यन्त विस्तृत ज्ञान संचित कर लिया है। यदि शिक्षक यह चाहे कि वह शिक्षा के किसी निश्चित उद्देश्य को ध्यान में न रखते हुए विद्यार्थियों को सम्पूर्ण ज्ञान से परिचित करा दे, तो यह उसकी बड़ी भूल है। इसका कारण यह है कि कुछ बातें आवश्यक होती है और कुछ अनावश्यक। अनावश्यक बातों को बताने से विद्यार्थी प्रायः उलझन में पड़ जाते हैं। अतः इस सिद्धांत के अनुसार अपने शिक्षण को सफल एवं प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षक को अनावश्यक बातों को पाठ से अलग करके वैयक्तिक विभिन्नता को दृष्टि में रखते हुए केवल उन्हीं बातों अथवा तथ्यों का चयन करना चाहिए जो किसी निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उसे विद्याथियों के समक्ष रखनी है। दूसरे शब्दों में उसे यह चयन करना कि किसी कक्षा को क्या और कितना पढ़ाया जाए। संक्षेप में शिक्षक को किसी निश्चित स्पष्ट तथा पूर्ण परिभाषित उद्देश्य के अनुसार पाठ्य–पुस्तक का चयन करना चाहिए इसमें शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनों को लाभ होता है शिक्षक पाठ का विकास सफलतापूर्वक कर लेता है तथा सभी विद्यार्थी ज्ञान को सरलता से ग्रहण कर लेते हैं।

8.नियोजन का सिद्धांत – शिक्षण को सफल बनाने के लिए नियोजन के सिद्धांत का पालन करना परम आवश्यक है। इस सिद्धांत का अर्थ यह है कि शिक्षक की शिक्षण करने से पहले ही शिक्षण के क्रम को निश्चित तथा व्यवस्थित करके पाठ की योजना तैयार कर लेना चाहिए। इससे वह शिक्षण के समय प्रत्येक समस्या का समाधान सरलतापूर्वक कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षक को पाठ की योजना तैयार करते समय यह पहले से ही सोच लेना चाहिए कि वह विद्यार्थियों को किस स्तर पर कितना सहयोग प्राप्त करके किसी समस्या को कौन–सी विधि से हल करेगा। ऐसा भी हो सकता है कि शिक्षण करते समय कोई ऐसी भी समस्या आ जाए जिसकी शिक्षक ने पाठ योजना तैयार करते समय कल्पना भी न की हो। ऐसी स्थिति में शिक्षक की अपनी योग्यता के अनुसार उस समस्या को तुरन्त हल करने का प्रयास करना चाहिए भले ही उसे पाठ योजना से हटना ही क्यों न पड़े। इसका कारण यह है कि पाठ्य–योजना शिक्षक की स्वामिनी नहीं अपितु सेविका है।

9.विभाजन का सिद्धांत – इस सिद्धांत का अर्थ यह है कि पाठ्यसामग्री को निश्चित क्रम से प्रस्तुत करने के लिए कुछ अन्वितियों अथवा पदों (Units) में बाँट लेना चाहिए। पाठ्य–सामग्री को बाँटने के पश्चात् इन पदों अथवा सोपानों को विद्यार्थियों के समक्ष प्रकार से प्रस्तुत करना चाहिए कि प्रत्येक सोपान अपने में पूर्ण भी हों तथा एक सोपान दूसरे सोपान पर स्वाभाविक रूप से पहुँचाने की जिज्ञासा भी उत्पन्न कर दे। इस प्रकार सोपानों में विभाजित करके प्रस्तुतिकरण करने से विद्यार्थियों के लिए पाठ अत्यन्त सरल हो जाता है और वे इसका ज्ञान बिना किसी कठिनाई के सरलतापूर्वक ग्रहण कर लेते हैं। ऐसा न करने से पाठ जटिल हो जाता है और विद्यार्थियों की समझ में कुछ नहीं आता। अतः सफल परीक्षण के लिए पाठ को क्रमिक सोपानों में विभाजित करना परम आवश्यक है।

10.आवृत्ति का सिद्धान्त – इस सिद्धान्त का आशय यह है कि विद्यार्थियों को जो भी पाठ्य–सामग्री पढ़ाई जाए उसे विद्यार्थियों से बार–बार दुहरवाया जाए। वस्तु स्थिति यह है कि मनोवैज्ञानिक प्रयोगों तथा अनुसंधानों द्वारा वह सिद्ध हो चुका है कि सीखने में आवृत्ति आवश्यक होती है। दूसरे शब्दों में, बिना प्रयोग अथवा

अभ्यास के सब कुछ विस्मरण हो जाता है। अतः सीखे हुए ज्ञान को विद्यार्थियों से न केवल उसी समय, उसी घण्टे अथवा उसी दिन ही दुहरवाया जाए वरन् उनसे उनका प्रयोग समय–समय पर कराते रहना चाहिए। इस सम्बन्ध में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि आवृत्ति अथवा दुहराने की मात्रा पाठ की प्रकृति पर निर्भर करती है। अतः पाठ जितना अधिक कठिन हो उसे उतना ही अधिक दुहरवाना चाहिए।

11. निर्माण तथा मनोरंजन का सिद्धान्त – इस सिद्धान्त का तात्पर्य यह है कि विद्यार्थियों से ऐसी क्रियाएँ कराई जाएँ जो मनोरंजनपूर्ण हो तथा जो उनकी सृजनात्मक शक्ति का उचित विकास कर सके। इससे विद्यार्थी स्कूल तथा शिक्षक में भयभीत न होकर शिक्षण क्रिया में अधिक रुचि लेंगे, नई–नई बातें खोजने का प्रयास करेंगे तथा उन्हें सृजनात्मक क्रियाओं की अभिव्यक्ति का अवसर मिलेगा। इस दृष्टि से निर्माण तथा मनोरंजन का सिद्धान्त सफल शिक्षण के लिए परम आवश्यक है। बीसवीं शताब्दी में ऐसी अनेक शिक्षण–विधियों का विकास हुआ है जो निर्माण तथा मनोरंजन अथवा खेल द्वारा शिक्षा के सिद्धान्त पर आधारित है।

12. जनतन्त्रीय व्यवहार का सिद्धान्त – जनतन्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार शिक्षक को विद्यार्थियों के साथ जनतन्त्रीय दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, तानाशाही नहीं। तानाशाही व्यवस्था में विद्यार्थी के व्यक्तित्व का दमन हो जाता है। इससे वे कभी–कभी विद्रोह भी कर बैठते हैं। इसके विपरीत जनतन्त्रीय व्यवस्था में प्रत्येक को समाज की एक पवित्र तथा अमूल्य निधि समझा जाता है। अतः उसके व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए उसे स्वचिन्तन तथा स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के अधिक से अधिक अवसर मिलते हैं। चूँकि आधुनिक युग में जनतन्त्र का बोलबाला है, इसलिए शिक्षक को विद्यार्थियों के साथ जनतन्त्रीय दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। स्मरण रहे कि जनतन्त्रीय दृष्टिकोण का अर्थ यह है कि शिक्षक पाठ का विकास विद्यार्थियों की सहायता एवं सहयोग से करें तथा उन्हें अधिक से अधिक प्रश्न पूछने एवं अपनी शंकाओं का समाधान करने की पूरी–पूरी छूट दें। इससे विद्यार्थियों में स्वतन्त्र रूप से विचार करने की आदत पड़ जाएगी। साथ ही, उनमें आत्म–विश्वास, आत्म–गौरव तथा आत्म–सम्मान आदि अनेक गुण विकसित होकर उनका व्यक्तित्व सहज में ही ऊँचा उठ जाए।

शिक्षण के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

(Psychological Principle of Teaching)

शिक्षण के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त शिक्षण प्रक्रिया को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। इन सिद्धान्तों का प्रयोग अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए किया जाता है। ये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त निम्नलिखित हैं –

1. **अभिप्रेरणा एवं रुचि का सिद्धान्त –** शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अभिप्रेरणा और रुचि को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षक और विद्यार्थी दोनों को ही अभिप्रेरित होकर तथा रुचि से कार्य करना पड़ता है।

2. **मनोरंजन का सिद्धान्त –** कई अवसरों पर विद्यार्थी कक्षा में थकान महसूस करता है। कक्षा में शिक्षण कार्य अधिक लम्बा होने के कारण ऐसा होता है। इस थकान के फलस्वरूप विद्यार्थी ऊब जाता है और कार्य में रूचि लेना बंद कर देता है। इस सिद्धांत के प्रयोग की आवश्यकता छोटे बच्चों की कक्षा में अधिक पड़ती है। अतः कक्षा में मनोरंजन के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए।

3. **आवृत्ति और अभ्यास का सिद्धान्त** – यह बात सभी को मालूम हो चुकी है कि यदि अर्जित ज्ञान का अभ्यास न किया जाए तो विद्यार्थी में विस्मृति की प्रक्रिया (Process of Foregetting) प्रारम्भ प्रारम्भ हो जाती है। इस सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक थार्नडाइक (Thorndike) ने प्रयोग भी किया है।

अतः कक्षा में आवृत्ति (Repitition) और अभ्यास (Exercise) प्रतिदिन होना चाहिए। इस सिद्धान्त की उपयोगिता छोटे बच्चों में बढ़ जाती है।

4. **सृजनात्मकता और आत्माभिव्यक्ति को प्रोत्साहन का सिद्धान्त** – शिक्षक का यह कर्त्तव्य बन जाता है कि वह विद्यार्थियों में सृजनात्मक और आत्माभिव्यक्ति को प्रोत्साहन दे अर्थात् वह विद्यार्थियों में खोज करने की आदतों का विकास करें। विद्यार्थी अपने विचारों एवं दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करने के योग्य हो सकें।

5. **सुधारात्मक शिक्षण का सिद्धान्त** – कई बार विद्यार्थियों में और शिक्षण कार्यों में त्रुटियाँ होती हैं। शिक्षक को चाहिए कि वे इन त्रुटियों का पता लगाए तथा अपने शिक्षण कार्यों में त्रुटियाों को ढूँढकर उनमें सुधार करे। इसे सुधारात्मक शिक्षण कहते हैं। यह कार्य इतना आसान नहीं है इसमें शिक्षक को कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

6. **सहानुभूति और सहयोग का सिद्धान्त** – शिक्षण विद्यार्थियों का एक अच्छा पथ–प्रदर्शक सिद्ध हो सकता है यदि वह विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूति रखता है और उनकी कठिनाइयों को दूर करने में अपना सहयोग प्रदान करता है। ऐसे शिक्षण विद्यार्थियों के लिए प्रेरणा बन जाते हैं।

7. **पुनर्बलन का सिद्धान्त** – शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में पुनर्बलन शब्द का प्रयोग होता है। इसका सम्बन्ध अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने से है। शिक्षण प्रक्रिया में पुनर्बलन का अर्थ है–ऐसे उद्दीपनों (Stimuli) का प्रयोग करना या उन्हें प्रस्तुत करना या उन्हें हटाना ताकि किसी अनुक्रिया (Response) के होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाएँ। जैसे कक्षा में ही उत्तर मिलने पर यदि शिक्षक विद्यार्थियों को कोई पुरस्कार दें तो विद्यार्थियों में फिर वैसे ही व्यवहार की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।

8. **ज्ञानेन्द्रियों को प्रशिक्षित करने का सिद्धान्त** – प्रभावशाली अधिगम को प्रोत्साहित करने के लिए सभी ज्ञानेन्द्रियों का उचित विकास बहुत आवश्यक है। अधिगम के सभी पक्षों जैसे निरीक्षण (Observation), पहचान (Identification) सामान्यीकरण (Generalisation) व प्रयोगों (Experiments) आदि के लिए सभी प्रकार की क्षमताओं की आवश्कता होती है जोकि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र के उपागम

मनोविज्ञान तथा शिक्षा के शोध कार्य से सिद्ध हो चुका है कि मनस् एक समन्वित इकाई है। विभिन्न विषयों के सीखने के लिए मस्तिष्क में अलग–अलग भाग नहीं है, अपितु शिक्षण की सुविधा के लिए ज्ञान को विषयों में बाँट लिया है। बालक तथा बालिकाओं के विकास पर सभी विषयों के प्रभाव समन्वित रूप में होता है। ज्ञान सभी विषयों का समग्र रूप है। बालक के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों के विकास का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है। अतः इतिहास शिक्षण में अन्य विषयों में संबंध स्थापित करते हुए पढ़ाने की विधि को विशेष महत्व दिया जाता है शिक्षा में इस संबंध के प्रत्यय को सर्वप्रथम हरबर्ट ने दिया था। यह वैज्ञानिक–प्रकृति के समर्थक थे। उनका कहना है कि सम्पूर्ण मन् का विकास तभी सम्भव हो सकता है, जबकि सभी विषयों में सह–संबंध स्थापित करते हुए पढ़ाया जाए। इस प्रत्यय के प्रयोग के लिए शिक्षण व्याख्यान–विधि द्वारा किया जाए और पाठ्यक्रम विषय–केन्द्रित होना चाहिए। शिक्षण में पाठ्यवस्तु की व्यापकता तथा बोधगम्यता की दृष्टि से विशेष महत्व है। सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र के प्रमुख उपागम या आयाम निम्नलिखित हैं –

1. व्यवहारवादी उपागम (Behaviourist Approach)
2. संज्ञानात्मक उपागम (Cognitive Approach)

3. संरचनावादी उपागम (Constructivist Approach)
4. अन्तर्विषयक उपागम (Interdisciplinary Approach)
5. समन्वित उपागम (Integrated Approach)
6. बाल–केन्द्रित उपागम (Child-Centered Approach)
7. पर्यावरण उपागम (Environmental Approach)

1.व्यवहारवादी उपागम (Behaviourist Approach)

सीखना जीवन–पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जो जन्म से मृत्यु तक चलती रहती है। सीखना व्यवहार का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। सीखने की प्रक्रिया में मनुष्यों एवं पशुओं में अन्तर पाया जाता है। पशुओं के सीखने की प्रक्रिया मनुष्यों के सीखने की अपेक्षाकृत सरल है। इसी कारण से मनोवैज्ञानिकों ने सीखने से सम्बन्धित शोध पशुओं पर अधिक किए है और शोधों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जिन्हें हम सीखने के सिद्धान्त (Theory of Approaches Learning) कहते हैं। सीखने के सिद्धान्तों को सीखने की विधियाँ भी कहा जाता है। व्यवहारवाद के मुख्य समर्थक जे.बी.बाटसन (J.B. Watson), मैकस मैयर (Max Mayaer), अलवर्ट पी. वीस (Albert P. Weiss), वाल्टर एस–हन्टर (Walter S. Hunter), बी.एफ. स्किनर (B.F. Shinner) आदि हैं। अमेरिका में पशुओं के व्यवहार के अध्ययन के अध्ययन पर अधिक बल दिया गया। व्यवहारवाद कृत्यवाद (Functionalism) तथा सरंचनावाद (Structuralism) के विरोध में एक प्रतिक्रिया है। व्यवहारवादियों ने मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान (Scence of Consciousness) न मानकर उसे व्यवहार के विज्ञान (Science of Behaviour) की संज्ञा दी।

लगभग 60 वर्षों से व्यवहारवाद उपागम ने शिक्षा को प्रभावित किया है और इसके सिद्धान्त पाठ नियोजन को दिशा देते रहे हैं। इसका मूल सिद्धान्त है कि छात्रों में वांछित व्यवहार के परिवर्तन को ही अधिगम कहते हैं। इसमें उद्दीपन और प्रतिक्रिया को परिवर्तन के लिए काम में लाया जाता है। इनके अनुसार उद्दीपन एवं प्रतिक्रिया को परिवर्तन के लिए काम में लाया जाता है। इनके अनुसार उद्दीपन एवं प्रतिक्रिया के मिलने से अधिगम होता है किन्तु इस सिद्धान्त का कक्षा–कक्ष में प्रयोग इतना सरल नहीं है। इसलिए छात्रों को सुख, डर तथा चिन्ता के कारण परिस्थिति उत्पन्न करके विधि को प्रयोग में लाया जाता है।

इसी क्रम में **थॉर्नडाइक** और **बी.एफ.स्किनर** द्वारा इन सिद्धान्तों को शिक्षण अधिगम में काम में लिया गया है और सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रबलन विधि का प्रयोग किया गया। आज भी पाठ नियोजन व्यवहारवादी सिद्धान्त पर विकसित होते हैं किन्तु संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्तों के स्वीकारने से इनमें कई कमियाँ पहचानी गई हैं और व्यवहारवाद को यन्त्रवादी (Mechanistic) बताया गया। इस प्रविधि में शिक्षक बाहर से छात्रों में वांछित व्यवहार परिवर्तन करने का प्रयास करते हैं और शिक्षण अधिगम प्रविधि को निर्देशित और नियंत्रित करते हैं अर्थात् छात्रों को सीखने के लिए कोई स्वतंत्रता नहीं है। यह विधि व्यवहार विकास पर बल देती है। इस प्रकार का शिक्षण अधिगम उच्च स्तरीय चिन्तन, समस्या–समाधान योग्यताएँ और सृजनात्मकता पर बल नहीं देता है। यह मात्र व्यवहार परिवर्तन पर बल देता है और छात्र के मानसिक विकास पर बल नहीं देता है।

व्यवहारवाद की स्थापना वाटसन (Wastson) महोदय ने 1912 में की थी, वाटसन ने कहा कि व्यवहार का अध्ययन ही मनोविज्ञान की असली विषय–वस्तु है। व्यवहारवादियों में पैवलॉव (Pavlov) का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है, उसने अनेक प्रयोगों के आधार पर 'संबंध अनुक्रिया सिद्धान्तक अथवा संस्थापित अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धांत (Classical Conditioning Theory) की खोज की।

व्यवहारवाद की विशेषताएँ

(Characteristics of Behaviourism)

व्यवहारवाद की मुख्य विशेषताएँ निम्नांकित है –

1. पशु व्यवहार के आधार पर मानव शिशु की व्याख्या की गई।
2. मनोविज्ञान में अनुभव का स्थान व्यवहार ने ले लिया।
3. मन और चेतना का स्थान उद्दीपन अनुक्रिया (Stimulus Response) ने लिया।
4. व्यवहार की वस्तुनिष्ठ विधियों के परिणामस्वरूप शिक्षा और मनोविज्ञान में वस्तुनिष्ठ मापन एवं मूल्यांकन की नींव पड़ी।
5. संवेदना या विचार के स्थान पर सहज क्रिया को महत्व दिया जाने लगा।

व्यवहारवाद का शिक्षण–अधिगम सामाजिक विज्ञान पर प्रभाव

(Influence of Behaviorism on Teaching-Learning Social Science)

व्यवहार का शिक्षण–अधिगम सामाजिक विज्ञान पर प्रभाव को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है–

1. पशुओं पर किए गए प्रयोगों का उपयोग शिक्षण–अधिगम मनोविज्ञान में किया गया, सीखने के नियमों को उद्दीपन अनुक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा।
2. पशुओं की प्रयत्न और भूल विधि (Trial and Error method) को मानव की अधिगम प्रक्रिया (Learning Process) में लागू किया जाने लगा।
3. व्यवहारवाद से बाल मनोविज्ञान का विकास हुआ।
4. कुशलतापूर्ण कार्यों में गामक क्रियाओं (Motor Responses) का अध्ययन किया गया।
5. मानव की अधिगम प्रक्रिया पर अनुक्रिया की सम्बद्धता को लागू किया गया।
6. व्यवहारवाद के परिणामस्वरूप बुद्धि परीक्षणों (Intelligence Tests) का निर्माण हुआ।
7. व्यवहारवाद ने व्यक्ति की व्यावहारिक परिभाषाएँ प्रस्तुत की।
8. व्यवहारवादियों ने व्यक्तित्व निर्माण की या मूल्यांकन की उपयोगी विधियों की खोज की।

व्यवहारवादी उपागम और शिक्षण–अधिगम

(Behaviourism Approach and Teaching-Learning)

व्यवहारवादी उपागम शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया बालक के विकास की ओर अग्रसर होती है जिससे निम्नलिखित तथ्यों को प्राप्त किया जाता है –

1. सही उत्तर पर छात्र को प्रोत्साहित किया जाता है किन्तु गलत उत्तर पर उन्हें प्रोत्साहित नहीं किया जाता है।
2. मनोवैज्ञानिक यह स्वीकारते हैं कि मानव व्यवहार सीखा जा सकता है।

3. व्यवहारवादी अधिगम में शिक्षक अधिगम को बाहर से नियंत्रित करते हैं।
4. व्यवहारवादी अधिगम शिक्षण अधिगम में विवेचनात्मक चिन्तन, समस्या–समाधान, योग्यताएँ विकसित करने का अवसर नहीं देते हैं।
5. मूल अधिगमकृत्यों पर छात्र को प्रवीणता प्राप्त करनी पड़ती है और इसके पश्चात् अगले कृत्यों पर उच्च स्तर के सम्प्रत्यय सीखे जाते हैं।
6. विशिष्ट उद्देश्य स्पष्ट परिभाषित किये जाते हैं।
7. छात्र अधिगम में प्रतिपुष्टि एवं प्रबलन अनिवार्य भाग है।
8. अधिगम कृत्य एक सीढ़ी–दर–सीढ़ी में अर्थात् सरल से जटिल की ओर व्यवस्थित किया जाता है।
9. किस प्रविधि में अपेक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति वांछनीय है।
10. वांछित व्यवहारगत उद्देश्यों की उपलब्धियों की प्राप्ति पर बल दिया जाता है।
11. प्रत्यक्ष व्यवहार परिवर्तन पर शिक्षण अधिगम केन्द्रित होते हैं

संज्ञानात्मक उपागम

(Cognitive Approach)

संज्ञानवादी दृष्टि में अधिगम को एक जटिल प्रक्रिया माना जाता है। व्यवहारवादी अवधारणा के तहत सीखने के प्रमाण अधिगमकर्त्ता के बाहरी व्यवहार द्वारा तय होते हैं जबकि संज्ञानवाद के अनुसार मूलतः आन्तरिक परिवर्तन है जो एक प्रकार की समस्या समाधान क्षमता विकसित होने का परिसूचक है तथा जिसमें व्यक्ति के भीतर नवीन दृष्टि सोच एवं विश्वास का अभ्युदय होता है। व्यक्ति किसी समस्यात्मक परिस्थिति के उत्पन्न होने पर उसका समाधान ढूँढ़ता है जिसके लिए अपेक्षित है कि वह समस्या–अनुक्षेत्र से जुड़े सभी अंशों को देखे व समझे उनके मध्य सम्बन्ध जोड़े तथा समस्या–समाधान की रणनीति बनावे, समस्या–समाधान के उपागम की व्याख्या हेतु संज्ञानवापदियों की पहली पीढ़ी (जिसमें गेस्टाल्ट एवं क्षेत्र सिद्धान्त के प्रवर्तक शामिल हैं) ने अन्तर्दृष्टि (इनसाइट) पद का अनुप्रयोग किया। बाद में संज्ञानवादियों ने सीखने की प्रक्रिया को सूचना प्रक्रमण (इनपफॉर्मेशन प्रॉसेसिंग) के रूप में लिया जिसमें व्यक्ति द्वारा अपने तथा अपने पर्यावरण (परिवेश) के बारे में अड़ोस–पड़ोस एवं परिवेश के बारे में भी सोचने का ढंग परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार अधिगम से तात्पर्य है – संज्ञानात्मक संरचना में परिवर्तन होना। यहाँ संज्ञानात्मक संरचना का अर्थ है व्यक्ति की अपने मनोवैज्ञानिक, भौतिक एवं सामाजिक दुनिया के प्रत्यक्षीकरण में घटित तब्दीली। इसी परिप्रेक्ष्य में अधिगम एक सक्रिय एवं गतिशील प्रक्रिया है जिसमें अधिगमकर्त्ता की भागीदारी महत्वपूर्ण होती है।

इस सन्दर्भ में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि संज्ञानवादी अवधारणा के तहत अधिगम एक सक्रिय पहल है जिसमें व्यक्ति सक्रिय रूप से प्रतिभाग करते हुए परिस्थिति में पाई जाने वाली समस्या का समाधान प्राप्त करता है। यह समाधान उसकी संज्ञानात्मक संरचना में बदलाव के फलस्वरूप घटित होता है न कि उसके बाह्य रूप में दिखाई पड़ने वाले बाहरी व्यवहार–परिवर्तन द्वारा। संज्ञानवादी यह मानते हैं कि अधिगम के लिए संज्ञानात्मक प्रयास एवं सही सम्प्रत्यात्मक अवबोध का होना परमावश्यक है।

संज्ञानात्मक अधिगम की परिभाषा (Definition of Learning Cognitive) – संज्ञानात्मक दृष्टि में अधिगम की आवधारणा भिन्न है। यह बाह्य व्यवहार के माध्यम से न विज्ञाप्ति होकर आन्तरिक क्षमता में बदलाव

के जरिए व्यक्त होता है जो बुनियादी तौर पर व्यक्ति की संज्ञानात्मक संरचना में परिवर्तन का द्योतक है। संज्ञानात्मक संरचना में यह तबदीली तीन ढंगों से होती है – भेदीकरण, सामान्यीकरण एवं पुनःसंरचनाकरण।

भेदीकरण (Differentiation) - भेदीकरण से तात्पर्य है अपने तथा अपने परिवेश के विशेष पक्षों में विभेद कर लेना उदाहरणार्थ, एक शिशु अपनी 'माँ' के साथ प्रत्येक प्रौढ़ महिला को देखता है तथा उन्हें 'माँ' के रूप में लेता है। धीरे–धीरे वह उन्हें चाची, बहन, दाई परिचारिका के रूप में भेद करने लग जाता है। इस प्रकार संज्ञानात्मक संरचना अधिक विशिष्ट बन जाती है।

सामान्यीकरण (Generalisation) - सामान्यीकरण जब अधिगमकर्त्ता भिन्न–भिन्न अवधारणाओं में विभेद कर लेता है तथा बाद में विभेदीकृत अवधारणाओं को कुछ विशेष समान रूप से पाई जाने वाली विशेषताओं के आधार पर वर्गीकृत कर लेता है तो इसे सामान्यीकरण की संज्ञा दी जाती है। उदाहरण के तौर पर जब भिन्न–भिन्न जीवों जैसे कोयल, कौआ, कबूतर, तोता एवं मैना आदि में विभेद हुए उन्हें एक सामान्य संवर्ग 'पक्षी' में रख लेता है तो इसे सामान्यीकरण कहा जाएगा।

पुनः संरचनाकरण (Restructionisation) – विभेदीकरण एवं सामान्यीकरण की प्रक्रिया घटित हो जाने पर अधिगमकर्त्ता अपनी संज्ञानात्मक संरचना को फिर से निर्मित कर लेता है जिससे वह विभेदीकृत एवं सामान्यीकृत सम्प्रत्ययों को उपयोजित करने एवं उनके माध्यम से 'स्व' तथा अपनी दुनिया पर एक प्रकार का नियंत्रण या कामयाबी हासिल करने में सफल होता है।

सरंचनावदी उपागम

(Constructivist Approach)

वुण्ट ने अपने प्रयोगों को व्यक्ति के विचारों, भावनाओं, संवेदनाओं, संकल्पों तथा इच्छाओं के अध्ययन पर केन्द्रित किया। उन्होंने अपना पूरा ध्यान चेतना के विभिन्न अवयवों के विश्लेषण की ओर लगाया। वे अध्ययन करते थे कि चेतना क्या है ? इसकी व्यवस्था क्या है तथा किन–किन शक्तियों से गठित है? उनके इस कार्य ने ही उनकी विचारधारा को 'संरचनावाद' का नाम दिया। अन्तर्निरीक्षण (Introspection) अथवा आत्म–प्रेक्षण की कला का उपयोग करते हुए, वुण्ट और उनके शिष्यों ने प्रयोगशाला में प्रयोग सम्पन्न किए। प्रयोज्यों (Subjects) से उस समय के अनुभवों को सही–सही बताने को कहा जाता था, जब उन्हें उद्दीपक (प्रकाश, रंग, ध्वनि अथवा किसी वस्तु का स्पर्श) दिए जाते थे। प्रयोगों के दौरान मनोवैज्ञानिक अपनी खुद की भावनाओं और अनुभवों का प्रेक्षण करने तथा उनका लेखा करने और तदुपरान्त मस्तिष्क के क्रिया–कलापों के अपने विश्लेषण प्रस्तुत करने के लिए, प्रयोज्य की भाँति व्यवहार करते थे। लिपजिंग प्रयोगशाला ने अधिकांश प्रमुख मनोवैज्ञानिकों को उत्पन्न किया। उनमें से वुण्ट के शिष्य एडवर्ड ब्रैडफोर्ड टिचनर कारॅनेल विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हुए, उनके अनुसार चेतना का विज्ञान अथवा अनुभव का अध्ययन ही मनोविज्ञान का है। चेतना अथवा अनुभव को तीन आधारभूत तत्वों दैहिक संवेदनाओं (Physical Sensations), भावनाओं (Feelings) तथा प्रतिभाओं (जैसे–स्मृतियाँ, स्वप्न) में विश्लेषित किया जा सकता है। अपने अध्ययनों से टिचनर ने निष्कर्ष निकाला कि मानव–मस्तिष्क की संरचना, कुछ और नहीं, 30,000 से अधिक पृथक् संवेदनाओं, भावनाओं और प्रतिमाओं से हुई थी।

मनोविज्ञान के सम्प्रदाय के रूप में संरचनावाद अत्यन्त सीमित सम्प्रदाय माना जाता है। इस सम्प्रदाय की आलोचना अन्य थी कई आधारों पर की गई – यह मानव व्यवहार के सभी पहलुओं को समझाने में सक्षम नहीं हैं। इस सम्प्रदाय के अनुसार कार्य विशेष में संरचनाएँ निहित हैं, और मस्तिष्क की संरचनाओं को इसके अंगो द्वारा सामझाया जा सकता है न कि इसके प्रक्रम द्वारा। संरचनावादियों की अध्ययन पद्धति की भी आलोचना हुई। अध्ययन में प्रयोग की गई अन्तर्निरीक्षण पद्धति को न तो वस्तुनिष्ठ (Objective), विश्वसनीय (Reliable) और न

वैध (Valid) ही माना जा सकता है क्योंकि प्रत्येक अन्तर्द ान (Introspectionist) अपने आत्मनिष्ठ (Subjective) तरीके से अपने खुद के संवेदनात्मक अनुभवों का वर्णन करता है।

संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य में, सीखना ज्ञान के निर्माण की एक प्रक्रिया है। विद्यार्थी सक्रिय रूप से पूर्व प्रचलित विचारों में उपलब्ध सामग्री/गतिविधियों के आधार पर अपने लिए ज्ञान के निर्माण में मदद की जा सकती है। आरंभिक चर्चा (मानसिक चित्रण) सड़क यातायात के विचार पर आधारित हो सकती है और ग्रामीण इलाके का कोई विद्यार्थी बैलगाड़ी के इर्द–गिर्द अपने विचार गढ़ सकता है। विद्यार्थी दी गई गतिविधियों (अनुभव) के माध्यम से (यातायात व्यवस्था) की मानसिक छवि गढ़ सकता है। विचारों की रचना एवं पुनर्रचना उनके विकास के आवश्यक लक्षण हैं। उदाहरण के लिए, यातायात व्यवस्था पर आरंभिक विचार सड़क यातायात पर निर्मित होगा और बाद में यह दूसरे प्रकार के यातायात जैसे–समुद्र और वायु यातायात को समाहित करने के लिए विभिन्न गतिविधियों का उपयोग करते हुए पुनर्रचित होगा। विद्यार्थियों को बाद में उपयुक्त गतिविधियों के माध्यम से यातायात व्यवस्था के बारे में बताया जा सकता है (कारण–प्रभाव) हालांकि, इस ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया का एक सामाजिक पहलू यह भी है कि जटिल कार्य के लिए आवश्यक ज्ञान समूह परिस्थितियों में निहित होता है। इस संदर्भ में, सहयोगी शिक्षण को पर्याप्त महत्व दिए जाने की आवश्यकता है।

ज्ञान के सृजन एवं पुनःसृजन के लिए अनुभव के आधार, भाषायी क्षमताओं एवं प्राकृतिक संसार और दूसरे लोगों के साथ अंतःक्रिया की जरूरत होती है। स्कूल में पहली बार प्रवेश करते समय बच्चा संसार के ज्ञान का सृजन शुरू कर चुका होता है। हर चीज जो बच्चे बाद में सीखते हैं वह उस ज्ञान से संबंधित होता है जो वह स्कूल में लेकर आते हैं। यह ज्ञान भी अंतःप्रज्ञात्मक होता है। स्कूल अवसर देता है कि इसी ज्ञान को आधार मान कर, सचेत रह कर और जुड़ाव के साथ आगे बढ़ा जाए। सीखने के शुरूआती स्तर पर, स्कूल–पूर्व से प्राथमिक स्कूली वर्षों में पाठ्यचर्या की सभी गतिविधियों में भाषा और गणित को एक महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए। विषयों में विभाजन उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना ज्ञान क्षेत्रों को समेकित किया जाना ताकि बच्चों के सामने उन्हें परिवेश के शैक्षिक अनुभवों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसमें प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश के साथ गहन सामाजिक अंतःक्रियाओं की समझ, सौन्दर्यबोध की क्षमताओं का विकास शामिल है।

कक्षा में शिक्षक एवं शिक्षार्थी की अन्तःक्रिया विवेचनात्मक होती है क्योंकि उसमें यह परिभाषित करने की ताकत होती है कि किसका ज्ञान स्कूल–संबंधी ज्ञान का हिस्सा बनेगा और किसकी आवाज उसे आकार देगी। शिक्षार्थी केवल ऐसे छोटे बच्चे नहीं होते जिनके लिए वयस्कों को कुछ हल ढूंढ़ने होते हैं। वे अपनी परिस्थिति व जरूरतों के सूक्ष्म पर्यवेक्षक होते हैं तथा उन्हें अपनी शिक्षा व भावी अवसरों से संबंधित समस्याओं के हल की प्रक्रिया तथा विमर्श में भाग लेना चाहिए। अतः बच्चों में चेतना होनी चाहिए कि उनके अनुभव व उनकी अनुभूतियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। उन्हें अपनी मानसिक योग्यता को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि वे स्वतंत्र रूप से तर्क व विचार कर सकें और असहमत होने का साहस रखें। बच्चे जो स्कूल से बाहर सीखते हैं–उनकी क्षमताएँ, सीखने की सामर्थ्य और ज्ञान जिसे वे स्कूल लेकर आते हैं वह भी अधिगम की संवृद्धि में बहुत महत्वपूर्ण है। यह उन बच्चों के लिए और भी महत्वपूर्ण है जो वंचित पृष्ठभूमि से आते हैं, खासकर लड़कियों के लिए क्योंकि उनकी दुनिया और उनकी वास्तविकताएँ स्कूली ज्ञान में बहुत कम दिखाई देती हैं।

संरचनावाद क्या है?

(What is Constructivism)

संरचनावाद मूलतः एक सिद्धान्त अथवा प्रतिमान (Paradigm) है जो निरीक्षण एवं वैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित होता है। यह हमें बताता है कि व्यक्ति सीखता कैसे है? यह बताता है कि व्यक्ति इस संसार के बारे में अपनी समझा एवं ज्ञान को अनेक वस्तुओं का अनुभव करके तथा उन्हें अपने जीवन में उतारकर विकसित करता

है। जब हम किसी नई वस्तु से जुड़ते हैं तो हम इसे अपने पूर्व विचारों एवं अनुभवों से मिलान करके देखते हैं। यह हो सकता है कि जिन बातों पर हम पहले विश्वास करते थे वे बदल जाएँ और यह भी हो सकता है कि नवीन जानकारी को निरर्थक समझते हुए हम इसका त्याग कर दें। इन दोनों ही स्थितियों में हम अपने ज्ञान के स्वयं ही सक्रिय रचयिता हैं। इस सन्दर्भ में यह जानने के लिए कि हम कितना जानते हैं, हमें प्रश्न पूछने होंगे, प्रश्नों की खोज करनी होगी तथा स्वयं का मूल्यांकन करना होगा। जब तक अधिगमकर्त्ता इस सन्दर्भ में सक्रिय नहीं होता कि उसे क्या जानना है तथा कैसे जानना है तब तक किसी भी प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करना या समझ बनाना सम्भव नहीं है।

अधिगम से संबंधित पहलुओं पर विभिन्न विचारधाराएँ देखने को मिलती हैं, जैसे–अधिगम कैसे होता है? इसे विकसित करने के उत्तम तरीके कौन–कौन से हैं? तथा इससे सम्बन्धित अन्य शंकाएँ, लेकिन वह एक सर्वमान्य तथ्य है कि अधिगम स्वयं परिलक्षित नहीं होता है–ललित कुमार (2001)। विगत् कई वर्षों से शोधकर्त्ताओं का ध्यान इस ओर केन्द्रित हुआ है कि वे कौन से तरीके (Strategies) हैं जो कक्षा–कक्ष में अधिगम को बढ़ावा दे सकते हैं। ये नये तरीके सामान्यतः शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्त्ता की बढ़ती सहभागिता पर आधारित हैं। ग्रिफिन (Griffin) तथा अन्य ने अपने शोधों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि जिन छात्रों को सक्रिय सहभागिता अनुदेशनात्मक तरीकों से पढ़ाया गया उनमें उच्च स्तरीय चिंतन कौशलों का विकास अधिक हुआ। सक्रिय सहभागिता अध्यापक के स्वयं के चेतन प्रयासों का परिणाम है जिसकी वजह से छात्र कक्षा–कक्ष में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। किनेल तथा रोबर्ट (Kinel and Robert, 1994) ने देखा कि इस प्रकार की सहभागिता गणित में उपलब्धि बढ़ाने में प्रभावी सिद्ध हुई।

संरचनावाद एक विचार है जो यह विश्वास करता है कि छात्र कक्षा–कक्ष में खाली दिमाग लेकर प्रवेश नहीं करता बल्कि अनेक संरचित विचारों के साथ यह जानने की उत्सुकता लिये प्रवेश करता है कि वह प्राकृतिक संसार किस प्रकार कार्य करता है। फुस्नोट (Fusnot,1989), प्याजे (Piaget, 1977) भी इस बात को महत्व देते हैं कि सीखना सक्रिय रूप से भाग लेकर ही सम्भव होता है न कि मात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में बैठकर। अब हम अधिगकर्त्ता के रूप में किसी अनुभव या परिस्थिति का सामना करते हैं जो हमारे वर्तमान सोचने के तरीके से मेल नहीं खाते तो हमारे मस्तिष्क में एक असंतुलन की स्थिति पैदा हो जाती है। ऐसी स्थिति में संतुलन बनाये रखने की दृष्टि से हमें अपने सोचने के तरीकों में परिवर्तन लाना होता है। ऐसा करने के लिए हमें नये ज्ञान में पुराने ज्ञान को समाहित करना होता है। लेस्टर तथा ओनेर (Lester and Onare, 1990) ने कहा है कि अधिगमकर्त्ता स्वयं ज्ञान के निर्माता हैं।

भारत में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या कार्यक्रम (National Curriculum Framework, 2005) में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि शिक्षण को रचनावाद के सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए। संरचनात्मक शिक्षण संरचनात्मक सोच को बढ़ावा देती है तथा सक्रिय एवं अभिप्रेरित अधिगमकर्ताओं को जन्म देती है। जेमेलमन डेनियल तथा हाइट (Zemelman Daniels and Hyte-1993) के अनुसार सभी विषयों के अधिगम में नये विचारों की खोज तथा रचना निहित होती है। वे कहते हैं कि पाठ्यक्रम में इस संरचनात्मक सिद्धांत को समुचित स्थान दिया जाना चाहिए। रोजेनब्लाट (Rosenblatt, 1978) कहते हैं कि रचनात्मक कक्षा–कक्ष छात्र केन्द्रित कक्षा–कक्ष होता है। इसी सन्दर्भ में वॉस ग्लेसरफैल्ड (Voss Glaserfeld, 1992) कहते हैं कि अध्यापक को यह स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए कि छात्र पहले से कितना ज्ञान एवं समझ रखते हैं ताकि उन्हें नवीन ज्ञान प्रदान करने में सलंग्न किया जा सके।

भारतवर्ष में अभी भी परम्परागत शिक्षण विधियों का ही प्रयोग किया जाता है जैसे–व्याख्यान विधि, पाठ्य–पुस्तक विधि, प्रश्नोत्तर विधि आदि। यहाँ तक कि संरचनावाद पर शोधकार्य भी अभी कम ही हुए हैं। संक्षेप में, संरचनावाद सीखने की एक विचारधारा है जो इस मान्यता पर टिकी है कि ज्ञान कोई वस्तु नहीं है जो शिक्षक

कक्षा के दरवाजे पर पहुँचकर अपनी सीटों (Desks) पर बैठे छात्रों को आसानी से दे दें। टोमी फस्नोट (Twomey Fusnot, 1989) ने संरचनावाद के सम्बन्ध में चार सिद्धान्त बताए हैं –

1. जो हम पहले से जानते हैं अधिगम उस पर निर्भर करता है।

   (Learning, in an important way, depends on what we already know)

2. नये विचारों का उदय अपने पुराने विचारों में बदलाव एवं समाहित करने पर होता है।

   (New ideas occur as we adapt and change our old ideas)

3. अधिगम विचारों की खोज है न कि मात्र यान्त्रिक तरीके से विचारों का संग्रह।

   (Learning involves inventing ideas rather than mechanically accumulating facts.)

4. सार्थक अधिगम पुराने विचारों पर पुनः सोचने तथा नये विचारों के बारे में नवीन निष्कर्ष निकालने से होता है जो हमारे प्राचीन विचारों से मेल नहीं खाते।

   (Meaningful learning occurs through rethinking old ideas and coming to new conclusion about new ideas which conflict with our old ideas).

ड्राइवर, असोको तथा अन्य (Driver, Asoko and Others, 1994) के अनुसार, ''रचनावाद अधिगम को एक गत्यात्मक एवं सामाजिक प्रक्रिया के रूप में देखता है जिसमें अधिगमकर्त्ता अपनी पूर्व समझ एवं सामाजिक परिवेश के सन्दर्भ में अपने अनुभवों को नया अर्थ प्रदान करता है।''

संरचनावाद से संप्रत्यय को जन्म देने वाले सिद्धान्तवादियों में जो नाम प्रमुख हैं, वे हैं–जॉन ड्यूीव (John Dewey), मान्टेसरी (Montessori), पियाजे (Piaget), वाइगोत्सकी (Vigotskey)

संरचनावाद द्वारा शैक्षिक अनुभवों को स्वरूप प्रदान करना

शैक्षिक कार्य की गुणवत्ता उससे सीख पाने की योग्यता और विद्यार्थी के लिए उसकी महत्ता को प्रभावित करती है। वे अभ्यास जो बहुत सरल होते हैं, या बहुत कठिन जो बार–बार एक ही बात यांत्रिक रुप से दोहराते हैं, जो पाठ्यपुस्तक को याद करने पर आधारित होते हैं, जो बच्चे को आत्माभिव्यक्ति व प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं देते, शिक्षक के जाँच कार्य पर ही निर्भर रहते हैं वे बच्चे को आज्ञापालन करने वाली निष्क्रिय कठपुतली बना देते हैं। शिक्षार्थी अपने विचारों व विवेक को महत्व देना नहीं सीखते हैं। वे यह सीखते हैं कि ज्ञान दूसरों के द्वारा बनाया जाता है और उन्हें सिर्फ ज्ञान को ग्रहण करना चाहिए। इसीलिए अध्यापकों पर यह जिम्मेदारी आ जाती है कि जो बच्चे स्वाभाविक रुप से शिक्षा के प्रति उत्साहित नहीं लगते उन्हें वे प्रोत्साहित करें। शिक्षार्थी नियंत्रित होना स्वीकार कर लेते हैं और यह चाहने लगते हैं कि उन्हें नियंत्रण में रहना आए। यह अंततः संज्ञानात्मक आत्म–चिंतन और उस लचीलेपन के विकास के लिए हानिकारक है जो दरअसल अधिगम से विद्यार्थी को सशक्त बनाने के लिए आवश्यक है। इस शैक्षिक वातावरण में बढ़ते हुए कई विद्यार्थी आत्म–विश्वास, स्वयं को अभिव्यक्त करने और स्कूली अनुभवों का अर्थ निकालने की क्षमता खो बैठते हैं, वे बार–बार परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए उसी यांत्रिक रटन्त विद्या का सहारा लेते हैं। जबकि स्वतंत्र विचार प्रक्रिया और हल करने के विविध तरीकों को प्रोत्साहित करने वाले चुनौतीपूर्ण कार्य शिक्षार्थियों में स्वतंत्रता, रचनात्मकता और आत्मानुशासन को प्रोत्साहित करते हैं। 'क्विज' संस्कृति को बढ़ावा देने के बदले जहाँ, तत्काल सही जवाब जानना जरूरी होता है, हमें विद्यार्थियों को गहन व सार्थक अधिगम पर समय व्यतीत करने देना चाहिए।

सीखने के वे कार्य जो यह सुनिश्चित करने के लिए रचे गए हैं कि बच्चे पाठ्यपुस्तकों के अलावा अन्य स्त्रोतों से भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित होंगे, इस दर्शन को संप्रेषित करते हैं कि बच्चे खुद ही खोज करके एवं प्रमाण जुटा कर सीखते हैं एवं ज्ञान का सृजन करते हैं और अध्यापक या पाठ्यपुस्तक का ज्ञान पर प्रभुत्व नहीं होता है। बच्चे अपने खुद के अनुभवों से , घर एवं समुदाय के सदस्यों के अनुभवों से, पुस्तकालयों से और स्कूल के बाहर अन्य स्त्रोतों के ज्ञान तलाश सकते हैं। इस संदर्भ में अधिगम की दृष्टि से सांस्कृतिक विरासत स्थल बेहद महत्वपूर्ण बन जाते हैं। न केवल इतिहास बल्कि सभी विषयों के शिक्षकों को पुरात्तव महत्व के स्थलों के प्रति बच्चों में एक आदरभाव और उनकी महत्ता समझने व उनका अन्वेषण करने की इच्छा को पोषित करना चाहिए।

हाल के वर्षो में छोटी कक्षाओं में वातावरण और पाठ्यचर्या की रुपरेखा को सुधारने के प्रयास हुए हैं। जहाँ एक ओर इनको पुनः विचार करके मजबूत बनाने की जरुरत है, वहीं बड़े बच्चों के लिए ऐसे शैक्षिक अनुभवों को तैयार करने की भी जरूरत है, जो बच्चों की अवधारणाएँ समझने और अपना ज्ञान रचने में मदद कर सकें। अब हम 'तथ्य–केंद्रित ज्ञान' पर अब तक दिए जाने वाले बल में एक बदलाव देख रहे हैं, कि किसी चीज का ज्ञान का क्या अर्थ है, और जो हमने सीखा उसे उपयोग में कैसे लाएँ। शिक्षार्थी को उसके सीखने में एक सक्रिय भागीदार की तरह पहचानने की जरुरत है।

दिन–प्रतिदिन बच्चे स्कूल में अपने आसपास की दुनिया के अनुभव लेकर आते हैं– वे पेड़ जिन पर वे चढ़े फल जो उन्होंने खाए, चिड़ियाँ जिन्हें उन्होंने पसंद किया। हर बच्चा बहुत ही सक्रिय होकर दिन और रात के प्राकृतिक चक्र को देखता है, मौसम पानी, अपने आस–पास के जानवरों और पोधों को भी देखता है। जब बच्चे पहली कक्षा में प्रवेश लेते हैं तो उनके पास पहले से ही समृद्ध भाषा होती है, छोटे अंकों का आधार होता है। फिर भी हम बिरले ही उनके ज्ञान को कक्षा में सुन पाते हैं। बिरले ही हम पाठ या पढ़ाने के दौरान उनसे स्कूल के बाहर की दुनिया के बारे में बात करते हैं। उल्टे हम छपे हुए शब्दों और तस्वीरों की सहूलियत का सहारा ले लेते हैं जो प्राकृतिक संसार की बहुत ही घटिया प्रतिकृति होती है। उससे भी ज्यादा बुरा तो यह है कि आजकल कप्यूटर–आधारित सीखने के नाम पर जैविक–संसार को अनुप्राणित रेखाओं में बदल दिया है और बच्चे से उम्मीद की जाती है कि वे उन्हें कम्प्यूटर पटल पर देखें। जैविक–अजैविक का पाठ शुरू करने से पहले, अगर अध्यापिका बच्चों को पास के मैदान में सैर के लिए ले जाए और कक्षा में वापिस आकर बच्चे दस जैविक और दस अजैविक चीजों के नाम लिखें तो परिणाम विस्मयकारी होंगे। लेकिन, अक्सर बच्चों से यह अपेक्षा की जाती है कि पाठ्यपुस्तकों में दिए गए चित्रों और शब्दों की सूची या चीजों को जैविक और अजैविक की श्रेणी में विभाजित कर दें। जल–प्रदूषण के पाठ के दौरान बच्चे जल स्त्रोतों और जलाशयों का परीक्षण करें और फिर उन्हें प्रदूषण के प्रकारों से जोड़ कर देखें। यह गतिविधि स्वच्छ जल की कमी से होने वाली बीमारियों के मुद्दों को उठाने में भी सहायक होगी। जबकि हम बच्चों को प्रदूषित जल की तस्वीरें दिखाकर उस पर टिप्पणी करने को कहते हैं। बच्चों से स्थानीय पक्षियों और पेड़ों के नाम पूछने के बजाए, पाठ्यपुस्तकें उन सर्वव्यापक चीजों का नाम लेती हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे सारे संसार से संबंधित हैं, फिर भी कहीं से भी संबंधित नहीं है। कक्षा आठ के शिक्षार्थी अगर प्रकाश–संश्लेषण के पाठ के दौरान उसे अपने आस–पास के पेड़ पौधों से जोड़ेंगे, तभी यह प्रश्न उठाने की सोच पाएँगे कि ''क्रोटन का पौधा जिसकी एक भी पत्ती हरी नहीं होती, वह अपना भोजन कैसे बनाता है?'' जब स्कूल के अंदर आस–पास का जीवंत संसार चिंतन के लिए उपलब्ध होगा तभी शिक्षार्थी पर्यावरण के मुद्दों के प्रति सजग होंगे और उनके प्रति अपनी रुचि को पोषित कर पाएँगे।

सामाजिक विज्ञान कक्षा–कक्ष में संरचनावाद के आयाम

(Paradigm of Constructivism in Social Science Classroom)

रचनावाद में इस बात पर बल दिया जाता है कि शिक्षण अध्यापक केन्द्रित न होकर छात्र केन्द्रित हो। कक्षा–कक्ष में अध्यापक की भूमिका ज्ञान के प्रेषक (Transmittor) (संचारी) के स्थान पर ज्ञान को बढ़ाने (Facilitator) वाला, अन्वेषक, प्रबन्धक, ज्ञान की खोजबीन करने वाला मार्ग निर्देशक के रूप में बदल जाती है। साथ ही, छात्र की भूमिका मात्र ज्ञान के संयुक्त के स्थान पर ज्ञान निर्माता की हो जाती है। नवीन ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया के दौरान जो पूर्व अनुभवों पर आधारित होती है, छात्र प्रयोग करते हैं तथा उनका प्रारूप तैयार करते हैं, परिकल्पनाओं का सत्यापन करते हैं, निष्कर्ष निकालते हैं तथा दूसरों से अपने परिणामों एवं निष्कर्षों की तुलना करते हैं। रचनात्मकता छात्रों को पूर्ण एकादमिक स्वतंत्रता प्रदान करती है, सहयोगी अधिगम (Co-operative learning) को प्रोत्साहन करती है तथा संगी–साथियों (Peers) के विचारों एवं आदर्शों में भाग लेने को उत्साहित करती है। रचनात्मक कक्षा–कक्ष की यह एक मुख्य विचारधारा है कि अधिगम वातावरण का पूर्णरूप से विकेन्द्रीकरण (Decentralized) स्वरूप कर दिया जाए जहाँ प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान संग्रहण की प्रक्रिया में बढ़ चढ़कर भाग ले सकें।

कक्षा–कक्ष में इस प्रकार की परिस्थितियों का निर्माण किया जाए जिनमें छात्र अथवा अधिगमकर्त्ता सक्रिय रूप से भाग ले सकें अथवा उन तथ्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें जो उसे प्रदान किये जाते हैं लेकिन इस संपूर्ण प्रक्रिया में अध्यापक को आथवा ज्ञान बढ़ाने वाले (Facilitator) को महति भूमिका निभानी पड़ती हैं इस संबंध में उसे छात्रों को उन सहयोगी विधियों के प्रयोग को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। जो नये ज्ञान के निर्माण में तथा उन पर अमल करने के उद्देश्य से उन्हें इस बात का आभास करा सकें कि वे क्या कर रहे हैं तथा उनकी समझ सोच किस प्रकार परिवर्तित हो रही है। इस प्रकार की सहयोगी प्रविधियों में प्रयोग (Experiments) वास्तविक जीवन से संबंधित समस्या–समाधान (Real world problem solving) मस्तिष्क उद्देलन (brain storming) वाद–विवाद आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में अध्यापक अथवा ज्ञान को बढ़ाने वाला इस बारे में स्वयं को आश्वस्त करता है कि उसे छात्र के पूर्व संप्रत्ययों की ठीक में समझ है जिनके आधार पर वह उन्हें ठीक से दिशा निर्देश दे पायेगा तथा उन्हें उनके कार्य में सफलता प्रदान करेगा। रचनावादी अध्यापक अपने छात्रों को अनवरत रूप से यह देखने के लिए प्रोत्साहित करते रहते हैं कि नवीन ज्ञान प्राप्त करने में उनकी सक्रियता किस प्रकार सहायक सिद्ध हो रही है। स्वयं के बारे में तथा अपनी प्रविधियों के बारे में आकलन करते हुए छात्र रचनात्मक कक्षा–कक्षों में आदर्श रूप में दक्ष अधिगमकर्त्ता (expert learner) बन जाते हैं ऐसा अधिगमकर्त्ताओं को प्रभावी अधिगम के लिए सशक्त उपकरणों (tools) से परिपूर्ण कर देता है। एक सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित कक्षा–कक्ष छात्रों को यह समझाने में सफल होता है कि ठीक से कैसे सीखा जाए। How to Learn Better यह समझाने में सहायक सिद्ध होगा कि छात्र अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर किस प्रकार तथ्यों एवं समझ को विकसित करते हैं। जब वे अपने अनुभवों पर अनवरत रूप से विचार करते हैं तो उनके विचारों को बल प्रदान होता है तथा उनमें जटिलता आती है तथा वे नवीन ज्ञान को स्वीकृत करने में अपेक्षित सशक्त योग्यताओं का विकास करते हैं। इस संबंध में शिक्षक का मुख्य कार्य इस प्रकार के अधिगम को प्रोत्साहित करने तथा उसे व्यावहारिक स्वरूप (reflection) प्रदान करने का होता है। इसे एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है – **उदाहरण** (Example) – मान लीजिए सामाजिक विज्ञान की कक्षा में छात्रों का एक समूह भूगोल की किसी समस्या पर विचार–विमर्श कर रहा है। यद्यपि अध्यापक उनकी इस समस्या का हल अच्छे से जानता है फिर भी वह अपना ध्यान इस बात पर केन्द्रित रखता है कि वह छात्रों के आपस में पूछे गए प्रश्नों को लाभदायक तरीके से छात्रों की मदद में प्रयोग कर सके। वह प्रत्येक छात्र को इस बात के लिए प्रोत्साहित करता है कि वह अपने वर्तमान ज्ञान की परख समस्या के आलोक में करें तथा विचार–विमर्श में बढ़–चढ़कर हिस्सा ले। इस संबंध में

छात्र अनेक स्त्रोतों से सहायता ले सकता है जैसे– पुस्तकें वेबसाइट्स वाद–विवाद फोटो इत्यादि ताकि समस्या के सन्दर्भ में कुछ विचार प्राप्त किये जा सकें। इस प्रक्रिया के दौरान जब कोई छात्र सही या सटीक संप्रत्यय की जानकारी देता है तो शिक्षक उसे तुरंत झपट लेता है (Seize) तथा समूह को बताता है कि वह समस्या के हल तक पहुँचने का सही रास्ता हो सकता है। फिर वे, अपने विचारों को सही रूप प्रदान करने के लिए उपयुक्त प्रारूप तैयार कर प्रयोग करते हैं। इसके बाद, अध्यापक व छात्र विचार करते हैं कि उसने क्या सीखा है तथा उनके प्रेक्षणों (observations) तथा प्रयोगों ने संबंधित प्रत्यय को समझने में उनकी ठीक से मदद की है अथवा नहीं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रचनावाद का प्रतिमान ज्ञान की प्राप्ति में अध्यापकों एवं अधिगमकर्त्ताओं के पारस्परिक सहयोग पर विशेष बल देता है।

वस्तुतः रचनावाद छात्र को 'पहिये की पुनः खोज' (reinvent the wheel) के लिए किया जाता है। रचनावद छात्र की आन्तरिक जिज्ञासा को उजागर करता है तथा इस बात पर चोट (triggers) करता है कि वह इस संसार को ठीक से समझे कि वह किस प्रकार कार्य करता है। छात्र पहिये की पुनः खोज नहीं करता बल्कि वह यह समझने का प्रयास करता है कि यह कैसे चलता है तथा किस प्रकार कार्य करता है। फिर वे अपने वर्तमान ज्ञान व वास्तविक दुनिया के अनुभवों का प्रयोग परिकल्पनाओं के निर्माण, सिद्धांतों के परीक्षण एवं अन्ततः अपने परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकालने में करते हैं। यह देखने का सबसे उत्तम तरीका कि रचनावाद कक्षा–कक्ष में क्या अर्थ रखता है, यह है कि आप दूसरों को कार्य करते देखें, दूसरों के साथ बातचीत करें तथा स्वयं पर ही बहुत सी बातों को अपनाएँ।

संरचनात्मक कक्षा–कक्ष में सामाजिक विज्ञान–अधिगम का स्वरूप

(Social Science Teaching Learning Shape in Constructive Classroom)

रंचनात्मक कक्षा–कक्ष में सामाजिक विज्ञान शिक्षण–अधिगम के स्वरूप को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है –

1. रचनात्मक (Constructed) – छात्र मात्र कोरी स्लेट नहीं है जिस पर ज्ञान को उकेरा (etched) जा सके। वे अधिगम परिस्थितियों का सामना उनमें पहले से ही उपस्थित ज्ञान, समझ एवं विचारों के आधार पर करते हैं। यह पूर्व ज्ञान एक प्रकार से नये ज्ञान के सृजन में मूल–सामग्री (raw material) का काम करता है।

2. सक्रिय (Active) – छात्र वह व्यक्ति है जो नये ज्ञान की खोज स्वयं के लिए ही करता है। अध्यापक का कार्य मात्र उसका दिशा–निर्देश प्रदान करना होता है अथवा उनके विचारों में संशोधन तथा सुझाव देना। वह छात्र को प्रयोग करने, प्रश्न पूछने तथा कुछ बेकार पड़ी निर्जीव चीजों को सक्रिय बनाने के लिए उत्साहित करता है। अधिगम क्रियाओं में छात्र की पूर्णरूप से संलिप्तता (full participation) अनिवार्य हैं अधिगम प्रक्रिया का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वह अपने कार्य के बारे में दूसरों से चर्चा करता है तथा विस्तार से प्रकाश डालता हैं साथ ही छात्र के लक्ष्य एवं मूल्यांकन साधनों का भी निर्धारण करता है।

3. प्रतिबिम्बित (Reflective) – छात्र अपनी अधिगम प्रक्रिया को स्वयं नियंत्रित करते हैं तथा वे अपना रास्ता स्वयं के अनुभवों के आधार पर करते हैं। यह प्रक्रिया उन्हें स्व–अधिगम में दक्ष बनाती है। इस संदर्भ में अध्यापक उनकी सहायता सही परिस्थितियों का निर्माण करके करता है जहाँ वे खुलकर विचार–विमर्श कर सकें–अकेले में या समूह में साथ ही, अध्यापक को उन क्रियाओं का भी आयोजन करना चाहिए जिनमें छात्रों के पूर्व ज्ञान एवं अनुभवों की अभिव्यक्ति हो सके। वस्तुतः यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि क्या सीखा गया तथा किस प्रकार सीखा गया।

4.सहयोगी (Collaborative) – रचानात्मक कक्षा–कक्ष छात्रों के मध्य आपसी सहयोग पर अत्यधिक निर्भर करता है। इसके अनेक कारण हैं कि सहयोग अधिगम में क्यों योगदान देता है। रचनावाद में इसका सबसे प्रमुख कारण यह है कि छात्र स्वयं से ही नहीं सीखते बल्कि वे अपने संगी–साथियों से भी बहुत कुछ सीखते हैं। जब छात्र अधिगम प्रक्रिया के अंतर्गत साथ–साथ विचार–विमर्श करते हैं तब वे एक दूसरे से अनेक प्रकार की प्रविधियों एवं विधियों को अपनाने में समर्थ होते हैं।

5.खोज–आधारित (Inquiry Based) – रचनात्मक कक्षा–कक्ष में सबसे मुख्य क्रिया समस्या समाधान है। छात्र खोज–विधि का प्रयोग प्रश्न पूछने तथा प्रकरण निकालने में करते हैं तथा उनके उत्तर एवं हल खोजने में अनेक साधनों का प्रयोग करते हैं। जैसे–जैसे छात्र प्रकरण का विकास करता है वह किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करता है। प्रकरण के विकास के साथ–साथ निष्कर्षों की पुष्टि में भी मदद मिलती है। साथ ही प्रश्नों की बाढ़ और प्रश्नों को जन्म देती चली जाती है।

6. विकसित करना (Evolving) – छात्र विचार रखते हैं कि जिन्हें वे बाद में महसूस कर सकते हैं कि वे विचार वैध नहीं हैं, (invalid) सही नहीं हैं, अपर्याप्त हैं जिनके आधार पर नवीन ज्ञान की व्याख्या नहीं की जा सकती। ये विचार ज्ञान के एकीकरण हेतु अस्थायी सोपान माने जा सकते हैं। रचनात्मक शिक्षण छात्र के वर्तमान संप्रत्ययों को आधार बनाकर ही आगे की रणनीति तैयार करती है। जब कोई छात्र नई जानकारी प्राप्त करता है तो रचनात्मक मॉडल के अनुसार वह इस ज्ञान की तुलना अपने पूर्व ज्ञान से करता है और इस संबंध में तीन बातें सामने आ सकती हैं –

- नवीन ज्ञान पुराने से अच्छी तरह मेल खा जाता है इसलिए छात्र इसे अपने ज्ञान में सम्मिलित कर लेते हैं।(Consonant)
- नवीन ज्ञान पुराने ज्ञान से मेल नहीं खाता। अतः छात्र को अपने पूर्व ज्ञान में परिवर्तन करना होता है। ताकि इसे नवीन ज्ञान से जोड़ा जा सके। (Dissonant)
- नवीन ज्ञान पूर्व ज्ञान से मेल नहीं खाता। इसलिये इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता (Ignored)।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण शास्त्र में संरचनावाद की उपयोगिता

(Utility of Constructivism in Social Science Pedagogy)

संरचनावाद की सामाजिक विज्ञान में अधिगम में महत्वपूर्ण उपयोगिता है जिसे निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है –

1. निष्क्रिय स्त्रोता के स्थान पर जब छात्र सक्रिय रूप से अधिगम प्रक्रिया में जुड़ता है तो वह अधिक मात्रा में सीखने के साथ–साथ उसमें आनन्द भी लेता है।
2. शिक्षा तभी अधिक सार्थक मानी जाती है जब वह चिन्तन एवं समझ पर केन्द्रित हो न कि मात्र स्मरण (rote-memorization) या रटने पर बल दे। संरचनावाद इन दोनों बातों पर ध्यान देता है।
3. संरचनात्मक अधिगम आसानी से दूसरी अधिगम परिस्थितियों में हस्तांतरित (transfer) किया जा सकता है।
4. छात्र जो सीखता है संरचनावाद उस पर छात्र को स्वामित्व (Ownership) प्रदान करता है क्योंकि इस प्रकार के अधिगम छात्र के स्वयं के प्रश्नों एवं जिज्ञासाओं (Explorations) पर आधारित होता है।

5. अधिगम क्रियाओं को सही तरीक एवं वास्तविक संसार के संदर्भ में जोड़ने से संरचनावाद छात्रों को इन क्रियाओं में संलग्न रहने तथा प्रोत्साहित करने में सहायक होता है।

6. विचारों के आदान–प्रदान पर आधारित कक्षा–वातावरण में रचनावाद छात्रों में सामाजिक एवं संचार कौशलों का विकास करता है।

7. साथ ही संरचनावाद निम्न तीन मान्यताओं पर आधारित होने के कारण छात्र को सहजता से ज्ञान रचना में सहायता करता है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र में संरचनावाद की आलोचनात्मक पृष्ठभूमि

(Critical Perspectives of Constructivsm in Soical Science Pedagogy)

संरचनावाद की सामाजिक विज्ञान अधिगम में जहाँ महत्वपूर्ण उपयोगिता है वही प्रमुख मनोवैज्ञानिकों ने इसकी आलोचना भी की है। जो कि निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. आलोचनाकार कहते हैं कि संरचनावाद का यह सिद्धान्त सुविधा सम्पन्न परिवारों अथवा संभ्रात वर्ग के बच्चों के लिए अधिक उपयोगी है जो अच्छे शिक्षक, अच्छे माँ–बाप व समृद्ध घरेलू वातावरण पाने में भाग्यशाली होते हैं।

2. सामाजिक रचनावाद, संरचनावाद का एक मुख्य प्रकार है जिसका आधार 'समूह चिन्तन' है। आलोचकों ने सामाजिक रचनावाद की यह कहकर आलोचना की है कि समूह वार्ता में कुछ ही छात्र सम्पूर्ण कक्षा पर छाये रहते हैं। शेष छात्रों को उनके द्वारा लिए गए निर्णयों को बेमन में स्वीकार करना पड़ता है।

3. संरचनावाद की मूल्यांकन के संदर्भ में भी आलोचना की गई है। छात्र मूल्यांकन के संदर्भ में संरचनावाद औपचारिक परीक्षणों एवं बाहरी मूल्यांकन तरीकों के महत्व को स्वीकार नहीं करता जिससे छात्र प्रगति का सही–सही आकलन नहीं हो पाता।

संरचनावाद की उपर्युक्त तीन आधारों पर आलोचना की गई है। फिर भी, उपर्युक्त आलोचनाओं के चलते रचनावाद का शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में अपना एक विशेष स्थान है जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। अध्यापकों को चाहिए कि वे रचनावाद को शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में एक नवाचार के रूप में अपनाकर अपने शिक्षण को और अधिक प्रभावी बनाने का प्रयास करें।

सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र में अन्तर्विषयक उपागम

(Interdisciplinary Approach in Social Science Pedagogy)

सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र में अन्तर्विषयक उपागम की महत्वपूर्ण भूमिका है। अन्तर्विषयक उपागम में एक शिक्षक की क्षमता और कार्य–कुशलता का अनुमान उसके शिक्षण की स्थिति प्रभावपूर्णता के सम्बन्ध में लगाया जा सकता है और उसका शिक्षण कितना प्रभावपूर्ण है, इसका वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन उसके कक्षा–व्यवहार अथवा विद्यार्थियों के साथ होने वाली अन्तःक्रिया के माध्यम से वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन उसके कक्षा–व्यवहार अथवा विद्यार्थियों के साथ होने वाली अन्तःक्रिया के माध्यम से किया जाता है। इस प्रकार से अध्यापक कक्षा–व्यवहार अथवा कक्षा अन्तःक्रिया के सुव्यवस्थित अधिगम के रूप में जो कुछ भी होता है, उसका विश्वसनीय मूल्यांकन करने में सहायता मिलती है। कक्षा–व्यवहार और कक्षा अन्तःक्रिया का इस प्रकार का विश्लेषण ही अन्तःक्रिया विश्लेषण के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार अन्तःक्रिया उपागम से अभिप्राय उस तकनीकी से है जिसके अन्तर्गत

कक्षा–कक्ष में घटने वाली घटनाओं का वस्तुनिष्ठ और व्यवस्थित निरीक्षण करने की व्यवस्था होती है और जिसे अध्यापक के कक्षा व्यवहार और कक्षा–अंक में चल रही प्रक्रिया का समुचित अध्ययन करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसके द्वारा एक अध्यापक को सामाजिक विज्ञान शिक्षण को अधिक प्रभावशाली और उदेश्यपूर्ण बनाने हेतु अपने व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाने और अपने विद्यार्थियों के साथ होने वाली अन्तःक्रिया में आवश्यक सुध ाार करने में पूरी–पूरी सहायता मिलती है। यह अन्तः क्रिया उपागम प्रणाली में आवश्यक रूप में एनकोडिंग (Encoding) और डिकोडिंग (Decoding) दो प्रकार की क्रियाओं का समावेश होता है। एनकोडिंग के द्वारा कक्षा की घटनाओं के सार्थक ढंग से अवलेखन (Recording) में सहायता मिलती है, जबकि डिकोडिग द्वारा अभिलिखत सूचनाओं को व्यवस्थित कर अच्छी तरह प्रदर्शित करने और फिर परिणामों को विश्लेषण करने का कार्य किया जाता है ताकि शिक्षक व्यवहार और कक्षा अन्तः क्रिया के प्रारूप का समुचित अध्ययन और विश्लेषण किया जा सके।

अन्तर्विषयक उपागम एक ऐसे प्रमाणित निरीक्षण साधन और विश्लेषण तकनीकी के रूप में कार्य करता है जिसके द्वारा शिक्षक व्यवहार और कक्षा अन्तःक्रिया के प्रारूप का समुचित निरीक्षण किया जा सके। इस उपागम के माध्यम से विभिन्न कक्षा–कक्ष परिस्थितियों को पहचान कर उनके समाधान एवं सुधार हेतु प्रयास किया जाता है। साथ ही साथ विषय तथ्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र में समन्वित/एकीकृत उपागम

(Integrated Approach in Pedagogy of Social Science)

एकीकृत पाठ्यक्रम से तात्पर्य उस पाठ्यक्रम से है, जिसमें उसके विभिन्न विषय एक–दूसरे से इस प्रकार संबंधित होते हैं कि उनके बीच कोई अवरोध नहीं होता, बल्कि उनमें एकता होती है। इस प्रकार पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों के ज्ञान को विभिन्न खण्डों में प्रस्तुत न करके, सब विषय मिलकर ज्ञान को एक इकाई के रूप में प्रस्तुत करते हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि **'ज्ञान एक है'।** इस दृष्टि से पाठ्यक्रम के सभी विषय ज्ञान रूपी इकाई के विभिन्न अंग हैं। पठन–पाठन की सुविधा तथा कुछ अन्य व्यावहारिकताओं के कारण शिक्षा के पाठ्यक्रम को विभिन्न विषयों में विभक्त कर दिया गया है, किन्तु इस विभाजन का यह अर्थ नहीं है कि बालकों को विभिन्न विषयों को अलग–अलग ज्ञान कराया जाए।

पाठ्यवस्तु के विभिन्न अंशों को समग्र रूप में एकत्रित करने तथा निकट लाने की प्रक्रिया है। शिक्षा के इस एकीकृत रूप में इस प्रकार के परिवर्तन किये जाएँ कि यह व्यक्तियों के नवीनतम सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को पूरा कर सके और सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक परिवर्तन में सशक्त माध्यम बन सके।

यह एक अमेरिकन प्रत्यय है। सर्वप्रथम हमारे देश में कोठारी आयोग (1966) ने इस प्रत्यय का उल्लेख किया था। आयोग ने अपव्यय व अवरोधन की समस्या को दूर करने के लिए इस उपागम का प्रयोग करने पर बल दिया। इसमें अग्रलिखित बातों पर बल दिया जाता गया है –

1. शिक्षा में ज्ञान केवल पुस्तकों तक ही सीमित है। अतः छात्रों को स्वयं अनुभव के आधार पर सीखने के लिए स्वतन्त्र रूप से प्रेरित करना चाहिए।
2. ज्ञान को प्राप्त करने में केवल विषयों की ही शिक्षा न देकर व्यावहारिक पक्ष पर बल देना चाहिए।
3. छात्र को रूचि तथा अनुभव के आधार पर सीखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

हेन्डरसन ने एकीकृत पाठ्यक्रम की परिभाषा इस प्रकार की हैं—''एकीकृत पाठ्यक्रम वह पाठ्यक्रम है, जिसमें विषयों के बीच कोई अवरोध, रूकावट अथवा दीवार नहीं होती है।''

हेन्डरसन के अनुसार, इस प्रकार पाठ्यक्रम उन अनुमवों को देता है जिन्हें एकीकरण की प्रक्रिया के लिए सुविधाजनक समझा जाता है तथा जिससे बालक उस पाठ्यवस्तु को सीखते हैं जो अनुभवों को समझने में एवं उनके पुनर्निर्माण में सहायक होती है। इस प्रकार का अनुभव—प्रधान पाठ्यक्रम विषय को अलग—अलग रखने तथा उनको शीर्षकों में बाँटने का अन्त करता है एवं ऐसे विषयों को स्थान देता है जो बालक की रूचि के केन्द्र होते हैं।

सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र में समन्वित/एकीकृत उपागम की व्यवस्था

(Organization of Integrated Approach in Social Pedagogy)

समन्वित या एकीकृत उपागम द्वारा सामाजिक अध्ययन मानकर शिक्षा प्रदान की जाती है। इस उपागम की व्यवस्था में सामाजिक अध्ययन सम्पूर्ण अविभक्त इकाई के रूप में प्रदान किया जाता है। अतः इनकी भिन्न—भिन्न इकाइयाँ नहीं होती । इस उपागम की व्यवस्था में निम्नलिखित तथ्यों पर बल दिया जाता है —

1. पाठ्यक्रम को विभिन्न छोटी—छोटी इकाइयों में क्रमबद्ध रूप से विभाजित कर लिया जाता है।
2. विषय—वस्तु को सरल से कठिन की ओर संगठित किया जाता है।
3. ज्ञान—प्राप्ति के लिए छात्र को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है।
4. छात्र अपनी रूचि, सामर्थ्य तथा योग्यता के अनुरूप इन इकाइयों का अपनी गति के अनुसार अध्ययन करता है।
5. एक इकाई का अध्ययन समाप्त करने पर दूसरी इकाई का अध्ययन आरम्भ किया जाता है और उन्हें पूरा करने में समय का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता।
6. प्रतिभावान छात्र अपनी रफ्तार से कम समय में अधिकतम ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।
7. मन्दबुद्धि एवं पिछड़े छात्र भी अपनी सीखने की रफ्तार से अध्ययन करके आगे बढ़ते जाते हैं।

अतः स्पष्ट है कि समन्वित या एकीकृत उपागम के प्रयोग से विभिन्न समस्याओं का स्वयं निराकरण हो जाएगा। इसके साथ ही शिक्षण प्रभावशाली व बालकों की रूचि के अनुरूप हो सकेगा।

सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र में समन्वित या एकीकृत उपागम की विशेषताएँ

(Characteristics of Integrated Approach in Social Science Pedagogy)

सामाजिक विज्ञान शिक्षण शास्त्र में समन्वित या एकीकृत उपागम की प्रमुख निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

1. इस पाठ्यक्रम में ज्ञान को समग्र रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
2. इसके माध्यम से छात्र विभिन्न विषयों का ज्ञान एक साथ प्राप्त करते हैं।
3. यह पाठ्यक्रम अनुभव केन्द्रित होता है।
4. इससे बालकों को जीवनोपयोगी शिक्षा मिलती है।
5. इसमें छात्रों की रूचियों को महत्व दिया जाता है।
6. इस पाठ्यक्रम से शिक्षकों का उत्तरदायित्व एवं कार्य—भार बढ़ जाता है।

7. इस पाठ्यक्रम की सफलता के लिए शिक्षक को पर्याप्त एवं व्यापक अध्ययन की आवश्यकता होती है।
8. इसमें छात्रों के पूर्व–ज्ञान से नवीन ज्ञान को संबंधित करने में आसानी होती है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र में बाल–केन्द्रित उपागम

(Child-Centred Approach in Social Science pedagogy)

सामान्य–शिक्षा जगत् में बाल–केन्द्रित शिक्षा का आशय ऐसी शिक्षा से है जिसमें बच्चों को सामान्य रहन–सहन और खान–पान की शिक्षा के साथ–साथ अच्छे–बुरे के विषय में भी जानकारी दी जाती है अर्थात् उसके द्वारा जो व्यवहार किया जा रहा है वह किस स्तर तक सही है और किस स्तर तक गलत है ? इन सबका मापदण्ड करते हुए जब बालक को कुछ विशिष्ट सिखाया जाता हो और उसका ध्यान आकर्षित करके उसे निर्देशित किया जाकर एक ज्ञान की श्रृंखला शुरू की जाएँ तो यही उसकी 'बाल–केन्द्रित शिक्षा' होती है।

बाल–केन्द्रित शिक्षा वह शिक्षा होती है जिसमें छात्र–शिक्षक सबंध मैत्रीपूर्ण रहते हैं तथा इस शिक्षा में दृश्य–श्रव्य (Audio-Visual Aids) साधनों का उपयोग होता है। बाल–केन्द्रित शिक्षा का आशय ऐसी शिक्षा से है जिसमें समस्त शैक्षिक गतिविधियों का केन्द्र बालक होता है और इसमें शिक्षा बालक के लिए होती है न कि बालक शिक्षा के लिए।

बाल–केन्द्रित शिक्षा की धारणा के अनुसार विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर पाठ्यक्रम बालकों की आवश्यकताओं, हितों, प्रवृत्तियों, क्षमताओं, सामाजिक और आर्थिक पर्यावरण, सामाजिक जीवन से सामंजस्य स्थापित करने आदि मुख्य बातों पर आधारित होता है जिसके फलस्वरूप बालक का स्वाभाविक रूप से उपयुक्त पर्यावरण में सर्वांगीण विकास होता है उसे अत्यन्त आत्मीय, सौहार्द्रपूर्ण, लोकतांत्रिक परिस्थितियों में अपनी आवश्यक दक्षताएँ, ज्ञान दृष्टिकोण और मूल्य प्राप्त करने के पर्याप्त अवसर मिलते हैं। बालक अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर समस्याओं का हल निकालकर आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वासी और स्वावलम्बी बनता है।

उसके शिक्षण और जीवन के अनुभवों के मध्य कोई खाई नहीं वरन् निरन्तरता तथा क्रमबद्धता बनी रहती है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण में बाल–केन्द्रित उपागम की उपयोगिता

(Utility of Child-Contred Approach in Pedagogy of Social Science)

सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र में बाल–केन्द्रित उपागम की उपयोगिता के निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है –

1. हान तथा मैकलीन (Hahn and Maclean) ने कहा है कि '' व्यक्तियों पर जबरदस्ती परामर्श नहीं थोपना चाहिए।'' इस संबंध में बाल–केन्द्रित शिक्षा का महत्व और भी बढ़ जाता है, क्योंकि बालकों को इन्हीं निर्देशों के अनुरूप शिक्षा दी जाती है।
2. बाल–केन्द्रित शिक्षा का परिवार ही एकमात्र आधार नहीं होता है बलिक प्राथमिक विद्यालय भी उनकी शिक्षा के आधार पर होते हैं।
3. भौतिकवाद की प्रवृत्ति के कारण अधिकाधिक धन कमाने की होड़ लगी हुई है। इसलिए विभिन्न बाल गृहों से अभिभावक अपने बच्चों को छोड़कर सभी सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास करते हैं, क्योंकि जो सुविधाएँ बाल–गृहों से उपलब्ध होती हैं वे सुविधाएँ बाल–गृहों से उपलब्ध होती हैं वे सुविधाएँ

घर पर उपलब्ध नहीं हो सकती है। 4. हम विभिन्न बालकों को विद्यालयों में जाते देखते हैं और वे अपने एक वर्ग तथा समान आयु के छात्रों के साथ विद्यालय पहुँचते हैं।

5. बाल–केन्द्रित शिक्षा के माध्यम से ही हम अच्छे–बुरे छात्र अपने परिवार और समाज में बनाते हैं।
6. बाल–केन्द्रित शिक्षा में बालक को शुरू में ही उसके परिवार और समाज के वातावरण के अनुसार शिक्षा मिलती है और उसी के अनुसार उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है।
7. जिस प्रकार के परिवार में बालक का लालन–पालन होता है उसी के अनुरूप वह गुण अर्जित करता है।
8. आधारभूत शिक्षा–प्रयोगों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि बाल–केन्द्रित शिक्षा अति महत्वपूर्ण शिक्षा है।
9. बाल–केन्द्रित शिक्षा पूर्णतः परामर्शदाता के कर्त्तव्यों की स्पष्ट भूमिका अदा करती है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र में बाल–केन्द्रित उपागम के गुण

(Merits of Child-Contred Approach in Pedagogy of Social Science)

सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र में बाल–केन्द्रित उपागम के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं –

1. इसमें सामूहिक परिचर्चा कार्यक्रम आयोजित होते रहते हैं जिससे बालकों में परस्पर विभिन्न शब्दों का आदान–प्रदान होता है।
2. बाल–केन्द्रित शिक्षा में एक महत्वपूर्ण विशेषता यह पायी जाती है कि इसमें एक साथ विभिन्न शब्दों का आदान–प्रदान होता है। बालकों को नैतिक ज्ञान भी दिया जा सकता है।
3. इसके अन्तर्गत बालक का शारीरिक, मानसिक और अन्य विकास छिपा रहता है।
4. बालक को शारीरिक और मानसिक तौर पर सही दिशा की ओर निर्देशित करना भी बाल–केन्द्रित शिक्षा का ही एक महत्वपूर्ण अंग होता है।
5. बाल–केन्द्रित शिक्षा शैक्षणिक कार्य को सुचारू रूप से संचालित करने में बाल–केन्द्रित शिक्षा अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसमें बहुत–सी बातें तो बालक स्वतः ही सीख जाता है।
6. बाल–केन्द्रित शिक्षा एक आधारभूत शिक्षा है जिसके माध्यम से बालक को हम शुरूआती तौर पर जिधर चाहे उधर ही निर्देशित कर सकते हैं ।
7. बाल–केन्द्रित शिक्षा की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें बालक के चहुँमुखी विकास पर बल दिया जाता है अर्थात् बालक ऐसे गुण सीखता है जो दूसरों के लिए ज्ञानवर्द्धक साबित हो सके तथा सभी लोग बालक के क्रियाकलापों की चर्चा के दौरान उसकी प्रशंसा करे।
8. इससे यह गुण विद्यमान रहता है कि बालक ने क्या ग्रहण किया है और उसे किस प्रकार क्रियान्वित किया जा रहा है।
9. बाल–केन्द्रित शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों की स्वतः ही पूर्ति हो जाती है।
10. इसमें बालक को उसकी अभिरूचि, बुद्धि और स्वभाव के अनुसार ही शिक्षा दी जाती है।
11. बाल–केन्द्रित शिक्षा में कोई विशेष संसाधन जुटाने की जरूरत नहीं पड़ती है।

अभ्यास के प्रश्न

1. अधिगमकर्त्ता की प्रकृति को समझाइए।
2. अधिगम को प्रभावित करने वाले शिक्षक से संबंधित कारकों को लिखिए।
3. शिक्षण के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत का उल्लेख कीजिए।
4. संरचनात्मक कक्षा–कक्ष में सामाजिक विज्ञान अधिगम को स्वरूप की विवेचना कीजिए।
5. सामाजिक विज्ञान शिक्षण में संरचनावाद की उपयोगिता बताइए।
6. सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र में व्यवहारवाद उपागम का क्या महत्व है? विस्तार से वर्णन कीजिए।
7. सामाजिक विज्ञान शिक्षणशास्त्र में संरचनावाद उपागम की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
8. छत्तीसगढ़ के छोटे–बड़े उद्योगों का छत्तीसगढ़ के जनजीवन पर प्रभाव का उल्लेख कीजिए।
9. प्रारंभिक स्तर पर मानचित्र अध्ययन–अध्यापन की योजना बनाइए।

****

इकाई – 7

सामाजिक विज्ञान की शिक्षण रणनीतियाँ

आधुनिक शिक्षणशास्त्र इस तथ्य पर बल देता है कि सम्पूर्ण अनुदेशन (Instruction) प्राकृतिक क्रम में श्रेणीबद्ध एवं व्यवस्थित किया जाना चाहिए। जान.ए. कामेनियस के अनुसार शिक्षक को अपना अध्यापन कार्य करते समय छात्रों की ज्ञानेन्द्रियों को जागृत करके उनमें ज्ञान एवं समझदारी को विकसित करना चाहिए। रूसो ने अपने ग्रंथ 'एमील' (Emile) में प्रकृति, मानव एवं वस्तुओं को शिक्षक माना है एवं इसी के अनुरूप सीखने के विभिन्न सिद्धान्तों को प्रतिपादन किया है जैसे क्रियाशीलता या करके सीखने का सिद्धांत (Learning by doing) प्रयोग द्वारा सीखना Learning by experimentation निरीक्षण द्वारा सीखना (Learning by observation).

बाद में पेस्टालाजी एवं उनके शिष्य फ्रोबेल एवं हरबाई ने शिक्षण शास्त्र को आगे बढ़ाते हुए क्रमशः किण्डर गार्टन पद्धति अनुदेशन पद्धति को जन्म दिया।

मैडम मेरिया माण्टेसरी ने शिक्षण के स्थान पर सीखने (अधिगम) पर बल दिया। उन्होंने स्वशिक्षा द्वारा सीखने पर बल दिया। फ्रोबेल ने खेल द्वारा सीखने को पद्धति का आधार बनाया। आधुनिक युग में जान ड्यूवी ने अनुभव द्वारा सीखने के सिद्धान्त को शिक्षण पद्धति का आधार बनाया।

सामाजिक विज्ञान की शिक्षण विधियाँ

वर्तमान में प्रचलित सामाजिक विज्ञान की विभिन्न शिक्षण पद्वतियों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है –

(अ) परम्परागत विधियाँ – इसके अन्तर्गत पाठ्यपुस्तक पद्धति को रखा जाता है। हम पाठ्य–पुस्तक को परम्परागत रूप से एक साधन के रूप में प्रयोग करते चले आ रहे हैं।

(ब) शिक्षक केन्द्रित विधियाँ – इसके अन्तर्गत व्याख्यान पद्धति, कहानी कथन पद्धति आदि को रखा जाता है। इनमें शिक्षक की भूमिका प्रमुख होती है।

(स) छात्र, केन्द्रित विधियाँ – इन विधियों में बालक की भूमिका प्रमुख होती हैं। और शिक्षक एक मार्गदर्शक एवं वातावरण के निर्माता के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करता है। वस्तुतः इनमें शिक्षक एक सुविधा प्रदान करने वाले के रूप में कार्य करता है। इसमें बालक सक्रिय होकर सीखता है। आधुनिक शिक्षा बालक को शिक्षण एवं सीखने की प्रक्रिया में प्रमुख स्थान प्रदान करने का समर्थन करती है। इस कारण छात्र केन्द्रित पद्धतियों को आधुनिक विधियाँ की भी संज्ञा दी जा सकती है।

सामाजिक विज्ञान की विभिन्न शिक्षण पद्धतियों में यहाँ संक्षेप में छात्र केन्द्रित विधियों को समझने का प्रयास करते हैं –इन विधियों के अन्तर्गत हम यहाँ कुछ ही विधियों का वर्णन करेंगे। छात्र केन्द्रित विधियों में शिक्षक मात्र सहयोगी के रूप में कार्य करते हैं। यह विधि बच्चों में सामाजिकता तथा सहयोगी दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक है।

विचार विमर्श एवं विवेचन

(Lecture Cum Discussion Method)

इस विधि में शिक्षक पाठ्य विषय पर व्याख्यान देता है साथ वह पाठ्य वस्तु को समस्यात्मक तरीके से प्रस्तुत करता है। इससे छात्र मानसिक रूप से सचेत हो जाता है और पाठ्यवस्तु पर ध्यान केन्द्रित कर पाता है। इस विधि में शिक्षक पाठ्यवस्तु को प्रस्तुत करने के पश्चात छात्रों से प्रश्नों के माध्यम से उसकी व्याख्या करता है। इस विधि में शिक्षक के मार्गदर्शन में छात्रों द्वारा पाठ्यवस्तु पर विचार विमर्श किया जाता है, साथ ही छात्र विचार विमर्श करके निष्कर्ष निकालने में समर्थ होते हैं। यह विधि व्याख्यान की सीमाओं या दोषों को दूर करने में सहायक होती है। इस विधि में शिक्षक तथा छात्र परस्परसहयोगी के रूप में कार्य करते हैं। यह विधि सामाजिकता तथा सहयोगी दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक है। यह छात्रों की चिन्तन तथा तर्क–शक्तियों को विकसित करने में सहायक है।

अन्वेषण व्यूह रचना

(Heuristic Strategy)

समाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान शिक्षण में अन्वेषण व्यूह रचना उपयोग किया जा सकता है क्योंकि किसी भी विषय को सिखाने की प्रक्रिया ही अन्वेषण (Heuristic) कहलाती है। इस प्रकार किसी विषय के नवीन सिद्धान्तों एवं तथ्यों की खोज स्वयं छात्रों द्वारा की जाती है। इसी आधार पर सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान के शिक्षक को अपने शिक्षण की व्यूह रचना इस प्रकार तैयार करनी होती है कि छात्र स्वयं खोज या अन्वेषण के द्वारा सीखें और शिक्षक की भूमिका जिसमें केवल पथ–प्रदर्शन के रूप में होती है। **एच0ई0 आर्मस्ट्रांग** के अनुसार–''अन्वेषण व्यूह रचना शिक्षण के लिए प्रयुक्त एक ऐसी व्यूह रचना है जिसमें हम छात्रों को यथासम्भव एक अनुसंधानकर्त्ता या खोजी स्थिति में रखना चाहते है अर्थात् अन्वेषण व्यूह रचना वह व्यूह रचना है जिसमें केवल वस्तुओं के विषय में कहे जाने के बजाय उनकी खोज को आवश्यक माना जाता है। (The Heuristic Stretegy Which Involves Their Finding out instead of bing merely told about thing) इस अन्वेषण व्यूह रचना में छात्रों के सम्मुख समस्या को रखा जाता है और उन्हें व्यक्तिगत रूप से सोचने–समझने तथा कार्य करने की स्वतन्त्रता दे दी जाती है। छात्र अपने–अपने विचार के अनुसार सोचते–समझते हैं और आपस में वाद–विवाद करते हैं एवं हल निकालते हैं।

अन्वेषण व्यूह रचना के गुण

(Merits of Heuristic Strategy)

अन्वेषण व्यूह रचना के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं –

1. अन्वेषण व्यूह रचना के प्रयोग से छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होता है।
2. अन्वेषण व्यूह रचना छात्रों को क्रियाशील एवं आत्मनिर्भर बनाने में सहायक होती है।
3. अन्वेषण व्यूह रचना के द्वारा छात्रों को वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है।
4. अन्वेषण व्यूह रचना के द्वारा छात्रों के चिन्तन एवं अवबोध में अभिवृद्धि होती है।
5. अन्वेषण (Heuristic) व्यूह रचना के द्वारा छात्रों को स्थायी ज्ञान की प्राप्ती होती है।
6. अन्वेषण व्यूह रचना के द्वारा सभी छात्र शिक्षक में व्यक्गित रूप से सम्पर्क में रहते हैं।

अन्वेषण व्यूह रचना के दोष

(Demerits of Heuristic Strategy)

अन्वेषण व्यूह रचना के जहाँ एक ओर गुण है वहीं इसके दोष भी हैं, जो कि निम्नालिखित हैं –

1. इस अन्वेषण व्यूह रचना का प्रयोग प्राथमिक (निम्न) स्तर पर नहीं किया जा सकता है।
2. अन्वेषण व्यूह के अनुरूप कक्षा–शिक्षण में कठिनाई आती है।
3. अन्वेषण व्यूह रचना में शिक्षक कम रूचि लेते हैं।
4. अन्वेषण व्यूह रचना के द्वारा पाठ्यक्रम को सीखने में अधिक समय की आवश्यकता होती है।
5. अन्वेषण व्यूह रचना का प्रयोग कम छात्रों की संख्या पर किया जा सकता है।
6. अन्वेषण व्यूह रचना अधिक खर्चीली व्यूह रचना है।
7. सभी शिक्षक अन्वेषण व्यूह रचना का प्रयोग नहीं कर पाते हैं।

योजना व्यूह रचना

(Project Stategy)

सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान शिक्षण में योजना व्यूह रचना (Project Strategy) का विशेष महत्त्व है। योजना व्यूह प्रजातान्त्रिक शिक्षण व्यूह रचना के अन्तर्गत एक नवीन शिक्षण नीति है। योजना व्यूह रचना का विकास शिक्षा की सामाजिक प्रवृत्ति के परिणामस्परूप हुआ है। योजना व्यूह रचना के जन्मदाता जॉन डीवी (Jhon Dewey) के शिष्य किलपैट्रिक को माना जाता है।

किलपैट्रिक के अनुसार –"योजना वह उद्वेश्यपूर्ण कार्य है जिसे लग्न के साथ सामाजिक वातावरण में किया जाता है।"

पार्कर के अनुसार –''योजना कार्य की एक इकाई है, जिसमें छात्रों को कार्य की योजना और सम्पन्नता के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है।''

वैलार्ड के अनुसार –"योजना वास्तविक जीवन का एक छोटा सा अंश होता है, जिसे विद्यालय में सम्पादित किया जाता है।"

प्रायोजना विधि में शिक्षण के पद

प्रायोजना विधि से शिक्षण करते समय निम्नलिखित पदों का अनुसरण करना पड़ता है –

1. परिस्थिति उत्पन्न करना – प्रायोजना विधि में शिक्षक बालकों के ऊपर कोई कार्य थोपता नहीं है, वरन वह बालकों से विचार विमर्श करके ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है कि उनकी किसी विशेष कार्य में रूचि उत्पन्न हो जाती है।

2. प्रायोजना का चयन – समस्या के समाधान के लिए छात्र विभिन्न प्रकार की योजनाएँ प्रस्तुत करते हैं। शिक्षक उन योजनाओं के गुण दोषों के आधार पर छात्र को प्रायोजना चुनने में मदद करता है।

3. उद्देश्य निरूपण – योजना के लक्ष्यों का निर्धारण शिक्षक के निर्देशों तथा सुझावों पर निर्भर होता है, परन्तु शिक्षक को इसके निर्धारण में छात्रों की रूचियों, आवश्यकताओं तथा योग्यताओं को ध्यान में रखना चाहिए।

4. योजना का कार्यक्रम बनाना – इस स्तर पर लक्ष्यों की प्राप्ति के विभिन्न श्रोतों एवं साधनों पर विचार विमर्श किया जाता है, साथ ही उनका तुलनात्मक अध्ययन करके उपयुक्त कार्यक्रम का चयन किया जाता है।

5. योजना को पूर्ण करना – छात्र कार्यक्रम में निर्धरित विभिन्न क्रियाओं को वैयक्तिक या सामूहिक दोनों रूप से करते हैं। शिक्षक उनकी क्रियाओं का निरीक्षण एवं पथ प्रदर्शन करता है।

6. योजना का मूल्यांकन करना – इस पद में सभी छात्र अपने कार्यों के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हैं। शिक्षक उनके कार्य की जाँच करके उनकी सफलता या असफलता का मूल्यांकन करता है।

7. योजना को लिखना – योजना का मूल्यांकन हो जाने के पश्चात् छात्र अपनी प्रयोजना पुस्तिकाओं में उसका पूर्ण विवरण लिखते हैं जिसे शिक्षक पढ़कर अपने विचार निश्चित करता है।

प्रायोजना विधि के गुण –

1. इसके द्वारा छात्रों में व्यावहारिक गुणों का विकास होता है।
2. इस विधि द्वारा रटने की प्रवृत्ति को निरूत्साहित किया जाता है।
3. यह विधि सीखने के सिद्धान्तों जैसे – अभ्यास, तत्परता तथा परिणाम का नियम आदि पर आधारित होने के कारण मनोवैज्ञानिक है।

प्रायोजना विधि के दोष –

1. इस विधि द्वारा क्रम तथा तारतम्य के साथ ज्ञान प्रदान नहीं किया जाता है।
2. यह विधि बहुत खर्चीली (expensive) है।
3. इस पद्धति द्वारा शिक्षण में अधिक समय लगता है।

मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना

(Brain Storming Strategy)

मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना एक प्रजातान्त्रिक व्यूह रचना है। इस व्यूह रचना को प्रतिपादित करने का श्रेय ए0एफ0 ऑस्कबोर्न (A.F.Oxborn) को जाता है। ए0एफ0 ऑस्कबोर्न महोदय के अनुसार कार्यनीति का उपयोग किसी परिस्थिति विशेष या समस्या–समाधान के सन्दर्भ में समूह के सदस्यों के विचार जानने के लिए किया जाता है,जिससे उन्हें बिना रोक–टोक के अपने विचार व्यक्त करने का समाधान प्रस्तुत करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है जो उनके मस्तिष्क में होते है।'' इस प्रकार यह व्यूह रचना उच्च संज्ञानात्मक योग्यताओं के विकास तथा चिन्तन स्तर के अधिगम,सृजनशील कार्यो तथा समस्या–समाधान अधिगम की प्राप्ति में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होती है। भावात्मक क्षेत्र के अधिगम की प्राप्ति में भी यह व्यूह रचना (मस्तिष्क विप्लव) अधिक प्रभावी है।

मस्तिष्क विप्लव का तात्पर्य, मस्तिष्क की उथल–पुथल से है अर्थात् मस्तिष्क में विचारों के तूफान आना जिससे किसी भी विषय में ढेरों विचार एक साथ अचानक बिना किसी तथ्य की परवाह किये उभर आते हैं मस्तिष्क विप्लव की संज्ञा दी जाती है, इस शिक्षण व्यूह (मस्तिष्क विप्लव) रचना में छात्रों के एक समूह को एक समस्या दे दी जाती है और उनसे कहा जाता है कि वे सभी उस विषय पर वाद–विवाद करें और अपने–अपने विचार प्रस्तुत करें। साथ ही यह आवश्यक नहीं है कि जो विषय वहाँ प्रस्तुत किए जाएँ वे सभी सार्थक सिद्ध हों। वहाँ समूह को प्रोत्साहित किया जाता है जिससे वह समस्या का विश्लेषण, संश्लेषण तथा मूल्यांकन कर सकें।

मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना के गुण

(Merits of Brain Storming Strategy)

मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं –

1. मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना में छात्र सक्रिय रहते हैं।
2. मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना द्वारा छात्र शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में भाग लेकर अपने प्रयासों से समस्या का समाधान करने का प्रयास करते हैं।
3. मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना द्वारा छात्रों को चिन्तन करने तथा निष्कर्ष पर पहुँचने की क्षमता को विकसित करने के अधिक अवसर मिलते हैं।
4. मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना के द्वारा छात्रों की सृजनात्मक एवं रचनात्मक क्षमताओं का विकास उचित दिशा में होता है।
5. मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना द्वारा छात्रों में सहिष्णुता का विकास होता है तथा वे एक–दूसरे के विचारों को आदर देना सीख जाते हैं।

मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना के अवगुण या दोष

(Demerits of Brain Storming Strategy)

मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना के अनेक गुणों के साथ–साथ अनेक दोष भी हैं जो कि निम्नांकित है –

1. मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना में अधिक समय एवं श्रम की आश्वयकता पड़ती है।
2. मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना द्वारा समस्या समाधान करने में समूह के सभी सदस्य एक जैसी रूचि एवं तत्परता नहीं रखते हैं, जिससे वांछित लाभ की सम्भावना काफी कम हो जाती है।
3. मस्तिष्क विप्लव व्यूह रचना में यह देखा जाता है कि कई बार समूह के सदस्य अपने विचार प्रकट करने में हिचकिचाते हैं जिससे समूह वाँछित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते हैं।

नाटकीकरण विधि/पात्र अभिनय

(Dramatization Method)

नाटकीकरण विधि की सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान शिक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान शिक्षण में यह एक उपयोगी विधि है। नाटकीकरण का अर्थ होता है किसी अन्य के कार्य और व्यवहार को करना या उसका अनुकरण करना। इस अनुकरण में वह संगीत, नृत्य, हाव–भाव प्रदर्शन, वेशभूषा आदि सभी को उसी पात्र के अनुरूप प्रस्तुत करता है। नाटकीकरण के माध्यम से छात्रों को स्वंय सीखने के अवसर प्राप्त होते हैं। इस विधि के द्वारा किसी भी बिन्दु या प्रकरण अथवा पाठ का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जा सकता है। नाटकीकरण विधि के प्रयोग से छात्रों में आत्मविश्वास, विवेचनात्मक शक्ति का विकास हो सकता है। सामाजिक अध्ययन सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत नागरिक शास्त्र, इतिहास एवं भूगोल शिक्षण के लिए यह विधि अत्यन्त उपयोगी है। इसमें सामाजिक घटनाओं, ऐतिहासिक धटनाओं एवं भौगोलिक घटनाओं को यथार्थ रूप में प्रभावशीलता एवं प्रभावपूर्ण और रूचिकर ढंग में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके साथ–साथ नागरिक शास्त्र के अन्तर्गत विभिन्न ससंदीय कार्य प्रणाली, महापुरूषों के कार्यों आदि में नाटकीकरण

विधि का प्रयोग किया जा सकता है। नाटकीकरण विधि को और अधिक स्पष्ट रूप में समझने के लिए निम्नलिखित विद्वानों के विचारों को समझना आवश्यक है।

शिक्षा शब्दकोश (Dictionary of Education) के अनुसार – ''एक कहानी को अभिनय अथवा नाटक द्वारा नया रूप देना ही नाटकीकरण है,जो पूर्व में नाटकीय रूप में नहीं है।

ई0 होर्न (Ernet Horn) के अनुसार– ''नाटकीय विधि के द्वारा छात्रों में नेतृत्व,सहयोग,परिश्रम की भावना तथा प्रेरणा शक्ति का विकास किया जा सकता है। उनको प्राप्त किये बिना वे आदर्श नागरिक बनने का अधिकारी नहीं हैं।''

अतः स्पष्ट है कि 'नाटकीय विधि वह विधि है जिसके द्वारा किसी घटना या तथ्य को नाटक के माध्यम से नये रूप में प्रस्तुत किया जाता है जो कि मूल रूप में नाटकीय रूप नही है।

नाटकीय विधि के सिद्धान्त की प्रक्रिया

(Process of Dramatization)

नाटकीय विधि में शिक्षक को ही पूर्ण व्यवस्था करनी होती है। इस विधि में किसी ऐतिहासिक अतीत से सम्बन्धित घटनाओं एवं प्रमुख महान पुरूषों के लिए नाटक की व्यवस्था की जाती है जोकि छात्रों के जीवन को प्रभावित करती है। इस विधि में छात्रों के भाग लेने के लिए शिक्षक को योजना तैयार करनी होती है। इसके लिए शिक्षक का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए जिससे छात्र विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों के नाटकों में भाग लेने के लिए तैयार या इच्छुक रहें। अतः नाटकीय विधि में मुख्य रूप से चार सोपानों या पदों (Steps) का अनुसरण किया जाता है–

1.योजना तैयार करना (Planning)

2.नाटक की तैयारी (Preprstion of Drama)

3.क्रियान्वयन प्रारूप तैयार करना (Preparation Pattern of)

4.मूल्यांकन करना (Evaluating)

नाटकीय विधि की विषयवस्तु

(Content of Dramatization Method)

समाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान शिक्षण में नाटकीय विधि की विषयवस्तु को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. सिकन्दर तथा पैरिस की मुठभेड़।
2. महात्मा बौद्ध की जीवन गाथा।
3. चन्द्रगुप्त और चाणक्य।
4. पृथ्वीराज चौहान और संयोगिता ।
5. भीम एवं दुर्योधन का महायुद्ध।
6. महाराणा प्रताप सिंह की जीवन गाथा।
7. शिवाजी राव के जीवन की प्रमुख घटनाएँ।

8. रानी लक्ष्मीबाई की वीरता।
9. स्वतन्त्रता सेनानी भगत सिंह का बलिदान ।
10. प्रमुख वीर शहीदों की कथाएँ एवं गाथाएँ।

नाटकीय विधि की विशेषताएँ

(Charactrisites of Dramatization Method)

सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान शिक्षण की नाटकीय विधि की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. नाटकीय विधि छात्रों में भावात्मक अभिवृत्ति का विकास करती है।
2. नाटकीय विधि छात्रों में कल्पनाशक्ति के विकास के लिए अनेक अवसर प्रदान करती है।
3. नाटकीय विधि छात्रों को इतिहास की घटनाओं एवं तथ्यों को सुगमता से समझने के अवसर प्रदान करती है।
4. नाटकीय विधि के माध्यम से छात्रों में शैक्षिक मूल्यों का विकास होता है।
5. नाटकीय विधि से छात्रों का सामाजीकरण होता है।
6. नाटकीय विधि छात्रों में समूह में कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास करती है।
7. इस विधि के द्वारा छात्रों में सहयोग की भावना का विकास होता है।
8. नाटकीय विधि के द्वारा छात्र महापुरूषों के चरित्रों की विशेषताओं के वास्तविक रूप का अनुभव करते हैं।
9. नाटकीय विधि के द्वारा छात्रों को सामान्यीकरण की आवश्यकता नहीं होती है।
10. नाटकीय विधि में ज्ञानेन्द्रियों द्वारा वास्तविकता का अनुभव प्राप्त होता है।
11. नाटकीय विधि में ज्ञानेन्द्रियाँ क्रियाशील रहती हैं।
12. नाटकीय विधि द्वारा छात्रों के चारित्रिक गुणों का विकास किया जाता है।
13. नाटकीय विधि की सहायता से छात्रों में समझ,नियन्त्रण एवं अभिव्यक्ति आदि गुणों का विकास होता है।
14. नाटकीय विधि में शिक्षण खेल द्वारा किया जाता है जिस कारण छात्रों में रूचि उत्पन्न होती है और वे रूचि लेते हैं।
15. नाटकीय विधि के द्वारा राष्ट्रीय एकता एवं भावात्मक एकता को सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है।

नाटकीय विधि की सीमीएँ

(Limitation of Dramatization Method)

सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान शिक्षण में नाटकीय विधि की जहाँ अनेक विशेषताएँ है वहीं इसके कुछ प्रमुख सीमाएँ एवं दोष भी हैं जो कि निम्नालिखित हैं –

1. नाटकीय विधि द्वारा शिक्षण में अनुशासनहीनता की सम्भावना बनी रहती है।
2. नाटकीय विधि द्वारा शिक्षण में अधिक समय व व्यय होता है।

3. नाटकीय विधि द्वारा ऐतिहासिक नाटकों के क्रियान्वयन में भाषा की कठिनाई होती है।
4. ऐतिहासिक नाटकों का आकार बड़ा होने के कारण छात्र उसे ठीक प्रकार से प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं।
5. नाटकीय विधि से शिक्षण हेतु अनुभवी एवं कुशल शिक्षक की आवश्यकता होती है।
6. कुछ छात्रों के माता–पिता अपने बच्चों को नाटकों में भाग लेने के लिए तैयार नहीं होते है।
7. नाटकीय विधि में सभी छात्र भाग नहीं ले पाते हैं।
8. नाटकीय विधि का प्रयोग प्रत्येक विद्यालय नहीं कर पाता है।

स्वतंत्र अध्ययन

स्वतंत्र अध्ययन की समझ

स्वतंत्र अध्ययन एक प्रकार की शैक्षिक प्रक्रिया है, जिसमें शिक्षार्थी अपने अनुसार बहुत कम या नही के बराबर शिक्षकीय पर्यवेक्षण के चुने हुए विषय पर अध्ययन करता है। विषय का चयन किसी पाठ्यक्रम का हिस्सा हो सकता है पर यह जरुरी नहीं है कि वह पाठ्यक्रम में शामिल हो। किस विषय पर स्वतंत्र अध्ययन करना है यह पूर्ण रूप से शिक्षार्थी के विवेक पर निर्भर करता है इसमें ऐसे विषय या क्षेत्र शामिल होते हैं जो उसके उच्च शिक्षा के लिए लाभप्रद हो। सामान्यतः इस प्रकार के अध्ययन के लिए ऐसे क्षेत्रों का चुनाव किया जाता है जिसमें उसे शोध कार्य आरम्भ करना होता है। इस अध्ययन से उसे उस विषय के बारे में गहरी समझ उत्पन्न होती है और वह विषय के सिद्धांतों को समझने में अपने आप को सक्षम पाता है। स्वतंत्र अध्ययन प्रेरित शिक्षार्थी को यह विधि उसे अपनी रुचिकर विषय को आगे बढ़ाने का एक तरीका प्रदान करता है जो आवश्यक नहीं कि पारंपरिक शैक्षणिक पाठ्यक्रम में समाहित हो। स्वतंत्र अध्ययन से शिक्षार्थी अपने हितों का गहराई से पता लगाने और भविष्य में अपनी प्रतिभा को कैसे और कहाँ उपयोग करना है इसके लिए महत्वपूर्ण निर्णय लेने के लिए सक्षम हो पाता है।

स्वतंत्र अध्ययन क्यों?

1. **सकारात्मकता बढ़ती है।**
2. **आत्मविश्वास विकसित होती है।**
3. **अच्छी आदतों का निर्माण होता है।**
4. **जीवन की उतरोत्तर प्रगति होती है।**
5. **सम्मान व श्रेय के अधिकारी बनते है।**
6. **तुलनात्मक दृष्टिकोण का विकास होता है।**
7. **स्मृति (स्मरण शक्ति) का विकास होता है।**
8. **कठिन तथ्यों को समझने की क्षमता बढ़ती है।**
9. **सही–गलत के निर्णय करने की क्षमता बढ़ती है।**
10. **प्रतिदिन नियमपूर्वक अध्ययन करने से बुद्धि तीव्र होती है।**
11. **ज्ञान के स्रोत खुलते है। ज्ञान जागृत एवं जीवंत बना रहता है।**

स्वतंत्र अध्ययन क्यों जरुरी है?

किसी भी विषय के बारे में गहरी समझ बनाने के लिए उस विषय का गहराई से अध्ययन करना बहुत जरुरी है। जब कोई भी विषय शिक्षार्थी की रूचि के अनुरूप हो और उसमें किसी प्रकार का कोई बंधन न हो तो वह विषय सरलता से सीखी व समझी जा सकती है। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि कुछ कठिन नियम या

सिद्धांत आसानी से समझ में आते हैं और उसका विश्लेषण करने में शिक्षार्थी अपने आप को सक्षम पाता है। समीक्षा में यह पाया गया है कि स्वतंत्र अध्ययन कई अलग–अलग शब्दों या विचारों से दर्शाया गया है जिसमें स्व विनियमित शिक्षा सबसे आम अवधारणा है। अध्ययन से पता चला है कि इस प्रकार की शिक्षा से छात्रों को बेहतर प्रेरणा और सीखने के बेहतर प्रबंधन जैसे गुण विकसित हुए हैं। स्वतंत्र अध्ययन से शिक्षार्थी को अपने स्वयं के सीखने की गति का पता चलता है। किसी कार्य या परियोजना पर गहराई से अध्ययन करने एवं विश्लेषण करने की क्षमता का विकास होता है जो कि किसी भी अकादमिक विकास के लिए अति–आवश्यक गुण है। साथ ही व्यक्ति में अकादमिक प्रदर्शन में बेहतरी का अनुभव होना, कार्य के प्रति प्रेरणा और आत्मविश्वास में वृद्धि, अपनी सीमाओं और उन्हें व्यवस्थित करने की क्षमता में जागरूकता कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो स्वतंत्र अध्ययन से आते हैं।

स्वतंत्र अध्ययन की प्रकिया

स्वतंत्र अध्ययन के लिए कोई मानक प्रक्रिया स्थापित नहीं की गई है फिर भी यह संस्थान एवं परिस्थिति के अनुरूप इसके स्वरुप में परिवर्तन होते रहता है। सामान्यतः स्वतंत्र अध्ययन की प्रक्रिया में निन्मलिखित बिंदुओं को शामिल किया जाता है।

१) शिक्षार्थी स्वतंत्र अध्ययन के लिए एक योजना बनाकर उस काम की व्यवहारिकता और पर्यवेक्षण के लिए सभी संकाय सदस्य या पर्यवेक्षक के पास जाकर विचार विमर्श करेगा।

२) शिक्षार्थी एवं पर्यवेक्षक मिलकर एक प्रस्ताव बनाएँगे जिसमें निम्नलिखित बिंदुओं का समावेश होगा जरुरी नहीं कि इन्हीं बिंदुओं को सम्मिलित करें –

क) सामान्य सूचना – इसमें विषय के बारे में विवरण और अध्ययन का क्षेत्र अंतर्निहत होगा।

ख) विशिष्ट सूचना – इसमें उद्देश्यों और परिणामों का समावेश, उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कैसा दृष्टिकोण, कार्यप्रणाली अपनाया जाना है, किस प्रकार के संसाधन की आवश्यकता है ये बातें स्पष्ट करनी होंगी।

ग) मूल्यांकन की पद्धति – मूल्यांकन की प्रक्रिया सतत होगी या व्यापक होगी, कार्य का मूल्यांकन प्रस्तुति के द्वारा देना है या लिखित परीक्षा के रूप में या फिर साहित्य की लिखित समीक्षा के रूप में यह पर्यवेक्षक पर निर्भर करेगा।

घ) कार्यान्वयन योजना – इसमें कार्य को करने के लिए दिशानिर्देश, संभावित समयसारणी, मानकों का समावेश होगा।

इस प्रकार इन उक्तलिखित बातों को ध्यान में रखकर स्वतंत्र अध्ययन किया जाए तो निश्चित ही उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

स्वतंत्र अध्ययन का महत्व

स्वतंत्र अध्ययन के महत्व को शिक्षार्थी सायकिल चलाना सीखने से तुलना करके आसानी से समझ सकते हैं जिस प्रकार एक बार यदि व्यक्ति सायकिल चलाना सीख जाता है तो वर्षों बाद भी उसे नहीं भूलता है बशर्तें कि व्यक्ति शारीरिक तौर पर सक्षम हो। हो सकता है व्यक्ति कुछ समय के लिए असहज महसूस करे किन्तु इस कौशल के पुनः प्रकट होने में अधिक समय नहीं लगेगा। सायकिल चलाना एक कौशल है जिसमें सुधार की संभावना हमेशा रहेगी और अभ्यास से यह प्राप्त किया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार स्वतंत्र अध्ययन करने वाले

शिक्षार्थी में जिस कौशल का विकास होगा वह चिरकाल तक स्थायी रहेगा। बस समय–समय पर इसमें सुधार की गुंजाइश बनी रहती है। निम्नलिखित बिंदुओं से इसके महत्व को समझ सकते हैं –

१) शिक्षार्थी को सीखने का स्वतंत्र अवसर मिलता है कि वह क्या सीखना चाहता है?

२) वह स्वतंत्र रूप से कार्य करने की क्षमता का प्रदर्शन कर सकता है जो भविष्य में उसके लिए स्वरोजगार निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकता है ।

३) स्वतंत्र अध्ययन विषय को गहराई से समझ पाने में मदद करता है।

४) शिक्षार्थी में प्रारंभिक शिक्षा से शुरूआत की गई स्वतंत्र अध्ययन की प्रवृति उसे उच्च शिक्षा में थीसिस या शोध कार्य करने के लिए प्रेरित करता है।

स्वतंत्र अध्ययन के गुण

स्वतंत्र अध्ययन मूलतः शिक्षार्थी के सर्वागीण विकास में सहायक होता है निम्नलिखित बिंदुओं पर हम स्वतंत्र अध्ययन के गुणों को चिन्हांकित कर सकते हैं –

१) विषय के बारे में गहरी समझ – जब आप किसी एक विषय पर ध्यान केंद्रित करके अध्ययन करते हैं तो स्वाभाविक तौर पर उस विषय की समझ बढ़ती जाती है।

२) सोचने, समझने एवं विश्लेषण करने की कला का विकास–स्वतंत्र अध्ययन सोचने व समझने की क्षमता एवं किसी एक विषय पर विश्लेषण करने की कला के विकास में सहायक होता है।

३) अकादमिक प्रदर्शन में बेहतरी – जब शिक्षार्थी स्वतंत्र अध्ययन करता है तो उसके अकादमिक प्रदर्शन में बढ़ोत्तरी होती है क्योंकि उसकी विषय के प्रति समझ गहरी होने लगती है, और वह समस्याओं की बारीकियों को समझने लगता है।

४) कार्य के प्रति स्वप्रेरणा और आत्मविश्वास में वृद्धि – स्वतंत्र अध्ययन स्वयं के चुने हुए विषयों पर की जाती है इससे कार्य के प्रति स्वप्रेरणा बनी रहती है क्योंकि इसमें किसी और का हस्तक्षेप नहीं रहता अतः शिक्षार्थी स्वप्रेरित होते रहता है।

५) अपनी सीमाओं और उन्हें प्रबंधित करने की क्षमता में जागरूकता – जब कोई शिक्षार्थी स्वतंत्र अध्ययन करता है तो उसे अपनी सीमाओं के बारे में पता चलता है कि वह किस हद तक विषय को समझ पाता है और कार्यों को समय पर पूर्ण करने में समर्थ होता है। जिससे उसे आसानी से अपने कार्य प्रबंधन की कुशलता के बारे में सीखने का अवसर मिलता है।

स्वतंत्र अध्ययन के दोष

निम्नलिखित बिंदुओं पर स्वतंत्र अध्ययन के दोषों को दर्शाया जा सकता है –

१) सीमित चर्चा–स्वतंत्र अध्ययन का एक दोष यह भी है कि शिक्षार्थी द्वारा स्वयं कार्य करने के कारण अपने विषय पर दूसरे शिक्षार्थी से विस्तृत चर्चा करने से वंचित हो जाता है।

२) स्पष्टीकरण में कठिनाई–कई बार यह देखा गया है कि शिक्षार्थी जिस विषयवस्तु को भली भांति समझ रहा होता है उसे दूसरों को समझाने में उसे कठिनाई होती है क्योंकि वह केवल एकाकी अध्ययन कर रहा होता है।

३) प्रेरणा में कमी–कुछ समय पश्चात् ऐसा होता है जब विद्यार्थी काम करना नहीं चाहता या वह ऐसा सोचने लगता है कि पूरी दुनिया उसी के कंधों पर है, ऐसे समय उसे लोगों से बड़ी प्रेरणा मिलती है किन्तु स्वतंत्र रूप से अध्ययनकर्ता इस प्रकार की प्रेरणा प्राप्त करने से वंचित रह जाता है और उसकी प्रेरणाश्रोत खत्म होते जाती है।

४) समस्याओं को साझा करना–ऐसा माना जाता है कि समस्या को साझा करने से उसे हल करने में आसानी होती है, पर जब कोई स्वतंत्र अध्ययन कर रहा होता है तो एकाकी होने के कारण वह अपनी समस्याओं को साझा नहीं कर पाता जिसके कारण उसे कठिनाई होती है।

संवेदनशील प्रशिक्षण

संवेदनशील प्रशिक्षण की समझ–संवेदनशील प्रशिक्षण संगठनात्मक विकास की एक तकनीक है। जिसमे लोगों को अपने लक्ष्यों के साथ–साथ दूसरों के प्रति अधिक संवेदनशील और समूह बातचीत की गतिशीलता के बारे में अधिक जागरूक होने का मौका मिलता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण से संगठनात्मक प्रभावशीलता और कर्मचारी कल्याण में सुधार करने में सहायता मिलती है। इस तकनीक का विकास 1940 के दशक में रोनाल्ड लिपिट और कर्ट लेविन एक जर्मन–अमेरिकी मनोवैज्ञानिक द्वारा किया गया था।

संवेदनशील प्रशिक्षण समूह बातचीत के माध्यम से बदलते व्यवहार को संदर्भित करता है। इसे प्रयोगशाला प्रशिक्षण, टी–समूह चर्चा और तार्किक समूहों के रूप में भी कहा जाता है। इसमें विभिन्न लिंग, संस्कृति और क्षमताओं के सदस्यों को एक साथ मुक्त एवं खुले वातावरण में लाकर विभिन्न मुद्दों पर पारस्परिक चर्चा के लिए अवसर प्रदान किया जाता है। इसे एक सूत्रधार द्वारा निर्देशित किया जाता है जो सभी को अपने विचारों, भावनाओं, धारणाओं, दृष्टिकोणों और मान्यताओं को व्यक्त करने का अवसर प्रदान करता है। ऐसे प्रशिक्षण में किसी को नेतृत्व का दायित्व नहीं दिया जाता। यह समूह उन्मुख प्रक्रिया है जिसमे हर कोई आदेश देने या निश्चित गतिविधि को करने के बजाए सहभागिता एवं अवलोकन से सीखता है।

संवेदनशील प्रशिक्षण क्यों जरूरी है?

संवेदनशील प्रशिक्षण व्यक्ति, सहकर्मियों और संस्थान के बीच एक सेतु का निर्माण करता है। इससे व्यक्ति के ज्ञान और समझ में वृद्धि होती है। इससे व्यक्ति के कार्यस्थल में पारस्परिक सम्बन्ध मजबूत होते हैं, गुणवत्ता में सुधार करने और संस्था के भीतर प्रगति करने के लिए इससे बने सेतु का उपयोग कर सकता है। निम्नलिखित बिंदुओं से हम संवेदनशील प्रशिक्षण की आवश्यकता को समझ सकते हैं:

1. लोगों को खुद के बारे में बेहतर समझ विकसित करने के लिए।
2. दूसरों की बेहतर समझ बनाने के लिए।
3. समूह प्रक्रिया में निरीक्षण योग्यता प्राप्त करने के लिए।
4. विशिष्ट व्यवहार कौशल विकसित करने के लिए।

संवेदनशील प्रशिक्षण की प्रकिया

उपलब्ध साहित्यों के आधार पर हम संवेदनशील प्रशिक्षण कार्यक्रम को तीन चरणों में विभाजित कर सकते हैं –

1. पुराने मूल्यों व मान्यताओं को मुक्त न करें – प्रशिक्षार्थियों को अपने पुराने मूल्यों की अपर्याप्तता से अवगत होना चाहिए। ऐसा तब होता है जब प्रशिक्षु अपने आप को दुविधा में पाता है जिसमें उसके पुराने मूल्य उचित मार्गदर्शन करने में सक्षम नहीं होते हैं। इस चरण में एक छोटी प्रक्रिया होती है :–

- 10 –15 लोगों का एक असंगठित समूह बनता है।
- बिना किसी उद्देश्य के यह समूह प्रशिक्षक को मार्गदर्शन के लिए देखता है। परन्तु प्रशिक्षक मार्गदर्शन और नेतृत्व के लिए मना कर देता है।
- इस कारण प्रशिक्षु इस अनिश्चितता को हल करने के लिए स्व–प्रेरित होते हैं।
- इस क्रम में वे किसी प्रकार का पदानुक्रम बनाने की कोशिश करते हैं, कुछ नेतृत्व की भूमिका मानते हैं जो कि जरुरी नहीं कि अन्य प्रशिक्षुओं द्वारा स्वीकार किया जाए।
- फिर वे अनुभव करना शुरू कर देते हैं कि उन्हें क्या करना है और परिस्थिति के अनुरूप समस्या के समाधान के वैकल्पिक तरीकों के बारे में सोचना आरम्भ करते हैं।

2. नए मूल्यों का विकास – प्रशिक्षक के सहयोग से प्रशिक्षु पारस्परिक व्यवहार की जाँच आरम्भ करते हैं और एक दूसरे को प्रतिक्रिया देना शुरू करते हैं। प्रतिपुष्टि के तर्क पर चर्चा की जाती है जो प्रशिक्षुओं को नए व्यवहार और मूल्यों के साथ प्रयोग करने को प्रेरित करती है।

3. नए लोगों को दुबारा शुरू करना – यह चरण इस बात पर निर्भर करता है प्रशिक्षु अपने कार्यस्थल पर नए व्यवहार और मूल्यों का अभ्यास कैसे करते हैं। इस प्रकार संवेदनशील प्रशिक्षण भावनात्मक बुद्धिमता विकसित करने की प्रक्रिया है, जिसका अर्थ "किसी व्यक्ति के मानसिक क्षमता को दूसरों की भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता और समझ के साथ साथ अपनी भावनाओं और आवेगों को व्यवस्थित करने की क्षमता होती है।

संवेदनशील प्रशिक्षण का महत्व

संवेदनशील प्रशिक्षण के महत्व का वर्णन हम उसके परिणाम के आधार पर भी कर सकते हैं जो कि प्रशिक्षु को प्राप्त होते हैं। जरुरी नहीं कि सभी प्रतिभागी सम्पूर्ण चीजें सीख सकें, कुछ कम सीखते हैं, कुछ उनसे अधिक और कुछ लोग काफी मात्रा में विभिन्न चीजें सीखते है। यह व्यक्ति विशेष की प्रवृति पर निर्भर करता है। निम्न कथनो से हम इसके महत्व को वर्णित कर सकते है :–

1. यह कर्मचारियों को कार्यस्थल में मौजूद विविधता के प्रति संवेदशील होने में सहायता करता है और संस्था के सदस्यों को परस्पर बेहतर समझ की ओर अग्रसर करता है।
2. समूह के सदस्यों के बीच अच्छे पारस्परिक सम्बन्ध बनाने में मदद करता है।
3. रचनात्मक व्यवहार के बारे में शिक्षित करता है जो संस्था में काम करने वाले सभी को लाभान्वित करता है।
4. प्रबंधकों को अपने व्यवहार में अंतर्दृष्टि प्राप्त करने में सहायता करता है।

संवेदनशील प्रशिक्षण के गुण

निम्नलिखित बिंदुओं से हम संवेदनशील प्रशिक्षण के गुणों को व्यक्त कर सकते हैं :–

1. यह अपने व्यवहार के बारे में समझ, अंतर्दृष्टि और आत्म जागरूकता बढ़ाने में सहायक होता है।
2. यह दूसरों के व्यवहार के बारे में समझ और संवेदनशीलता बढ़ाने में सहायक होता है।
3. समूह के प्रतिक्रियाओं की बेहतर समझ और जागरूकता लाने में मददगार होता है।
4. पारस्परिक एवं समूह प्रक्रियाओं में नैदानिक कौशल के विकास के लिए उपयोगी है।
5. अपने स्वयं के पारस्परिक व्यवहार का विश्लेषण करने की क्षमता को बढ़ाने में सहायक होता है।

संवेदनशील प्रशिक्षण के दोष

जिस प्रकार सिक्के के दो पहलु होते हैं उसी प्रकार किसी भी चीज के सकारात्मक पहलु के साथ–साथ नकारात्मक पहलु भी होते हैं, संवेदनशील प्रशिक्षण के दोषों को हम निम्नलिखित बिंदुओं पर दर्शा सकते हैं –

1. कई प्रतिभागी इस प्रक्रिया को अनियंत्रित और अव्यवस्थित पाते है।
2. इससे कर्मचारियों के बीच पारस्परिक संबंधों में दरार उत्पन्न हो सकता है।
3. एक दक्ष संचालनकर्ता की उपस्थिति के कारण प्रतिभागी अपने विश्वास को सही रूप से व्यक्त करने में असहज महसूस करता है।
4. प्रशिक्षक के अहस्तक्षेप के कारण कई प्रतिभागियों को अपने विचारों को प्रकट करने का अवसर नहीं मिल पाता।

समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि

(Socialized Recitation Method)

समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि सामाजिक अध्ययन या सामाजिक विज्ञान शिक्षण की एक विधि है। आधुनिक युग में प्रजातान्त्रिक उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु समाजीकृत अभिव्यक्ति का प्रयोग कक्षा–कक्षों में दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षण में एक नवीनतम एवं गत्यात्मक विधि को प्रमुख स्थान मिल रहा है जिसे समाजीकृत विधि कहा जाता है।

समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि का अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning and Definition of Socialized Recitation Method)

समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि कक्षा–कक्ष की एक धनात्मक आदर्श स्थिति होती है जिसमें नीरसतापूर्ण एवं परम्परागत शिक्षण वातावरण को दूर करके कक्षा–कक्ष में एक रोचकतापूर्ण एवं जीवन्त वातावरण को निर्मित किया जाता है। अतः समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि से तात्पर्य उस विधि से है जिसके द्वारा व्यक्तियों या छात्रों के एक समूह में किसी विषय अथवा समस्या पर सामूहिक निर्णय लेने के लिए विभिन्न विद्वानों के विचारों को जानना आवश्यक हो जाता है जो कि अग्रलिखित है –

वेस्ले (Wesley) के अनुसार – ''समाजीकृत अभिव्यक्ति एक आदर्श है जो शिक्षण में ऐसे प्रयोग की कल्पना है जिससे कक्षा के सभी बालक सहयोग तथा सद्भावना से ज्ञानार्जन कर सकें। इसके द्वारा कक्षा के वातावरण की कृत्रिमता को समाप्त किया जाता है और उसके स्थान पर स्वाभाविकता उत्पन्न की जाती है जिससे बालक अपने स्वभाव एवं रूचि के अनुसार स्वतंत्रापूर्वक सहयोगी ढंग से ज्ञानार्जन करता है।''

बाइनिंग एवं बाइनिंग के अनुसार – ''कोई भी कक्षा कक्ष जो एक वर्ग के रूप में सामूहिक चेतना तथा वैयक्तिक उत्तरदायित्व का प्रदर्शन करे समाजीकृत अभिव्यक्ति है।''

एम.पी. मोफात के अनुसार – ''समाजीकृत अभिव्यक्ति व्याख्यान विधि की अपेक्षा छात्रों को सहभागिता के लिए अत्यधिक अवसर प्रदान करती है। यह एक सामन्त प्रकार की सामूहिक वाद–विवाद को विधि है जिसमें सभी छात्र अपना योगदान देकर, प्रश्न पूछकर तथा समस्याओं के समाधान के लिए प्रयास करके सहयोगी ढंग से भाग लेते हैं।''

शिक्षा शब्दकोष के अनुसार – ''समाजीकृत अभिव्यक्ति परिवर्ती चिन्तन करने एवं रूचि उत्प्रेरित करने, समस्याओं के समाधान खोजने (सीखने), अवबोध हेतु आवश्यक तथ्यों से युक्त ज्ञान को अनुपूरित करने, आलोचनात्मक मूल्यांकन को, प्रविधियों को सीखने , सृजनात्मक भावाभिव्यक्ति में योग्यता विकसित करने, स्वस्थ्य सामाजिक अभिवृत्तियाँ विकसित करने और समूह चिन्तन एवं विचारों को व्यक्त करने और व्यवस्थित करने की प्रविधि तथा सहयोगी प्रयास में प्रशिक्षित करने जैसे–लक्ष्यों सहित समूह क्रियाओं में छात्रों की सहभागिता के माध्यम से सीखता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन के पश्चात् कहा जा सकता है कि समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि परम्परागत शिक्षण की उस अधिपत्य (आधिकारिक) प्रवृत्ति को दूर करने का प्रयास करती है जिसमें शिक्षक पाठ्यवस्तु के माध्यम से एकत्रित एवं संकलित किये गये ज्ञान को छात्रों को प्रदान करता है और छात्र उसको ध्यान से सुनते हैं।''

समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि की प्रकृति

(Nature of Socialized Recitation Method)

समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि की प्रकृति को निम्नलिखित रूप में अभिव्यक्ति किस जा सकता है –

1. औपचारिक वर्ग योजना
2. अनौपचारिक वर्ग योजना
3. आत्म–निर्देशित वर्ग योजना
4. सेमीनार सामूहिक योजना

1. औपचारिक वर्ग योजना – इसके अन्तर्गत छात्र अपने को संगठित कर समस्याओं पर विचार–विमर्श करते हैं। इसमें छात्र निर्धारित नियमों एवं सिद्धान्तों के अनुसार अपने अध्यक्ष की अनुमति से अपने–अपने विचार तथा सुझाव रखते हैं। इसके साथ–साथ अध्यक्ष को ही सम्बोधित करके प्रस्तुत समस्या का समाधान खोजने का प्रयास करते हैं।

2. अनौपचारिक वर्ग योजना – इसके अन्तर्गत छात्र एवं शिक्षक निश्चित नियमों के अनुसार विचार–विमर्श नहीं करते हैं बल्कि स्वतन्त्रतापूर्वक किसी भी समस्या पर एक साथ सामूहिक रूप से विचार–विमर्श करते हैं।

3. आत्म–निर्देशित वर्ग योजना – इस वर्ग योजना में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त गौण होती है, अर्थात् समस्या का चयन छात्र स्वयं करते हैं। वे ही कक्षा कक्ष कार्यक्रम का निर्धारण एवं संचालन करते हैं। इसमें शिक्षक एक मार्गदर्शक का कार्य करता है तथा अनेक कठिनाईयों का निवारण करता है।

4. सेमीनार सामूहिक योजना – इसके अन्तर्गत एक समूह को एक समस्या दी जाती है। वह समूह उस समस्या के विषय में अपना–अपना विचार प्रस्तुत करता है और इस प्रकार वे अपनी खोज पूर्ण करते हैं। इस विधि के लिए एक निश्चित दिन निर्धारित कर दिया जाता है। सभी छात्र उस समस्या समाधान हेतु पुस्तकालयों, स्थलों, पत्रिकाओं आदि का प्रयोग करते हैं। इस में उस सामग्री को वाद–विवाद तथा आलोचना के लिए सेमीनार में रखा जाता है। उस पर सभी अपने अपने विचार प्रकट करते हैं। कुछ उसके पक्ष में बोलते हैं और कुछ विपक्ष में बोलते हैं। इन समस्या के निराकरण हेतु सुझाव दिए जाते हैं। अन्त में, सामूहिक रूप से रिपोर्ट तैयार की जाती है।

समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि के उद्देश्य

(Objectives of Socialized Recitation Method)

समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि का उद्देश्य छात्रों में समाज के प्रति उचित दृष्टिकोण विकास करना है।
2. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि का उद्देश्य छात्रों में चिन्तन एवं तर्क शक्ति का विकास करना है।
3. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि छात्रों को सामूहिक कार्य के लिए अभिप्रेरित करती है।
4. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि का उद्देश्य छात्रों में रचनात्मक शक्ति का विकास करना है।
5. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि छात्रों में धनात्मक सोच विकसित करती है।
6. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि छात्रों में समाज के समस्त जीवों के प्रति सहयोग की भावना विकसित करती है।
7. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि छात्रों में नेतृत्व के गुणों का विकास करती है।
8. छात्रों में परस्पर प्रेम, सहयोग एवं सहिष्णुता आदि अनेक गुणों का विकास करना समाजीकृत अभिव्यक्ति का उद्देश्य है।

समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि के गुण

समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं –

1. यह विधि छात्रों को योजना बनाना सिखाती है।
2. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि समय की दृष्टि से उपयोगी है।
3. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि में छात्र किसी समस्या विशेष पर योजना बनाना सीखते हैं।
4. यह विधि छात्रों के सामान्य उद्देश्यों एवं रूचियों की खोज करती है।
5. यह विधि परम्परागत एवं औपचारिक कक्षा–कक्ष शिक्षण की सीमाओं को खत्म करती है।
6. इस विधि में छात्र एक साथ समूह में किसी समस्या का गहनता से अध्ययन करते हैं।
7. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि से छात्रों में आत्म विश्वास उत्पन्न होता है।
8. इस विधि के द्वारा छात्र वाद–विवाद में भाग लेना सीख जाते हैं।
9. इस विधि के माध्यम से छात्रों की प्रेरणा–शक्ति को प्रोत्साहित किया जाता है।
10. इस विधि के द्वारा छात्रों में सहयोग की भावना का विकास किया जाता है।
11. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि एक मनोवैज्ञानिक विधि है।

समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि के अवगुण

समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि के जहाँ अनेक महत्वपूर्ण गुण हैं वहीं इसके कुछ अवगुण हैं जो कि निम्नलिखित हैं –

1. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि विषयवस्तु पर समुचित अधिकार करने के लिए उपयुक्त नहीं है।
2. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि में समय अधिक लगता है।

3. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि में सभी छात्र सक्रिय नहीं हो पाते हैं।
4. अधिकांश छात्र अपना समय नष्ट करते हैं वे कार्य में भाग नहीं लेते हैं।
5. इस विधि में कभी–कभी विद्यालय प्रशासन रूचि नहीं लेता है।
6. समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि के द्वारा सम्पूर्ण पाठ्यवस्तु का शिक्षण सम्भव नहीं हो पाता है।
7. इस विधि में शिक्षक का स्थान गौण होता है।

अभ्यास के प्रश्न

1. बच्चों के बौद्धिक विकास हेतु आप किस शिक्षण विधि को अधिक उपयुक्त समझते है, अपना तर्क दीजिए।
2. स्वतंत्र अध्ययन के गुण–दोषों को लिखिए।
3. संवेदनशील प्रशिक्षण की आवश्यकता क्यों है? इसके गुणों की विवेचना कीजिए।
4. सामाजिक अध्ययन शिक्षण की प्रमुख विधियों का उल्लेख करते हुए किसी एक विधि को समझाइए।
5. प्रायोजना को समझाते हुए इस विधि के शिक्षण पदों का उल्लेख कीजिए।

****

इकाई – 8

सामाजिक विज्ञान शिक्षण में अधिगम संसाधन

आधुनिक मनोवैज्ञानिक और शिक्षाशास्त्रियों का मत है कि ज्ञान जितनी अधिक इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है वह उतना ही अधिक सार्थक और स्थायी रहता है। इसके अतिरिक्त, बालकों में अधिकांशतः सूक्ष्म बातों को समझने की शक्ति भी नहीं होती। अतः पाठ को अधिक स्पष्ट, अर्थपूर्ण एवं रोचक बनाने के लिए शिक्षण में सहायक सामग्री का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। छोटे बच्चों को सूक्ष्म बातो को समझने, तर्क करने और केवल सुनकर ही वस्तु का मानसिक चित्र बना लेने की क्षमता नहीं होती। अतः सूक्ष्म विषयवस्तुओं का ज्ञान स्थूल वस्तुओं की सहायता से दिया जाना आवश्यक है।

शिक्षण का तब तक कोई अर्थ नहीं जब तक कि अधिगम नहीं होता। शिक्षक चाहे जिस विधि से शिक्षण करे, चाहे जिस युक्ति का प्रयोग करे पर यह देखा जाता है कि प्रायः सीखने वालों की पाठ्य सामग्री स्पष्ट नहीं होती। अतः बच्चों को पाठ्य सामग्री का स्पष्ट ज्ञान कराने के लिए अनेक साधनों जैसे–श्यामपट, वास्तविक चित्र, मॉडल, मानचित्र आदि का उपयोग किया जाता है। वस्तु रूप में इन साधनों को ही सहायक शिक्षण सामग्री कहते हैं क्योंकि ये साधन या तो देखे जाते हैं, सुने जाते हैं या देखे–सुने जाते हैं इसलिए इसे दृश्य–श्रव्य सामग्री भी कहते हैं चुंकि इन साधनों के निर्माण में अभियान्त्रिकी के सिद्धांतों और मशीनों का उपयोग होता है इसलिए शैक्षिक तकनीकी में इन्हें हार्डवेयर उपागम के अन्तर्गत रखा जाता है।

जहाँ तक बच्चों के सीखने की बात की जाती है इनके सीखने के लिए तो अनेक शिक्षण विधियों और युक्तियों का उपयोग किया जाता है किन्तु पाठ्य सामग्री का उपयोग विषयवस्तु को स्पष्ट करने के लिए किया जाता है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री का महत्व

सामाजिक विज्ञान शिक्षण में शिक्षण साधनों का बड़ा महत्व है। मनोवैज्ञानिकों ने स्पष्ट किया है कि शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में सीखने वालों की जितनी इन्द्रियाँ एक साथ क्रियाशील रहती हैं,सीखना उतना ही सरलता से होता है, स्पष्ट होता है और स्थाई होता है। वैसे तो प्राचीन काल में भी लोग इस सत्य को जानते थे इसलिए उस समय आचरण की शिक्षा के लिए नाटकों का प्रयोग किया जाता था। परन्तु इस युग में तो इस सत्य को वैज्ञानिक भाषा में स्पष्ट किया गया और शिक्षण के अनेक साधनों का विकास किया गया।

शिक्षण साधनों के प्रयोग से शिक्षार्थियों की अनेक इन्द्रियाँ एक साथ क्रियाशील होती हैं, उन्हें स्वयं अनुभव करके सीखने के अवसर प्राप्त होते हैं इसलिए सीखना स्थाई होता है। छोटे बच्चों की शिाक्षा में इसका बहुत अधिक महत्व होता है। किन्डरगार्टन और मॉटेसरी प्रणाली में इन्द्रिय प्रशिक्षण के लिए इन शिक्षण साधनों का प्रयोग किया जाता है। बड़े बच्चों की शिक्षा में भी इनका कुछ कम महत्व नहीं है। चाहे बच्चों को पाठ्यपुस्तक की ओर आकर्षित करने की बात हो, चाहे पाठ्य सामग्री की विकास की बात हो चाहे पाठ्य सामग्री की आवृति का प्रश्न हो, शिक्षण के प्रत्येक स्तर पर शिक्षण सामग्री का प्रयोग किया जाता है।

शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में शिक्षण साधनों के महत्व को आज सभी एक मत से स्वीकार करते हैं। हमारे देश में भी इसके महत्व को स्वीकार किया गया है और हमारी केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारों ने इसके लिए अलग

से विभाग भी खोले हैं। इन विभागों में शिक्षण सहायक सामग्री के निर्माण एवं प्रयोग पर कार्य होता है, ये शिक्षकों को इनके निर्माण और प्रयोग में प्रशिक्षित करते हैं ।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण में सहायक सामग्री के महत्व को निम्नलिखित रूप में भी समझा जा सकता है –

(1) ज्ञानेन्द्रियों का महत्व – बच्चों को किसी ज्ञान की प्राप्ति केवल कल्पना या पुस्तकों को पढ़ लेने की अपेक्षा अपनी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से अधिक सरलता के साथ और अधिक स्थाई रूप में हाती है। ज्ञानेन्द्रियाँ ही वास्तव में ज्ञान के द्वार हैं। शिक्षण में सहायक सामग्री के द्वारा ज्ञान को ऐसे बनाने का प्रयास किया जाता है जिससे वह बच्चों की ज्ञानन्द्रियों में पहुँच सके और ज्ञानन्द्रियों के माध्यम उनके मस्तिष्क में प्रवेश पा सके ।

(2) स्थूल और प्रत्यक्ष प्रस्तुतीकरण का महत्व – सूक्ष्म बातों को स्थूल रूप देने और बच्चों के प्रत्याक्षीकरण में आने देने योग्य बनाने के लिए शिक्षण में सहायक सामग्री की आवश्यकता है। उदाहरण के तौर पर गुड़हल के फूल को कक्षा में ले जाना उसका स्थूल रूप प्रस्तुत करता है।

(3) स्पष्ट और स्थायी धारणा – जो भी ज्ञान बच्चों को दिया जाए उसके प्रति बच्चों की परिकल्पना या धारणा स्पष्ट और स्थायी तभी हो सकती है जब उस ज्ञान को शिक्षक बच्चों के सम्मुख स्थूल अथवा प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत करे। जितना अधिक बच्चों को स्पष्ट और स्थायी रूप में प्रस्तुत करे, जितना अधिक बच्चों को प्रत्याक्षीकरण का अवसर दिया जाएगा उतनी ही स्पष्ट और स्थायी धारणा उनकी विषय के प्रति गहन होगी। अतः इस दृष्टि से शिक्षण सामग्री अथवा सहायक सामग्री को प्रयोग किया जाना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

(4) रोचकता एवं मनोरंजन का महत्व – शिक्षण में सहायक सामग्री का उपयोग करने से विषय रोचक एवं मनोरंजक हो जाता है ।इससे नीरस विषय को भी रोचक तरीके से सिखाया जा सकता है और बच्चों की उकताहट और अरूचि को दूर किया जा सकता है।

(5) ध्यान और एकग्रता का महत्व – विषय अथवा पाठ में बच्चों का ध्यान केन्द्रित करने में सहायक सामग्री का बहुत महत्व है।किसी नमूने, चित्र या आकृति को देखकर बच्चों का ध्यान उस ओर आसानी से केन्द्रित हो जाता है और यदि वह आकर्षक तरीके से बनाई गई हो तो उसके प्रति एकाग्रता भी बच्चों में आ जाती है जिससे उस पाठ या विषय का ज्ञान बच्चों को सुगम और सुग्राह्य बन जाता है।

(6) शिक्षक के लिए सरलता – शिक्षण सामग्री का उपयोग जहाँ बच्चों के लिए विषय को सरल और सुगम बनाता है वहीं शिक्षक को भी शिक्षण कार्य को अधिक सरल और सफल बनाने में सफलता मिलती है।जिन बातों को शिक्षक बच्चों को स्पष्ट करने में कठिनाई महसूस करते हैं वही बातें उपयुक्त शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग से बच्चों को अधिक सरलतापूर्वक स्पष्ट कर सकते हैं।इससे शिक्षक का श्रम कहीं अधिक कम हो जाता है।

(7) बालक के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन – बच्चों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन करने के लिए यह आवश्यक है कि कक्षा में शिक्षक की अपेक्षा बच्चे अधिक क्रियाशील रहें। सहायक सामग्री के प्रयोग से बच्चे शारीरिक और मरनसिक रूप से अधिक क्रियाशील एवं सक्रिय रहते हैं।

(8) वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास – सहायक सामग्री के प्रयोग से बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण या विषय के प्रति उचित दृष्टिकोण उत्पन्न हो जाता है।साथ ही वे विभिन्न प्रकार के उपकरणों का उपयोग करके परीक्षण,निरीक्षण एवं स्मरण शक्ति का विकास करके उपयोगी निष्कर्ष निकाल लेते हैं।

अधिगम संसाधनों का प्रबंधन

शिक्षण संसाधनों का उपयोग करते समय कुछ महत्वपूर्ण बातों को ध्यान रखना आवश्यक है –

1. सहायक सामग्री को उतनी ही देर तक दिखायी जाए या प्रयोग में लायी जाए जितनी देर उसको दिखाना या प्रयोग किया जाना आवश्यक हो।प्रयोग के बाद उसे सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए।
2. छोटी कक्षा में कम आयु के बच्चों के लिए इसका उपयोग अधिक करना चाहिए बड़ी कक्षा में कम।
3. सहायक सामग्री का उपयोग पाठ में उचित स्थान पर केवल आवश्यकता पड़ने पर ही करना चाहिए।
4. एक ही पाठ में अत्यधिक रूप में सहायक सामग्री का उपयोग उचित नहीं है अन्यथा वह कक्षा में प्रदर्शनी का रूप ले लेगा तथा मूल विषयवस्तु प्रमुख न रहकर गौण हो जाएगा।
5. सहायक सामग्री के प्रयोग और उसे दिखाने में अधिक समय नहीं लगाना चाहिए अन्यथा पाठ अधूरा रह जाएगा।
6. बच्चों को इस प्रकार के अवसर दिए जाएँ कि वे स्वयं कक्षा में सहायक सामग्री का भली प्रकार उपयोग करना सीख जाएँ।
7. जहाँ तक हो सके स्वयं के द्वारा बनाए गए सहायक सामग्री का उपयोग किया जाए।

अधिगम संसाधनों के प्रकार

अधिगम कष्टसाध्य तथा उद्देश्य परक प्रक्रिया है। अधिगम के लिए अधिगमकर्ता को कठोर परिश्रम करना पड़ता है। उसे इस हेतु अपने जीवन का अमूल्य समय देना होता है। अधिगम को सरल, सरस तथा बोधगम्य बनाने के लिए शिक्षा शास्त्रियों ने अनेक प्रयास किए हैं। इसके फलस्वरूप ही यह निष्कर्ष निकला है कि अधिगम सामग्री के प्रयोग से अधिगम सरल तथा आकर्षक बनता है। इसलिए आज प्रत्येक विषय के शिक्षण में अधिगम सामग्री का प्रयोग किया जाता है। शिक्षण साधन या सहायक सामग्री से तात्पर्य कक्षा शिक्षण मं प्रयोग की जाने वाली उन सामग्रियों से है जो देखी, और सुनी या देखी अथवा केवल सुनी जा सकती हैं। इनमें दृश्य और श्रव्य इन्द्रियों के प्रमुख रूप से सक्रिय होने के कारण इन साधनों को दृश्य–श्रव्य सामग्री भी कहते हैं।

शिक्षण साधनों को उनके स्वरूप और कार्य के आधार पर निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है –

(1) दृश्य सामग्री :– दृश्य सामग्री से तात्पर्य कक्षा में प्रयुक्त उन साधनों से है जिन्हें शिक्षक और विद्यार्थी देख सकते हैं। इसके अंतर्गत मूलवस्तुएँ, श्यामपट्ट, नमूना, मॉडल, चित्र फोटोग्राफ, मानचित्र, प्रोजेक्टर आदि प्रमुख रूप से आते हैं।

सामाजिक विज्ञान/सामाजिक अध्ययन शिक्षण की दृश्य सामग्रियाँ

दृश्य सामग्रियों के अन्तर्गत शिक्षण में प्रयोग किये जाने वाले वे उपकरण सम्मिलित किये जाते हैं, जिन्हें दिखाकर शिक्षक शिक्षण उद्देश्य की पूर्ति करता है। जब कोई भाव, विचार या तथ्य मौखिक कथन द्वारा नहीं स्पष्ट हो पाता है तो स्थूल वस्तु दिखाकर उसे स्पष्ट करने की चेष्टा की जाती है।

सामाजिक विज्ञान के दृश्य उपकरणों में मूल पदार्थ, नमूना, मॉडल, चित्र, फोटोग्राफ, मानचित्र, ग्लोब, डायग्राम, श्यामपट्ट, बुलेटिन–बोर्ड, फ्लालैन बोर्ड, चित्र विस्तारक यंत्र प्रमुख रूप से आते हैं।

कक्षा के दृश्य उपकरण

1. मूल पदार्थ – मूल पदार्थ से आशय उस वस्तु से है जो अपने मूल रूप में कक्षा में लाई जा सकती है और विद्यार्थियों को प्रदर्शित की जा सकती है। सामाजिक विज्ञान शिक्षण में ऋतु मापक उपकरण, सर्वे से सम्बन्धित उपकरण, कृषि उपज से सम्बन्धित वस्तु आदि पदार्थों का आवश्यकतानुसार प्रदर्शन किया जा सकता है।

इनका प्रयोग पाठ की प्रस्तावना तथा पाठ के विकास दोनों के लिए किया जा सकता है। विद्यार्थी इन्हें रूचिपूर्वक देखते हैं इससे उनका ज्ञान स्थायी हो जाता है। मूल पदार्थों के प्रयोग में यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी वस्तुएँ जो उनके आस–पास हैं और वे जिन्हें रोज देखते व प्रयोग करते हैं कक्षा में लाना उचित नहीं है।

कुछ मूल पदार्थ विद्यार्थियों की सहायता से एकत्र कराये जा सकते हैं। शिक्षक स्वयं भी इन्हें एकत्र कर सकते हैं।

2. नमूना – कक्षा शिक्षण में सदैव मूल पदार्थ लाना सम्भव नहीं होता है। चट्टानें खनिज पदार्थ, मिट्टी, औद्योगिक क्षेत्र का उत्पादन आदि अपने मूल स्वरूप में कक्षा में नहीं लाया जा सकता है। अतः ऐसी वस्तुओं के नमूने कक्षा में प्रदर्शित किये जा सकते हैं। मूल वस्तु के अभाव में इनका उपयोग कक्षा में अच्छा रहता है। नमूनों का प्रयोग कक्षा शिक्षण की प्रत्येक अवस्था में किया जा सकता है। विद्यार्थी इन्हें कक्षा में तो देख ही सकते हैं साथ ही शिक्षक के निर्देश से अपने रिक्त समय में विद्यालय के विषय के संग्रहालय में भी देख सकते हैं और ज्ञानार्जन कर सकते हैं।

सामान्यता नमूने कई प्रकार से एकत्र किये जा सकते हैं– शिक्षक और विद्यार्थी भ्रमण के समय नमूने एकत्र कर सकते हैं, कुछ नमूने बाजार से क्रय किये जा सकते हैं। यदि अन्य संस्थाओं में नमूने अधिक संख्या में हैं तो आवश्यकतानुसार आपस में उन्हें बदला भी जा सकता है।

शिक्षक नमूने को शिक्षण की दृष्टि से उपयोग कर सकें इसके लिए नमूनों को व्यवस्थित रूप से रखना अति आवश्यक है। नमूनों पर लेबल लगाकर और एक प्रकार के नमूने एक स्थान पर एकत्रित करके रखे जा सकते हैं। आवश्कतानुसार इन्हें शीशे की अलमारियों में बन्द करके रख सकते हैं जिससे विद्यार्थी उन्हें अपने खाली समय में देख सकें और वे सुरक्षित भी रहें।

3. मॉडल – मॉडल वास्तविक वस्तु के प्रतिरूप होते हैं। इनका सम्बन्ध किसी स्थान या भूक्षेत्र से भी हो सकता है। यह मूल वस्तु या भू–क्षेत्र या भू–खण्ड का छोटे मापक पर छोटे पिण्ड द्वारा प्रदर्शन होता है, जिसमें कुछ चुने गए लक्षणों को निरूपित किया जाता है। मॉडल त्रिआयामी होते हैं अतः आकार को छोड़कर वस्तु विशेष का पूरा आभास देते हैं। मूल वस्तु के कक्षा में न ला पाने अथवा उस स्थान पर ले जाकर वस्तु को न दिखा पाने की दशा में मॉडल शिक्षा देने का सबसे अच्छा साधन है । कई बार नमूने से मूल वस्तु की कल्पना करना कठिन हो जाता है, जैसे किसी पर्वत की चट्टान का एक नमूना यदि कक्षा में दिखाया गया तो पूरी चट्टान के आकार–प्रकार की कल्पना करना मुश्किल होगा। मॉडल द्वारा यह कार्य सरलता से हो सकता है।

सामाजिक विज्ञान में मॉडल विभिन्न प्रकरणों से सम्बन्धित हो सकते हैं, जैसे – ग्लोब, पृथ्वी की भूरचना, नदियों की विभिन्न अवस्थाएँ, ज्वालामुखी पर्वत, टुण्ड्रा या अन्य प्रदेश के निवासियों का घर व परिवेश, ऐतिहासिक इमारत, युद्ध योजना, खान से कोयला निकालना, बाँध, सिंचाई योजना, उद्योग कारखाना इत्यादि।

सामाजिक विज्ञान में मॉडल के प्रयोग से निम्नांकित लाभ होते हैं –

1. विद्यार्थियों को वस्तु के आकार और उसमें प्रदर्शित लक्षणों का ज्ञान उसके सही अनुपात और रूप में होता है।

2. मॉडल तैयार करने में विद्यार्थियों का सहयोग लिया जाता है। 'करके सीखने' का अवसर मिलता है। विद्यार्थियों में क्रियाशीलता बनी रहती है और उनकी अभिव्यंजन शक्ति को प्रोत्साहन मिलता है;
3. मॉडल में विद्यार्थियों का ज्ञानार्जन तो होता ही है साथ ही निरीक्षण, कल्पना आदि मानसिक शक्तियों का भी विकास होता है;

आज सामाजिक विज्ञान के अध्ययन–अध्यापन में मॉडलों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इसके लिए अनके प्रकार के मॉडलों का प्रयोग किया जा सकता है।

4. चित्र – सामाजिक विज्ञान विषय के शिक्षण में चित्रों को बहुत महत्व है। इस विषय के अधिकांश प्रकरणों पर चित्र की रचना की जा सकती है। ये अपेक्षाकृत सस्ते होते हैं; इन्हें कक्षा में सरलता से प्रदर्शित किया जा सकता है और कक्षा शिक्षण के लगभग प्रत्येक पद पर इनका उपयोग किया जा सकता है। चित्र के विषय अग्रांकित हो सकते हैं– पर्वत, ज्वालामुखी का उद्‌गार, ऋतुमापक यंत्रों व सर्वे के उपकरणों आदि के चित्र, उद्योग–धंधे, सिंचाई के साधन, मानव निवास, वेशभूषा, आर्थिक क्रियायें, नागरिक जीवन, प्राकृतिक वनस्पति, जीव–जन्तु इत्यादि। वे संज्ञानात्मक एवं भावात्मक एवं उद्‌देश्य की पूर्ति में विशेष सहायक होते हैं।

सभी विद्यार्थी चित्रकला में दक्ष नहीं होते हैं, अतः कक्षा के सभी विद्यार्थियों से कक्षोपयोगी चित्र रचना की अपेक्षा करना उचित नहीं कहा जा सकता है। फिर भी कुछ ऐसे विद्यार्थियों को चित्र के लिए उत्साहित करना चाहिए जो इस कार्य में रूचि रखते हों। चित्र के माध्यम से पाठ में विद्यार्थियों की रूचि जागृत की जा सकती है और उनका ध्यान पाठ में लगाया जा सकता है। इससे उनका ज्ञानार्जन होता है। उनकी निरीक्षण व कल्पना शक्ति का विकास होता है। कक्षा में आवश्यक होने पर ही चित्र का प्रर्दशन किया जाना चाहिए और प्रयोजन समाप्त हो जाने पर हटा देना चाहिए, जिससे विद्यर्थियों का ध्यान पाठ के अन्य अंगों पर भी केन्द्रित हो सके।

आवश्यकता से अधिक चित्रों का कक्षा में उपयोग शिक्षण को बाधित कर देता है। एक बात यह भी ध्यान रखनी चाहिए कि सभी बातों को चित्रित नहीं किया जा सकता है।

5. फोटोग्राफ – फोटोग्राफ सामाजिक विज्ञान शिक्षण में अत्याधिक उपयोगी है। किसी सर्वेक्षण में स्थान विशेष के रेखा मानचित्र आदि तैयार करने के साथ वहाँ के तमाम फोटोग्राफ खींचे जा सकते हैं। फोटोग्राफ में दृश्य का प्रदर्शन बिल्कुल शुद्ध होता है। क्योंकि फोटो में दूरियों के बीच का अनुपात समान रहता है। कम परिश्रम और कम व्यय में ही फोटोग्राफ तैयार किये जा सकते हैं।

विमान द्वारा खींचे गए फोटोग्राफ सामाजिक विज्ञान के अध्ययन–अध्यापन में बहुतायत से प्रयोग किए जाते हैं। इनके द्वारा भूतल का स्थलाकृतिक सर्वेक्षण शीघ्रतापूर्वक व शुद्धता से हो जाता है।

सामाजिक विज्ञान में शिक्षकों को यथा अवसर उपलब्ध फोटोग्राफ का अवश्य प्रयोग करना चाहिए। स्थानीय अथवा शैक्षिक भ्रमण के समय फोटोग्राफ्स लिये जा सकते हैं और कक्षा में प्रयोग हेतु सुरक्षित रूप से रखे जा सकते हैं।

फोटोग्राफ को देखकर स्थान विशेष के दृश्य भूमि की कल्पना करने और उसके वर्णन से विद्यार्थियों के मानसिक शक्तियों का विकास होता है। अतः शिक्षक को सामाजिक विज्ञान शिक्षण में फोटोग्राफ के प्रयोग के लिए अवश्य प्रयास करना चाहिए।

6. मानचित्र – सामाजिक विज्ञान में मानचित्रों को बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः मानचित्र पृथ्वी का प्रतिनिधित्व करते हैं। मानचित्र में पृथ्वी अथवा उसके किसी भाग को एक निश्चित मापक पर वहाँ के दृश्य भूमि के कुछ निश्चित लक्षणों सहित प्रस्तुत किया जाता है। सारी पृथ्वी अथवा उसके विभिन्न भागों को कक्षा में नहीं लाया जा सकता है, और न ही क्षेत्र भ्रमण में दिखाया जा सकता है। केवल मानचित्र के माध्यम से उसे विद्यार्थयों

के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सकता है कि मानचित्र की सहायता से पूरी दुनिया को कक्षा में लाया जा सकता है और उसका अध्ययन–अध्यापन किया जा सकता है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण की दृष्टि से एक अच्छे मानचित्र में निम्नांकित विशेषताएँ होनी चाहिए –

1. एक मानचित्र में यथा सम्भव एक ही तथ्य प्रदर्शित किया जाए।
2. मानचित्र उचित प्रक्षेप पर बने होने चाहिए, जिससे भू–आकार में विकृति न आय।
3. मानचित्र मापक के अनुसार हों जिसका उल्लेख उसमें हो। इसमें दिशा एवं संकेतक भी होना चाहिए।
4. रंगों का प्रयोग भू–रचना को प्रदर्शित करने वाले मानचित्रों में अवश्य हो। कन्टूर रेखाओं द्वारा भी भू–रचना प्रदर्शित की जा सकती है।
5. मानचित्र में शीर्षक अवश्य हो।
6. मानचित्र में प्रदर्शित तथ्य सही होने चाहिए।

सामाजिक विज्ञान अध्ययन में मानचित्रों के अभ्यास का महत्वपूर्ण स्थान है।

यदि विद्यार्थी मानचित्र को देखकर उसमें निहित तथ्यों को समझते हैं और उन पर सही निर्णय ले पाते हैं तो सामाजिक विज्ञान उनके लिए जीवन्त विषय हो जाएगा।

भित्ति मानचित्र – कक्षा में शिक्षक की दृष्टि से भित्ति मानचित्रों का प्रमुख स्थान है। ये मानचित्र ऐसे होते हैं जिन्हें कक्षा में टाँगा जा सकता है। इन मानचित्रों में अच्छे मानचित्रों की विशेषताएँ, जिनका पहले वर्णन किया जा चुका है, अवश्य होने चाहिए। भित्ति मानचित्र को अधिक समय तक सुरक्षित रखने के लिए उसके पीछे कपड़े का अस्तर लगाया जा सकता है। आजकल प्लास्टिक कोटेड भित्ति मानचित्र भी मिलते हैं जो अधिक समय तक खराब नहीं होते हैं, उन्हें आसानी से झाड़–पोंछ कर साफ भी किया जा सकता है और लपेट कर रखा जा सकता है।

भित्ति का आकार इतना बड़ा होना चाहिए कि कक्षा में पीछे बैठा विद्यार्थी भी उसे देख और समझ सके।

एटलस – एटलस विभिन्न प्रकार के मानचित्रों का समूह है। अतः सामाजिक विज्ञान के अध्ययन–अध्यापन में सर्वाधिक उपयोगी है। एटलस में संसार, विभिन्न महाद्वीपों, देशों आदि के मानचित्र उनके स्थिति, भू–रचना, जलवायु, वनस्पति, राजनैतिक विभाजन, ऐतिहासिक स्थल, उद्योग धंधे, जनसंख्या आदि तथ्यों को प्रदर्शित करते हुए रखे जाते हैं। किसी महाद्वीप अथवा देश के लिए अलग से इनका संकलन किया जा सकता है।

सामाजिक विज्ञान अध्ययन कक्ष में एटलस का होना अनिवार्य है। साथ ही प्रत्येक विद्यार्थी भी अपना एटलस रखे तो अच्छा होता है। एटलस ऐसा हो जिसमें तथ्यों को शुद्ध और स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया गया हो। विद्यार्थी कैसे एटलस का सदुपयोग करेंगे इससे उन्हें अवगत करा देना चाहिए। किसी भी एटलस का प्रयोग करने के पूर्व उसकी प्रारम्भ की प्रस्तावना, निर्देश आदि सावधानीपूर्वक विद्यार्थी से पढ़ लेने की अपेक्षा की जानी चाहिए। एटलस द्वारा विद्यार्थी अनेक पर्यावरणीय तथ्यों को स्वतः जान जाता है।

एटलस से कई लाभ होते हैं। इनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं –

1. इनकी सहायता से कक्षा में शिक्षण किये गये कई तथ्यों को विद्यार्थी स्वतः अपने एटलस में देख सकते हैं।
2. इसमें विद्यार्थी पूरे संसार का एक समग्र चित्र अपनी कल्पना मं साकार कर सकते हैं।

3. उन्हें अपने देश के सन्दर्भ में अन्य देशों, स्थानों आदि के स्थिति, विस्तार, आकार, दूरी, दिशा आदि का ज्ञान हो जाता है।
4. विद्यार्थी विभिन्न देशों का तुलनात्मक अध्ययन कर पाते हैं।
5. एटलस की सहायता से अध्ययन करने में विद्यार्थी के समय तथा शक्ति का सदुपयोग होता है, और उन्हें सामाजिक विज्ञान विषय जीवन्त प्रतीत होता है।
6. विद्यार्थियों में स्वाध्याय की आदत बनती है।

7. ग्लोब – पृथ्वी की आकृति का प्रतिरूप होने के कारण ग्लोब का सामाजिक विज्ञान सामाजिक अध्ययन शिक्षण में बड़ा महत्व हैं इसके द्वारा विद्यार्थियों को पृथ्वी के स्वरूप का आभास आसानी से कराया जा सकता हैं। पृथ्वी गोल है तो ग्लोब भी गोल हैं पृथ्वी अपनी धुरी पर $23\frac{1}{2}$ अंश झुकी है तो यह भी अपनी धुरी पर अंश झुका रहता है। सामाजिक विज्ञान के कई प्रकरणों के शिक्षण में ग्लोब बहुत सहायक होता है। अक्षांश–देशान्तर, दिन–रात, जलवायु, वायुदाब पेटियाँ, वनस्पति, प्राकृतिक प्रदेश, ऋतु परिवर्तन, पृथ्वी की गति इत्यादि का शिक्षण ग्लोब की सहायता से सुगम हो जाता है। ग्लोब विश्व एकता की ओर भी विद्यार्थियों का ध्यान आकृष्ट करता है। इसीलिए सामाजिक विज्ञान की कक्षा में ग्लोब का होना अनिवार्य माना जाता है।

8. डायग्राम – किसी कथन, परिभाषा, या निष्कर्ष को चित्रात्मक ढंग से स्पष्ट करने हेतु बनाये गये चार्ट, ग्राफ या रेखाचित्र को डायग्राम या आरेख कहते हैं। सामाजिक विज्ञान में तथ्यों, अमूर्त भावों, अथवा प्रत्ययों को स्पष्ट करने के लिए ये विशेष रूप से उपयोगी होते हैं। इसे रेखाओं, ज्यामितीय आकृतियों तथा संकेतों की सहायता से बनाया जाता है। इससे विषय–वस्तु को रोचक और बोधगम्य बनाया जा सकता है।

9. श्यामपट्ट – सामान्य रूपसे प्रत्येक विषय के कक्षा शिक्षण में श्यामपट्ट बहुत उपयोगी रहता है। सामाजिक विज्ञान शिक्षण में तो इसका विशेष महत्व है।

श्यामपट्ट लकड़ी, ईंट–सीमेंट, प्लास्टिक, स्लेट आदि का बना हो सकता है। यह सपाट सतह वाला प्रायः काले या अन्य हल्के रंगों वाला बनाया जाता है। जिस पर चॉक (सफेद व रंगीन) या खड़िया से लिखा जाता है। इसे चॉक बोर्ड, वाल बोर्ड भी कहते हैं। अधिकांशतया इसके सपाट सतह पर काली पालिस होने के कारण इसे श्यामपट्ट या ब्लेक बोर्ड के नाम से अधिक जाना जाता है।

सामाजिक विज्ञान की कक्षा में शिक्षक श्यामपट्ट का प्रयोग शिक्षण के लगभग सभी सोपानों पर कई रूपों में कर सकता है। इनमें से प्रमुख निम्नांकित है –

1. पाठ का सारांश तथा गृहकार्य लिखने के लिए।
2. किसी स्थान का नाम, कठिन शब्द आदि लिखने के लिए।
3. मानचित्र, रेखाचित्र आदि बनाने के लिए।
4. सामाजिक विज्ञान/सामाजिक अध्ययन से सम्बन्धित विभिन्न आकृतियों के चित्रमय एवं तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत करने के लिए।
5. किसी स्थान की स्थिति, आकार, अन्य स्थानों से दूरी आदि समझने के लिए।
6. आँकड़ों, सहायक पुस्तकों के नाम आदि प्रस्तुत करने के लिए।

10. बुलेटिन बोर्ड – शैक्षिक पर्यावरणीय सामग्री विविध स्थानों पर उपलब्ध होती है। समाचार–पत्र, पत्रिकाओं आदि में इस प्रकार के चित्र, लेख व समाचार अक्सर दिखाईं पड़ते हैं जिनका सामाजिक विज्ञान का

शिक्षक सफलतापूर्वक उपयोग कर सकता है। ऐसे सामग्री के लिए बुलेटिन बोर्ड या प्रदर्शन पट्ट बहुत उपयोगी रहता है। बुलेटिन बोर्ड कक्षा के अन्दर एवं बाहर तथा विद्यालय में किसी दीवार पर टाँगने हेतु बनवाया जा सकता है। लकड़ी के बने इस बोर्ड में अन्दर रंगीन मोटा कपड़ा लगा सकते हैं जिससे प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री पिन से लगाईं जा सकें। इसमें जालीदार दरवाजा या काँच लगा होना चाहिए, जिससे अन्दर की सामग्री बाहर से स्पष्ट रूप से देखी जा सके। इसे विद्यार्थियों की आयु के हिसाब से इतनी ऊँचाई पर रखना चाहिए कि उन्हें अवलोकन में कठिनाई न हो। विद्यार्थी अपने अवकाश के समय इनका अवलोकन कर सकते हैं इससे उनकी रूचि व जिज्ञासा विषय की ओर जागृत होगी। इससे उनका पर्यावरण विषयक ज्ञान भी बढ़ेगा और शिक्षक के समय में भी बचत होगी।

बुलेटिन बोर्ड में प्रस्तुत की जाने वाली सामग्री शिक्षक खुद खोज सकता है। विद्यार्थियों को भी ऐसी सामग्री के संकलन के लिए प्रेरित किया जा सकता हैं। बुलेटिन बोर्ड पर प्रस्तुत सामग्री को एक निश्चित समयान्तर (तीन दिन या एक सप्ताह) पर बदल देना चाहिए।

11. फ्लालेन बोर्ड – यह बोर्ड जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है फ्लालेन के कपड़े का बना होता है। वांछित आकार के लकड़ी के फ्रेम पर फ्लालेन के कपड़े को खींच कर फैला देते हैं और चारों ओर कील की सहायता से कपड़े को फ्रेम पर जड़ देते हैं। यदि कागज पर बने किसी आकार के पीछे रेगमाल, की ओर से लगाने पर चिपक जाता है। अतः चित्र, मानचित्र, आदि को कागज पर बनाकर और उन्हें वांछित आकार में काट कर तथा पीछे की ओर रेगमाल चिपकाकर आवश्यकतानुसार फ्लालेन बोर्ड की सहायता से कक्षा में प्रदर्शित किया जा सकता है।

फ्लालेन बोर्ड से यह भी सुविधा रहती है कि पूरे चित्र या मानचित्र को एक साथ न प्रस्तुत करके पाठ के विकास के साथ–साथ वांछित आकृति का हिस्सा ही उस पर प्रस्तुत किया जाए। इस प्रकार पाठ की समाप्ति पर पूरी आकृति बोर्ड पर तैयार हो जाती है। फ्लालेन बोर्ड में फ्लालेन के कपड़े के स्थान पर खद्दर का मोटा कपड़ा भी प्रयोग किया जा सकता है।

12. दृश्य विस्तारक यंत्र – दृश्य विस्तारक यंत्र से आशय उन सभी उपकरणों से है जिसकी सहायता से किसी चित्र या अर्धचित्र आदि को बड़े आकार में देखा जा सकता है।

स्टीरियोस्कोप – इस उपकरण द्वारा चित्रों को बड़े आकार में देखा जाता है। इस उपकरण में इस प्रकार लेन्स की व्यवस्था रहती है कि जब शिक्षक चित्र उसमें चढ़ाता है तो देखने ताले उसका बड़ा रूप देख लेते हैं। इसमें चित्र की लम्बाई, चौड़ाई के साथ गहराई भी स्पष्ट होती है।

मैजिक लालटेन – इसकी सहायता से चित्र को पर्दे पर प्रक्षेपित करके उसे सम्पूर्ण कक्षा को एक साथ दिखाया जा सकता है। इसमें पर्दे पर प्रक्षेपित करने वाली सामग्री की स्लाइड तैयार करनी होती है। इस स्लाइड के माध्यम से दृश्य भूमि आदि का प्रदर्शन किया जा सकता है। इसमें लाभ यह रहता है कि जब तक चाहे प्रक्षेपित आकृति पर्दे पर दिखाई जा सकती है।

एपिस्कोप – एपिस्कोप की सहायता से चित्रों को बड़े आकार में दिखाने के लिए उनकी स्लाइड बनाने की आवश्यकता नहीं हाती है। इसमें सीधे पाठ्य पुस्तक, सन्दर्भ पुस्तक, फोटोग्राफ, पत्र–पत्रिका के चित्र, समाचार–पत्र, मानचित्र रेखाचित्र आदि का प्रयोग करते उन्हें पर्दे पर प्रक्षेपित किया जा सकता है। इसमें आवश्यकतानुसार पर्दे पर रखा जा सकता है। मैजिक लालटेन की अपेक्षा यह अधिक उपयोगी उपकरण है इसके चलाने में शिक्षक को विशेष सावधानी रखनी होती है।

ओवर हेड प्रोजेक्टर – ओवरहेड प्रोजेक्टर आज शिक्षा में विशेष रूप से उपयोगी हो गया है। इसमें प्रक्षेपित की जाने वाली पाठ्य सामग्रियों (चित्र, मानचित्र ग्राफ, फोटो, पुस्तकों के उद्धरण, पाठ के सारांश आदि) को एक ट्रांसपेरेन्सी पर चित्रित कर लिया जाता है। यह ट्रांसपेरेन्सी या पारदर्शक शीट एसीटेट की बनी होती है। इस पर फाइबर प्वांइट कलम या साधारण स्केच पेन से लिखा जा सकता है। इसमें शिक्षक अपने मेज पर ही ओवर हेड प्रोजेक्टर रखकर विद्यार्थियों की ओर पीठ किये बिना अपने पीछे की स्क्रीन पर पाठ्य सामग्री ट्रांसपेरेन्सी पर बनाकर प्रक्षेपित कर सकता है वह जितनी देर तक चाहे इसे पर्दे पर रख सकता है।

विषय की शिक्षा में ओवरहेड प्रोजेक्टर बहुत उपयोगी हो सकता है। इसकी सहायता से एक बड़ी कक्षा का भी उतने समय में ही शिक्षण सम्पन्न किया जा सकता है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण की श्रव्य सामग्रियाँ

सामाजिक विज्ञान शिक्षण की श्रव्य सामग्रियों में वे उपकरण सम्मिलित किये जाते हैं। जिनके द्वारा सुनाकर अथवा विद्यार्थियों की कर्णेन्द्रियों को सक्रिय करके शिक्षक अपने शिक्षण उद्देश्य को पूरा करने का प्रयास करता है। इनके द्वारा सामाजिक विज्ञान के संज्ञानात्मक तथा भावात्मक उद्देश्यों की पूर्ति होती है। श्रव्य उपकरण में रडियो, रिकार्ड प्लेयर तथा टेपरिकार्डर प्रमुख हैं। अब इनका क्रमशः वर्णन किया जा रहा है।

1. रेडियो – रेडियो एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा हम सुन पाते हैं। इसमें कर्णेन्द्रिय विशेष रूप से सक्रिय रहती हैं। आजकल रेडियो एक ऐसा सर्वसुलभ साधन हो गया है जो प्रायः सभी घरों में उपलब्ध रहता है और बहुत महँगा भी नहीं होता है। इसमें कार्यक्रम का प्रसारण एक केन्द्रीय स्थान से होता है जिसे रेडियो सेट के माध्यम से सुना जा सकता है। प्रसारित होने वाले कार्यक्रम पहले से रेकार्ड भी किये जा सकते हैं अथवा उनका सीधा प्रसारण भी हो सकता है।

रेडियो के प्रसारण सामाजिक विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी रहते हैं। उससे उन्हें विभिन्न जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। विभिन्न देशों व स्थानों के जीवन, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक घटनाओं आदि के विषय में पता चलता है। ये ज्ञानार्जन में तो सहायक होते ही हैं, इनके द्वारा भावात्मक एवं व्यावहारिक उद्देश्यों की भी एक सीमा तक पूर्ति होने की सम्भावना रहती है। विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में व्यापकता, राष्ट्रीयता एवं अन्र्तराष्ट्रीयता की भावना का विकास इनके द्वारा सम्भव हो पाता है।

रेडियो की एक सबसे बड़ी कमी यह है कि इन्हें शिक्षक एवं विद्यार्थी की सुविधा के अनुसार प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

2. रिकार्ड प्लेयर – रिकार्ड प्लेयर ग्रामोफोन की भाँति एक यंत्र है जिसे बिजली की सहायता से चलाया जा सकता है। इसमें रिकार्ड का प्रयोग करते हैं। इससे राष्ट्रगीत या भाषण के रिकार्ड का सामाजिक विज्ञान/सामाजिक अध्ययन की कक्षा में प्रयोग किया जा सकता है। चूँकि रिकार्ड बार–बार रिकार्ड प्लेयर से सुना जा सकता है, रेडियो की अपेक्षा विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी होता हैं। रिकार्ड महँगे होते है। अतः शिक्षण की दृष्टि से वांछित रिकार्ड प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

3. टेप रिकार्डर – श्रव्य सामग्रियों में टेप रिकार्डर सर्वाधिक उपयोगी शैक्षिक सामग्री है। इसमें किसी विषय, तथ्य अथवा विवरण के टेप तैयार कर लिये जाते हैं और उसको टेप रिकार्डर पर चलाकर पुनः–पुनः सुना जा सकता है। आवश्यकतानुसार बीच में रोककर अथवा फिर पीछे से चलाकर कथन को बार–बार दोहराया जा सकता है। शैक्षिक महत्व की बातों, विचारों कहानियों, यात्रा वृतांतों आदि के टेप का उपयोग शिक्षक कर सकता है।

अपेक्षाकृत सस्ता होने के कारण विद्यालय में इसको क्रय करके रखने में कठिनाई नहीं होती है। इसे सुविधाजनक ढंग व आसानी से प्रयोग किया जा सकता है, अतः सामाजिक विज्ञान कक्षा के निर्धारित चक्र में ही इसको विद्यार्थियों के सम्मुख लाकर प्रयोग किया जा सकता है। इससे विद्यार्थियों में पर्यावरण ज्ञान तो बढ़ेगा ही साथ ही रूचि, रचनात्मक, कल्पनाशीलता आदि गुणों का विकास भी होगा।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण की दृश्य श्रव्य सामग्रियाँ

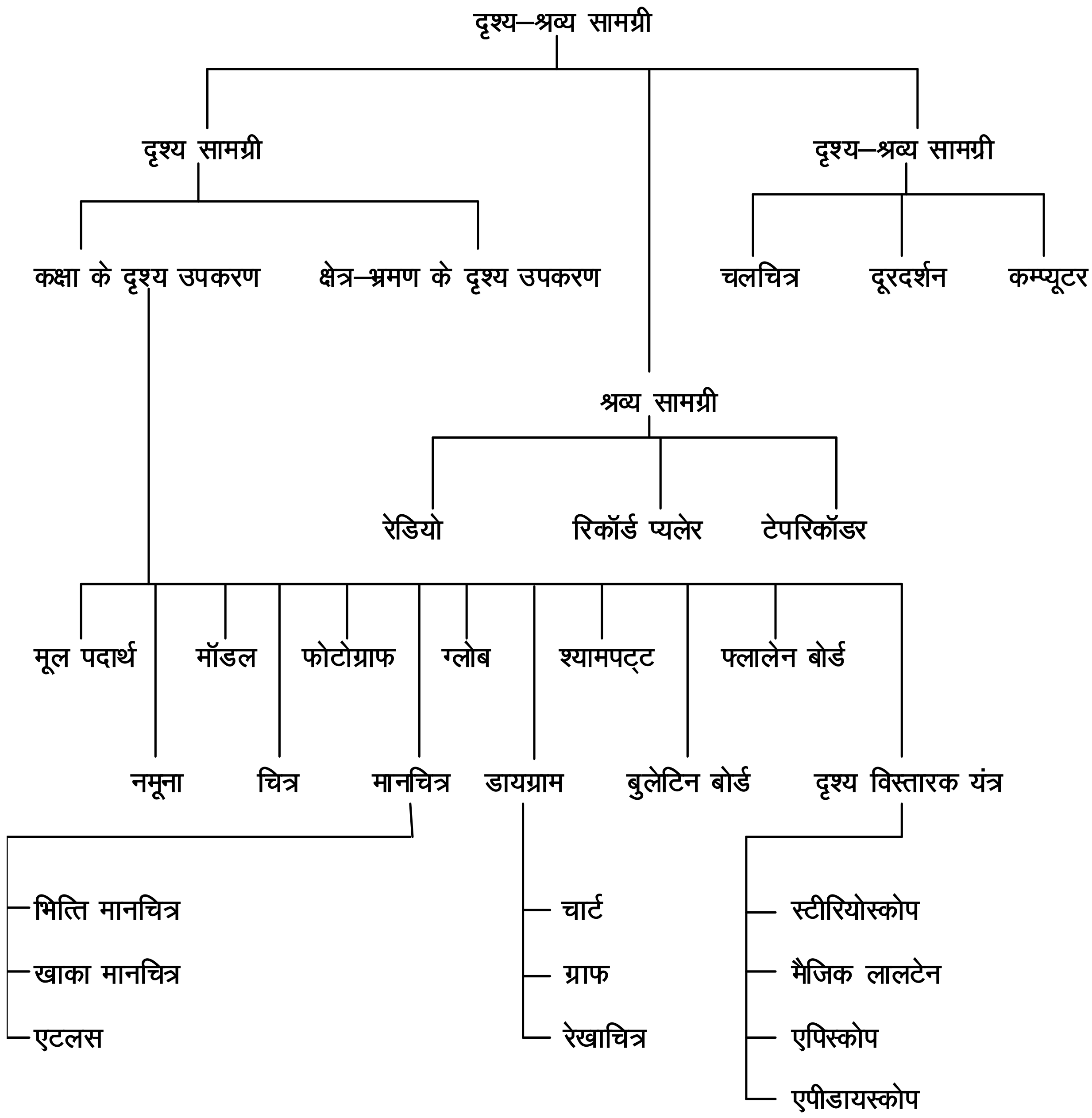

सामाजिक विज्ञान अध्ययन शिक्षण की दृश्य–श्रव्य सामग्रियों के अन्तर्गत वे उपकरण सम्मिलित किये जाते हैं जिनकी सहायता से प्रस्तुत तथ्यों, विवरणों आदि को देखा और सुना जा सकता है अर्थात् इनमें दृष्टिन्द्रियाँ एवं कर्णेन्द्रियाँ दोनों सक्रिय रहती हैं। अतः विद्यार्थियों के लिए ये अपेक्षाकृत अधिक रूचिकर एवं प्रोत्साहन प्रदान करती हैं। अतः विद्यार्थियों के लिए ये अपेक्षाकृत अधिक रूचिकर एवं प्रोत्साहन प्रदान करने वाली होती है।

चलचित्र – चलचित्र में फिल्म के प्रेक्षण के लिए साउण्ड फिल्म प्रोजेक्टर का प्रयोग करते हैं। ये फिल्म 16 और 18 एम. एम. की चौड़ाई के श्याम श्वेत तथा रंगीन दोनों रूपों में मिलते हैं। इसमें चलते–फिरते चित्र दिखाई पड़ते हैं। तथा ध्वनि भी सुनाई पड़ती है। इस प्रकार दृश्य और श्रव्य दोनों इन्द्रियों का प्रयोग होता है।

चलचित्र के द्वारा दूर स्थानों की स्थिति, वहाँ की प्राकृतिक दशाएँ, मानव जीवन आदि को सरलता से स्पष्ट किया जा सकता है। प्राकृतिक घटनाएँ, मानव के साहसिक यात्रा वृतान्त, मानव की अन्तरिक्ष मं यात्रा इत्यादि चलचित्र के माध्यम से सजीव हो उठते हैं। इसकी सहायता से घर बैठे ही तमाम उपयोगी ज्ञान प्राप्त हो जाता है। चलचित्र द्वारा संज्ञानात्मक एवं भावात्मक उद्देश्यों की पूर्ति भली प्रकार होती है। कौशलात्मक उद्देश्य की पूर्ति में इसका प्रयोग आंशिक रूप से कौशलों के प्रदर्शन, निर्देश देने आदि में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। भारत में अभी धनी विद्यालय ही इसका उपयोग कर पाते हैं।

चलचित्र से लाभ

चलचित्र के प्रयोग से निम्नांकित प्रमुख लाभ हैं –

1. कम समय में अधिक बातों को बताया जा सकता है।
2. विद्यार्थी को सत्य तथ्यों घटनाओं को दिखाया जा सकता है। इससे उनका ज्ञान यथार्थ पर आधारित रहता है।
3. इससे तथ्यों के कार्य–कारण का विवेचन भली प्रकार हो सकता है।
4. विद्यार्थियों पर इनका प्रभाव अधिक होता है और उनकी रूचि विषय में जागृत होती है।
5. विद्यार्थियों की कल्पना, निरीक्षण, तर्क, स्मृति आदि के विकास के दृष्टि से यह बहुत उपयोगी है।
6. सामाजिक विज्ञान के संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा कौशलात्मक तीनों प्रकार के पाठों के शिक्षण में चलचित्रों का उपयोग लाभदायी होता है।

टेलीविजन – वर्तमान समय में टेलीविजन या दूरदर्शन का प्रचलन बहुतायत से हो रहा है। टेलीविजन मे कार्यक्रम का प्रसारण एक प्रसारण केन्द्र से होता है। यहाँ से कार्यक्रमों की वीडियो फिल्म तैयार करके उनका प्रसारण किया जाता है, साथ ही विभिन्न आयोजनों का सीधा प्रसारण भी किया जा सकता है। अपने देश में राष्ट्रीय प्रसारण के साथ–साथ क्षेत्रीय प्रसारण भी होती हैं। प्रसारण के विभिन्न चैनेल आज उपलब्ध हैं जिसमें मनोरंजक, शैक्षिक, संगीतमय आदि तमाम प्रकार के कार्यक्रम प्रदर्शित किये जाते हैं।

टेलीविजन में दृश्य के साथ–साथ श्रव्य इन्द्रियाँ भी सक्रिय रहती हैं। अतः शिक्षण में इनका सदुपयोग किया जा सकता है। चलचित्र की ही भाँति इनसे संज्ञानात्मक तथा भावात्मक उद्देश्य की पूर्ति प्रचुर मात्रा में हो सकती है। भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक महत्व की तमाम बातें राष्ट्रीय प्रसारण व अन्य चैनलों पर प्रसारित कार्यक्रमों में दिखाई जाती हैं।

कम्प्यूटर – कम्प्यूटर का अविष्कार एक गतिमान कैलकुलेटर के रूप में हुआ था। किन्तु आज इसका प्रयोग मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होने लगा। शिक्षा भी इससे अछूता नहीं है। शिक्षक दृष्टि से कम्प्यूटर सह

अनुदेशन का विकास हुआ है। अधिगम की दृष्टि से अन्य सभी दृश्य–श्रव्य शिक्षण साधनों की तुलना में यह अधिक अच्छा सिद्ध हुआ है। यह विशिष्ट अधिगम परिस्थिति में विद्यार्थियों को क्या करना है, बताता है। यह प्रचुर मात्रा में सूचनाएँ अथवा ज्ञान अपने भंडारण इकाई में संग्रहीत करता है जिन्हें आवश्यकतानुसार तत्काल प्राप्त किया जा सकता है।

कम्प्यूटर की सहायता से इंटरनेट से सम्पर्क करके अथाह ज्ञान राशि तक पहुँचा जा सकता है। सामाजिक विज्ञान अध्ययन के शिक्षण में एक शिक्षण साधन के रूप में इसका उपयोग किया जा सकता है। किन्तु इसकी सफलता साधनों की उपलब्धता और शिक्षक की योग्यता, साधन सम्पन्नता एवं रूचि पर विशेष रूप से निर्भर करती है।

विद्यालय प्रबंधन – विद्यालय प्रबंधन प्राचीन काल से ही एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। विद्यालय प्रबंध न ही वस्तुतः शिक्षा की उन्नति तथा अवनति दोनों के लिए उत्तरदायी होता है। विद्यालय प्रबंधन ही शिक्षा की रीढ़ है। इसमें बिना किसी उचित दक्षता के कोई भी शिक्षा संस्थान अपनी शैक्षणिक गतिविधियों तथा कार्यवाहियों को ठोस रूप नहीं दे पाता।

विद्यालय प्रबंधन आज एक बड़ी चुनौती है। यह चुनौती आधुनिक शिक्षा के अपरिमित विस्तार के कारण भी ज्यादा विकराल है। प्राचीन शिक्षा पद्धति तथा बाद के विभिन्न युगों में भी यह चुनौती लगातार बनी हुई थी और इसे सुलझाने के लिए भी अनेक प्रकार के आमूलचूल परिवर्तन आ चुके हैं। पहले जहाँ चरित्र निर्माण तथा देशभक्ति की भावना शिक्षा की बुनियादी भावना थी अब वहीं कैरियर को लेकर प्राथमिकता बढ़ गई है और इसी के अनुसार शिक्षा के उत्पादन भी बदल गये हैं। परीक्षा तथा मूल्यांकन की नवीन पद्धतियों का उदय हो रहा है। आज के विद्यार्थी प्राचीन, मध्यकालीन विद्यार्थी नहीं हैं। आजकल विद्यार्थियों की विविध रूचियों और आकांक्षाओं का सीधा सामना विद्यालय प्रबंधन को करना पड़ता है।

विद्यालय प्रबंधन के अंतर्गत उन सभी आन्तरिक और बाहरी व्यवस्थाओं को शामिल किया जाता है जिनके सहयोग से विद्यालय को सुचारू और सफल रूप से चलाया जाता है। विद्यालय भवन हो या समय सारिणी या पुस्तकालय ये सभी विद्यालय प्रबंधन के आवश्यक अंग है। इनमें से किसी एक की कमी से समूची व्यवस्था बिगड़ जाती है। इन सभी हिस्सों के उचित सामंजस्य और सफल सचालन को ही विद्यालय प्रबंधन कहा जाता है।

विद्यालय में शिक्षकों के कार्य को हम सामान्यतः तीन श्रेणियों में बाँट सकते हैं :–

1. विद्यालय प्रबंधन
2. अनुशासन
3. शिक्षण

इनमें से किसी एक का भी अभाव विद्यालय के समुचित संचालन को समाप्त कर देने के लिए पर्याप्त है। विद्यालय प्रबंधन को सुचारू ढंग से चलाने के लिए विद्यालय में प्रबंधन, अनुशासन और सुचारू शिक्षण का होना आवश्यक है। इनके ठीक रहने पर अन्य बातें स्वयं ही ठीक हो जाती हैं।

विद्यालय प्रबंधन

विद्यालय–प्रबंधन के अन्तर्गत वे समस्त बातें आ जाती हैं जिनका सम्बन्ध विद्यालय की आंतरिक अथवा बाह्य व्यवस्था से होता है। शिक्षक–समुदाय, समय तालिका, परीक्षा, पाठ्यक्रम आदि सभी विद्यालय–प्रबंधन के अर्न्तगत आ जाते हैं।

विद्यालय–प्रबंधन का तात्पर्य विद्यालय की व्यवस्था के साथ–साथ मानव–सम्बन्ध से भी है। सच तो यह है कि यह सप्राण–जीवंत मानव से सम्बन्धित है, न कि जड़ पदार्थो से।

सुन्दर प्रबंधन एवं दक्ष व्यवस्था पर ही विद्यालय की सफलता एवं सार्थकता निर्भर है। चाहे अध्यापन कितना ही उच्चकोटि का हो; छात्रों की संख्या कितनी ही अधिक हो, शिक्षक कितने ही योग्य हों, किन्तु यदि विद्यालय अव्यवस्थित है तो उसका भविष्य निश्चित रूप से अंधकारमय है।

गणतन्त्र में विद्यालय–प्रबंधन

यद्यपि भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर मैकाले ने प्रभाव और उसकी पूरी प्रविधि पर अंग्रेजी वर्चस्व को समय–समय पर अनेक विद्वानों ने साबित करने की कोशिश की है, लेकिन स्वतन्त्र भारत में यह पूर्णयता सत्य नहीं है। स्वतन्त्रता के पश्चात् शिक्षा के भारतीयकरण की एक लम्बी परम्परा रही है जो अपनी कई मंजिलें तय कर चुकी है।

आज युग और समाज की आवश्यकताएँ बदल चुकी हैं। वही विद्यालय–प्रबंध इस परिस्थिति में उपादेय और समीचेन होगा जो इन परिवर्तित आधुनिक सामाजिक समस्याओं की पूर्ति में सक्षम होगा। अतः आज विद्यालय–प्रबंधन के आधार सहयोग एवं गणतंत्रात्मक क्रियाशीलन होंगे। यह सहयोग प्रशासक–प्रधानाध्यापक, प्रधानाध्यापक–अध्यापक, अध्यापक–छात्र, छात्र–छात्र तथा विद्यालय–परिवार एवं समाज के बीच होगा।

भावी समाज का निर्माण विद्यालयों में होता है। स्पष्ट है कि गणतंत्रात्मक समाजवाद की नींव वहीं दी जा सकती है। अतः विद्यालयों में गणतंत्रात्मक व्यवस्था को अपनाना अत्यावश्क हो गया है। ऊपर जैसा कहा गया है, व्यापक सहयोग के आधार पर ही विद्यालय संगठन की नींव रखी जानी चाहिए। आंतरिक व्यवस्था तथा सह–शैक्षणिक क्रियाशीलन में छात्र, अध्यापक तथा सामाजिक सहयोग को उचित स्थान देना आज के गणतंत्रात्मक विद्यालय–प्रबंधन के लिए आवश्यक है।

विद्यालय–प्रबंधन के मूलतत्व

विद्यालय–भवन तथा साज–सज्जा – भवन विद्यालय–प्रबंधन की प्रथम आवश्यकता है। इसके बिना विद्यालय–प्रबंधन कल्पना की बात रह जाएगी। विद्यालय–भवन का स्थान, उसकी बनावट, कक्षा का क्षेत्रफल, प्रकाश–व्यवस्था, वायु, आवागमन की व्यवस्था, उपस्कर, क्रीड़ास्थल तथा जल निकास आदि पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता हैं। शिक्षक को उक्त व्यवस्था का समुचित ज्ञान होना चाहिए।

प्राचार्य तथा अध्यापकगण – प्राचार्य विद्यालय–व्यवस्था का प्राण होता है। उसके अतिरिक्त समुचित संख्या में अध्यापकों का रहना तथा उनके कार्यों की सम्यक व्यवस्था भी अत्यावश्यक है।

छात्रों का वर्गीकरण – बच्चों का वर्गीकरण अत्यन्त ही महत्वपूर्ण तत्व है। किस वर्ग में कितने और कौन–कौन से बच्चे रखे जाएँ – यह सुव्यवस्था के लिए जरूरी है।

नामांकन तथा आवश्यक पत्र – छात्रों का नामांकन सुव्यवस्थित ढंग से होना जरूरी है। इस सम्बन्ध के सभी कागज–पत्र स्पष्ट और ठीक हों। अन्य कागज–पत्र जैसे आय–व्यय बही, उपस्थिति–पुस्तिका आदि को सुव्यवस्थित ढंग से रखना आवश्यक है। कार्यालय के अन्य कागज–पत्रों की सुव्यवस्था ध्यातव्य है।

स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा – बच्चों के लिए स्वास्थ्य एवं शरीरिक शिक्षा की व्यवस्था आज बहुत जरूरी है। स्वास्थ्य–जाँच का प्रबंध आधुनिक विद्यालय का एक आवश्यक अंग होना चाहिए।

मार्गदर्शन – आज के युग में मार्गदर्शन अथवा दिशा–निर्देश को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विद्यार्थियों में योग्य एवं प्रशिक्षण मनोविज्ञान–वेत्ता शिक्षक के द्वारा यह कार्य प्रभावकारी ढंग से हो सकता है। विषय के चुनाव, वर्ग व्यवस्था आदि में इससे बड़ी सहायता प्राप्त होती है।

समय एवं विषय का विभाजन – समय तथा विषयों के विभाजन के बिना विद्यालय में भगदड़ मच जाएगी। अराजकता से बचाने एवं व्यवस्थित कार्य–संचालन के लिए समय–तालिका का होना आवश्यक ही नहीं, शिक्षक का अपने समय, वर्ग तथा विषय का निश्चित ज्ञान रहता है और छात्र भी विषय तथा उसके लिए निर्धारित समय एवं शिक्षक से अवगत रहते हैं।

परीक्षा एवं उत्तीर्णता – विद्यालय–प्रबंधन का बहुत ही प्रमुख स्थान है। छात्रों की उपलब्धियों के मूल्यांकन का यह एक प्रचलित तरीका है। अतः इसका संचालन एवं प्रबंध बड़ा ही महत्व रखता है। इसके साथ ही परीक्षार्थियों की उत्तीर्णता को घोषित करने का कार्य भी कठिन और महत्वपूर्ण है। प्रधानाध्यापक तथा शिक्षकों का इस कार्य में दक्ष होना आवश्यक है।

शैक्षणिक तथा सह–शैक्षणिक क्रियाशीलन–शैक्षणिक विषयों के अध्यापन के लिए एक निश्चित योजना एवं समय–तालिका आवश्यक है। इसके साथ ही सहशैक्षणिक क्रियाशीलनों का आयोजन चरित्र–निर्माण एवं सृजनात्मक अनुशासन के लिए प्राण है। इन क्रियाशीलनों में शिक्षक का साथ रहना उपादेय है।

छात्रावास की देखरेख – छात्रावासों की भोजन–व्यवस्था तथा आवास–व्यवस्था की देखरेख प्रधानध्यापक तथा छात्रावास अधीक्षक द्वारा सुचारू रूप से होना जरूरी है।

कुशाग्र–बुद्धि तथा निर्धन छात्रों की सहायता – कई छात्र बड़े ही कुशाग्र–बुद्धि तथा मेधावी होते हैं, किन्तु निर्धनता के कारण शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हो जाते हैं। ऐसे छात्रों की सहायता भी संगठन का मूल्यवान तत्व है।

अनुशासन की व्यवस्था – छात्रों के विभिन्न क्रियाशीलनों का संचालन कर तथा उसमें सक्रिय भाग लेकर शिक्षक सुन्दर ढंग से अनुशासन को रख सकते हैं। विद्यालय–व्यवस्था में छात्रों का सक्रिय सहयोग लेकर भी इस दिशा में काफी सफलता प्राप्त की जा सकती है।

विद्यालय एवं समाज का सम्बन्ध – वर्तमान युग में यह बहुत ही प्रधान तत्व हो गया है। विद्यालय के सांस्कृतिक आयोजनों में समाज के लोगों को निमन्त्रित कर तथा समाज–सेवा के कार्यक्रमों को अपनाकर विद्यालय एवं समाज के सम्बन्ध को अत्याधिक मजबूत बनया जा सकता है।

विद्यालय–प्रबंधन की आवश्यकता

विद्यालय प्रबंध के बिना विद्यालय का सुचारू और कुशल संचालन असम्भव है। यह न केवल प्रभावशाली साधन है बल्कि अतिआवश्यक भी है। विद्यालय की आंतरिक और बाह्य व्यवस्थाओं दोनों के लिए यह जरूरी है। अपने कर्त्तव्य एवं कार्य–सहयोगियों के प्रति हमारी क्या भावना है, इसी में विद्यालय–प्रबंधन का मूल निहित है। हमें अपने कार्यों के उद्देश्य तथा अपने छात्रों के प्रति हित–भावना को ही प्रधानता देनी है। सच तो यह है कि विद्यालय संगठन का मुख्य उद्देश्य बच्चों का समुचित विकास है और वह सभी प्रकार से इसमें सहायक होता है, न कि बाधक। संगठन की श्रेष्ठता इसमें है कि प्रत्येक छात्र की अन्य छात्रों के साथ–साथ विकसित होने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो तथा प्रत्येक छात्र अपने विद्यालय–समाज को अपनी उपलब्धियों से सम्पन्न एवं समृद्ध करने को उत्सुक हो। हाँ, यह सत्य है कि कुछ छात्रों की देन अन्य छात्रों से कम अथवा अधिक होगी।

विद्यालय प्रबंध की आवश्यकता अहम् है। इसके बिना समस्त विद्यालय–जीवन अराजकता और भाग–दौड़ का अखाड़ा बन जाएगा। पवित्र उद्देश्य इसी अराजकता की धारा में डूब जाएँगे। इतना ही नहीं; तब विद्यालय और समाज में कोई अंतर न रह जाएगा। तो, यह कहा जा सकता है कि विद्यालय के कार्यो के व्यवस्थित संचालन, शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति, बच्चों के व्यक्तित्व के समग्र विकास तथा गणंतत्रात्मक नागरिकता के निर्माण के लिए विद्यालय प्रबंधन (संगठन) अत्यावश्यक हैं हाँ, इतना ध्यान रखना होगा कि विद्यालय प्रबंधन साधन है, साध्य नहीं; सेवक है, स्वामी नहीं। जहाँ यह साध्य तथा स्वामी के रूप में प्रतिष्ठित होगा, वहाँ शिक्षा की मौत हो जाएगी।

विद्यालय–प्रबंधन के उद्देश्य

विद्यालय तथा समाज का अन्तर्सबंध – विद्यालय का समाज से अत्यंत निकट का सम्बन्ध है। आधुनिक विचारधारा के अनुसार तो विद्यालय एक सामुदायिक केन्द्र ही है। हमें यह ज्ञात है कि शिक्षा जीवन से अलग की वस्तु नहीं, सच्ची शिक्षा तो जीवन–निष्ठा है। यह धारणा सर्वथा गलत है कि विद्यालयों की शिक्षा मात्र शिक्षकों का कार्य है। वस्तुतः शिक्षा–प्रक्रिया तो समस्त समाज का उत्तरदायित्व है।

विद्यालय जीवन की व्यवस्था – सर्वप्रथम विद्यालय को एक सहकारी समाज का रूप लेना है। इसमें विद्यालय के प्रधानध्यापक (प्राचार्य) तथा शिक्षक, शिक्षक तथा शिक्षक, शिक्षक तथा छात्र, छात्र तथा छात्र और विद्यालय परिवार तथा समाज के बीच सहयोग की व्यवस्था का स्थान सर्वोपरि हैं। विद्यालय–प्रबंध तो विद्यालय–समाज के सुचारू एवं सद्भावनापूर्ण संचालन का एक निमित मात्र है। सामुदायिक जीवन पर आधारित विद्यालय बच्चों के लिए उत्तम प्रशिक्षण–केन्द्र होता है। यदि छात्र विद्यालय–समाज में सहयोगी सदस्य के रूप में नहीं रह सकता, तब वह विस्तश्त समाज में ऐसा कैसा रह सकता है? अतः विद्यालय–प्रबंध का प्रथम उद्देश्य है विद्यालय सहयोगी जीवन की व्यवस्था करना।

सहशैक्षणिक क्रियाशीलन – पाठशाला प्रबंधन के प्रमुख कार्यो में से एक है छात्रों को जीवन कला का प्रशिक्षण प्रदान करना। इसके अर्न्तगत आदतों एवं सामाजिक व्यवहारों के प्रशिक्षण से लेकर धैर्य, सुन्दर मनःस्थिति, ईमानदारी, बंधुत्व भावना, सहयोगिता एवं अनुशासन जैसे गुणों के विकास–कार्य भी सन्निहित हैं। इन सभी मानवोचित उत्तम गुणों का बच्चों में विकास विद्यालय में समाविष्ट विभिन्न सहशैक्षणिक क्रियाशीलनों द्वारा ही सम्भव हैं अतः विद्यालयों में सहशैक्षणिक क्रियाशीलनों को निश्चित एवं वास्तविक स्थान देना अत्यावश्यक है। इन क्रियाशीलनों में सामूहिक खेल, व्यायाम, स्काउटिंग, एन.सी.सी., ए.सी.सी., सांस्कशतिक कार्यक्रम, समाज–सेवा आदि का स्थान बहुत ऊँचा है।

विद्यालय पाठ्यक्रम – उपयुक्त पाठ्यक्रम के द्वारा ही विद्यालय–प्रबंधन के सबसे प्रमुख उद्देश्य की पूर्ति होती है। सुन्दर परम्पराओं का अनुसरण तथा सामाजिक आदर्शो का निर्माण दो प्रमुख उद्देश्य हमारे सामने आते हैं। इनके अतिरिक्त यह सोचनीय स्थिति है कि हमारे ग्राम–गीत, धर्म, संगीत तथा कला को विद्यालयों में कोई स्थान प्राप्त नहीं है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि विद्यालय न केवल समाज का दर्पण है, बल्कि यह उसका समीक्षक आलोचक भी है। अतः वह समय आ गया है कि पाठ्यक्रम को भारतीय संस्कृति के अनुरूप ढाला जाए। समस्त भावी पाठ्यक्रम–योजना के निर्माण में शिक्षण का सहयोग अत्यावश्यक है।

समानता का प्रशिक्षण – देश के संविधान में प्रत्येक नागरिक को समानता का अधिकार है। यह समानता अस्तित्व एवं अवसर दोनों की है। रंग, जाति, धर्म, आदि का ख्याल किए बिना सभी छात्रों को विद्यालय में समान स्थान प्राप्त कराना विद्यालय–प्रबंध का प्रथम उद्देश्य है। इतना ही नहीं, सबको शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर प्रदान करना भी उतना ही महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

छात्रों को स्वशासन की शिक्षा – विद्यालय ही वह प्रारम्भिक स्थल है जहाँ मानव–शिशु को भावी जीवन की शिक्षा दी जाती है। वस्तुतः जैसा समाज चाहता है, वैसे नागरिक का निर्माण विद्यालयों में ही होता है। सामाजिक जीवन का व्यावहारिक ज्ञान विद्यालयों में प्रारंभिक रूप से प्रदान किया जाता है और आज तो हम जानते हैं कि हमारा देश एक विशाल गणतन्त्र है। अतः हमारे समाज को भी गणतांत्रिक पद्धति पर संगठित होना है और यह तभी सफल हो सकता है जब समाज का प्रत्येक नागरिक गणतांत्रिक पद्धतियों में न केवल विश्वास रखता हो, बल्कि व्यावहारिक रूप से भी जीवन में उन्हें उतार चुका हो। गणतंत्र शासन की सारी सफलता व्यवहारकुशल एवं उपयोगी नागरिकता पर निर्भर करती है। अतः आज विद्यालयों में संगठन (प्रबंध) का सर्वोपरि उद्देश्य हो जाता है कि छात्रों को व्यावहारिक रूप से स्वशासन की शिक्षा दी जाए। विद्यालयों में छात्र–संसद, छात्र–मंत्रिमण्डल तथा सहयोग–भंडार आदि की स्थापना के कार्य इसी दिशा में उठाए गए कदम हैं। आज विद्यालय–प्रबंध के उद्देश्यों में इनका स्थान अत्याधिक महत्वपूर्ण है।

विद्यालय–प्रबंधन के सिद्धान्त

विद्यालय संगठन (प्रबंध) के सुचारू एवं सुनिश्चित क्रियान्वयन के लिए निम्नांकित सिद्धांतो पर ध्यान देना अत्यावश्यक प्रतीत होता है –

(1) छात्रों के व्यक्तित्व का समग्र विकास – यह प्रबंधन एवं प्रशासन का सबसे प्रमुख सिद्धान्त हैं। वस्तुतः विद्यालय का प्रबंध तभी सार्थक होगा जब वहाँ के छात्रों का शरीरिक, बौद्धिक तथा चारित्रिक विकास समग्र रूप से होगा। सुन्दर प्रबंधन में बच्चों की आंतरिक शक्तियों को विकास का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाता है। वहाँ उनकी शारीरिक शक्ति के विकास के लिए भी विभिन्न क्रियाशीलन के प्रबंध किए जाते हैं। इतना ही नहीं, सुन्दर चारित्रिक गठन के भी उत्प्रेरक आदर्श तथा वातावरण प्रस्तुत किए जाते हैं।

(2) सहयोग एवं सद्भावना का आधार– सहयोग एवं सद्भावना गणतंत्र का मूल आधार है। अतः आज विद्यालय–प्रबंधन का आधार सहयोग एवं सद्भावना पर ही रखा जाना चाहिए। यह सहयोग प्राचार्य–अध्यापक, अध्यापक–छात्र, छात्र–छात्र तथा अध्यापक–अभिभावक में हो। सहयोग तथा सद्भावना के आधार पर ही प्रजातांत्रिक विद्यालय–प्रबंधन महल खड़ा हो सकता है।

(3) सामूहिक उत्तरदायित्व – भारत अब स्वतन्त्र और सार्वभौम गणतंत्र है। अतः इसके विद्यालयों की नींव भी गणतांत्रिक सिद्धांतों एवं व्यवहारों पर डाली जानी चाहिए। वस्तुतः गणतंत्र की बुनियाद विद्यालयों में ही डाली जाती है और यह भी ज्ञातव्य है कि गणतंत्र में सामूहिक उत्तरदायित्व को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अतः विद्यालयों में गणतांत्रिक भावना को व्यावहारिक रूप प्रदान करने हेतु समाज का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। यहाँ सामूहिक दायित्व का अर्थ है– 'अध्यापक, अभिभावक तथा शासन तीनों द्वारा सामूहिक रूप से विद्यालय के प्रबंधन एवं संचालन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना। अब तो छात्रों को भी सामूहिक उत्तरदायित्व का एक अंग समझना चाहिए।

(4) स्पष्टता तथा सुव्यवस्था – जैसे भाषा की अस्पष्टता एवं वाक्य–विचार में शब्दों की अव्यवस्था उनकी अर्थप्रेषणीयता को विनष्ट कर देती है, उसी प्रकार विद्यालय–प्रबंधन में स्पष्टता तथा सुव्यवस्था का अभाव विद्यालय को अराजकता के गर्त में डाल देता है। अतः स्पष्टता एवं सुव्यवस्था लाने के लिए प्रबंधन के सभी अंग–पाठ्यक्रम, अध्यापन, परीक्षा तथा अनुशासन आदि–का आपस में निश्चित और स्पष्ट संबंध जरूरी है।

(5) लोच, अनुकूलता तथा स्थिरता – विद्यालय–प्रबंधन सुग्राह्य एवं जीवंत बनाने के लिए उसमें लोच, अनुकूलता तथा स्थिरता तीनों ही तत्वों का समावेश होना अत्यावश्यक है। सर्वप्रथम हमें यह देखना है कि विद्यालय की व्यवस्था एवं संगठन कठोर और अपरिवर्तनशील तो नहीं है। यदि ऐसा हुआ तो विद्यालय–प्रबंधन

के समस्त उद्देश्य ही धूल में मिल जाएँगे। समाज की मान्यताएँ, परिस्थितियाँ तथा आवश्यकताएँ परिवर्तित होते रहती हैं और इसीलिए विद्यालय–प्रबंधन को भी गतिशील एवं लोचदार होना चाहिए जिससे उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किए जा सकें। इससे नये तथा उपयोगी प्रयोग किए जाने की गुंजाइश बनी रहती है। इतना ही क्यों–परम्परागत तथा निष्प्राण रूढ़ियों से विद्यालय–प्रबंधन को बचाने के लिए भी उसका लोचदार होना जरूरी है। यहाँ यह भी स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि लोचदार व्यवस्था को स्थिर और अनुकूल भी होना आवश्क है। यद्यपि ये बातें विरोधी लगती हैं फिर भी ध्यानपूर्वक देखा जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि आवश्यकता के अनुकूल परिवर्तनशीलता ही प्रबंधन को स्थिरता प्रदान करती है। इसके अभाव में प्रबंधन मृत हो जा सकता है। हाँ परिवर्तन प्रगतिशीलता और आगे बढ़ाने वाले हैं।

(6) मानवीय आधार – पुराने जमाने में विद्यालय–प्रबंधन का अर्थ लौह–दण्ड का शासन–प्रबंधन माना जाता था। यह प्रबंधन यंत्रवत् था। निर्जीव यंत्र के सदृश उसमें स्वयं गति अथवा विकास करने की क्षमता न थी। प्रबंधन में पहलकदमी का अभाव होता है।

हमें यह ध्यान रखना होगा कि विद्यालय के दो आवश्यक अंग–अध्यापक तथा छात्र–सप्राण एवं भावनायुक्त हों। उनके साथ यंत्रवत् नहीं, मानवीय व्यवहार अपेक्षित है। उनकी शक्ति की भी कोई सीमा होती है, उनकी भी रूचि–अरूचि होती है तथा उनके भी अभाव–दुख होते हैं। अतः विद्यालय– प्रबंधन में इनका ध्यान रखना श्रेयस्कर है। छात्रों और अध्यापकों को समुचित स्वतन्त्रता प्रदान की जाए तथ उनकी रूचि–अरूचि एवं शक्ति सीमा का ध्यान रखा जाए। अध्यापकों की आवश्यकताओं एवं अभावों का ध्यान रखना भी प्रबंधन की सप्राणता के लिए अत्यन्त जरूरी है। उक्त मानवीय आधारों पर ही प्रभावकारी एवं सफल विद्यालय–प्रबंधन का विकास हो सकता है।

(7) विचार–विनिमय का आधार – यह गणतंत्र में सबसे सुन्दर एवं आधुनिकतम पद्धति है। इसमें प्रधानध्यापक, अध्यापक तथा छात्र मिलकर अपने कार्यो का लेखा–जोखा करते हैं। इससे पारस्परिक भ्रम भी दूर होता है। इससे आपसी अविश्वास की भी जड़ कट जाती है। इससे गणतांत्रिक जीवन की नींव ठोस और दृढ़ होती है।

(8) संगठन एवं प्रबंधन साधन मात्र साधन – विद्यालय–प्रबंध एवं प्रबंधन शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति में मात्र एक सहायक साधन मात्र हैं। इन्हें उद्देश्य मान लेना भारी भूल होगी। वस्तुतः शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में यह सहायक है। प्रबंधन को ही उद्देश्य मान लेना सैनिक प्रशासन स्वीकार कर लेने जैसा है। ऐसी अवस्था में नियम और बाह्य रंग–ढंग ही महत्वपूर्ण हो जाते हैं। आंतरिक रूप से विकास की क्रिया मर जाती है। इतना ही क्यों–सारा अध्यापन कार्य ही नीरस और निष्प्राण हो जाता है। विद्यालय– प्रबंधन को ही सब कुछ मानकर नहीं चलना चाहिए। उसे शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति का सहायक साधन मात्र समझना चाहिए।

(9) स्वशासन का अवसर – विद्यालयों को सुव्यवस्थित तथा जीवंत बनाने के लिए उनके आंतरिक प्रबंधन में स्वशासन को स्थान प्रदान करना आवश्यक है। विद्यालय में छात्र–संसद, छात्र–मंत्रिमण्डल, छात्र–सहयोगी भंडार आदि के संगठन गणतांत्रिक आधार पर किए जाएँ। इससे छात्रों एवं अध्यापकों को गणतांत्रिक पद्धतियों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है, आपसी सहयोग की भावना बलवती होती है तथा छात्रों में नेतृत्व के गुणों का विकास होता है। उसमें उत्तरदायित्व के गुणों का भी समावेश होता है।

(10) अभिभावक तथा समाज का सहयोग – आज अभिभावक तथा समाज दोनों ही विद्यालय के जीवन से बहूत दूर फेंक दिए गए हैं। वे विद्यालय– प्रबंधन से सर्वथा अनभिज्ञ और उदासीन हैं। अतः छात्रों में अनुशासन बनाए रखने के लिए, विद्यालय–प्रबंध को शक्तिशाली बनाने के लिए तथा विद्यालय–जीवन को

गणतंत्रात्मक स्वरूप प्रदान करने के लिए अभिभावक एवं समाज का सहयोग लेना आवश्यक है। इस प्रकार विद्यालयों का सही अर्थ में समाजीकरण भी सम्भव हो सकेगा।

(11) भौतिक तत्वों का प्रभावकारी प्रयोग – विद्यालय–प्रबंधन के प्रमुख भौतिक तत्व निम्नांकित हैं– (1) भवन, (2) पुस्तकालय, (3) खेल का मैदान, (4) उपस्कर, (5) सहायक उपकरण, (6) कोष आदि।

उनके उचित प्रयोग की व्यवस्था भी विद्यालय– प्रबंधन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। विद्यालय की समय–तालिका का निर्माण इस प्रकार हो कि उक्त सभी भौतिक साधनों का उपयोग समुचित ढंग से हो सके। इनका लाभ उठाना छात्रों के लिए अत्यन्त ही उपादेय है। प्रबंधन समिति इनकी उपलब्धि एवं व्यवस्था पर पूर्ण ध्यान दे तथा प्रधानध्यापक एवं अध्यापकगण भी इनके समुचित उपयोग पर पूर्ण ध्यान दें। तभी संगठन में जीवन एवं सार्थकता का समावेश हो सकेगा।

(12) स्वास्थ्य तथा चरित्र–निर्माण – विद्यालय में छात्रों की स्वास्थ्य–वृद्धि पर पूर्ण रूप से ध्यान देना जरूरी है। स्वस्थ नागरिक ही राष्ट्र और विश्व के सच्चे प्रहरी और नेता हो सकते हैं। साथ ही, चरित्र–निर्माण का कार्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है। इसके अभाव मे मनुष्य शरीर से बलवान होते हुए भी पशु ही रह जाता है।

सुप्रबंधन सच्चरित्रता को जन्म देता है। अतः विद्यालय में शारीरिक स्वास्थ्य के लिए जहाँ खेल–कूद, व्यायाम आदि की व्यवस्था आदि की व्यवस्था हो, वहीं चरित्र–निर्माण के लिए भी सुन्दर एवं प्रभावकारी आयोजन किए जाएँ। इसके लिए महापुरूषों की जयंतियों, उनकी जीवन–चर्या पर विचार–गोष्ठी तथा सुन्दर त्यागमय कार्यों के लिए पुरस्कार–योजना की व्यवस्था विद्यालाय में हो। विद्यालय में अनैतिक तत्वों के प्रवेश को रोकने का उपाय करना भी आवश्यक है। सतर्कता एवं सप्रबंधन इस दिशा में पर्याप्त सहायक हो सकते हैं।

(13) योग्यता एवं क्षमता के अनुरूप कार्य–वितरण – शिक्षकों में या प्रत्येक व्यक्ति में अलग–अलग योग्यता एवं रूझान का होता है। शैक्षिक योग्यता की दृष्टि से भी प्रत्येक की क्षमता एवं दक्षता भिन्न होती है। कोई शिक्षक विज्ञान का स्नातक है तो कोई कला का विज्ञान तथा कला में भी अलग–अलग विषयों में उन्हें विशिष्टता प्राप्त होती है। सुन्दर और सफल विद्यालय–प्रबंधन के लिए शिक्षकों में उनकी शैक्षणिक एवं शारीरिकि योग्यता तथा क्षमता के अनुरूप कार्य–वितरण होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। इससे शिक्षक भी अपने कार्य में रूचि लेते हैं, कार्य–प्रगति भी सुंदर होती है तथा कार्य करने वाले को आंतरिक संतुष्टि भी होती है।

(14) सम्पूर्ण विद्यालय के हित की दृष्टि से निर्णय – विद्यालय प्रबंधन की सफलता इस बात पर बहुत अंशों में निर्भर करती है कि वहाँ सम्पूर्ण विद्यालय के हित की दृष्टि से किसी बात पर निर्णय लिया जाता है। व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा किसी एक दिशा को ध्यान में रखकर विद्यालय के कार्यों के कारण बड़ी–बड़ी हानियाँ होती हैं। यदि किसी प्रिय छात्र ने कोई अनुशासनहीनता का कार्य किया है और उसके विद्यालय में बने रहने से सभी छात्रों पर बुरा असर पड़ने वाला है तो अपने सम्बन्धों का ख्याल किए बिना ही उस छात्र को विद्यालय से हटा देना श्रेयस्कर होगा। इससे विद्यालय–प्रबंधन सुदृढ़ और प्रभावकारी होगा।

(15) शैक्षणिक एवं कार्यानुकूल वातावरण – आज विद्यालय–प्रबंधन की सबसे बड़ी कमजोरी उसमें शैक्षणिक तथा कार्यानुकूल वातावरण का सर्वथा अभाव है। छात्र और शिक्षक इस वातावरण के अभाव में निम्नस्तरीय राजनीति में संलग्न रहते हैं। इसके लिए विद्यालय की प्रबंधन समिति में शिक्षा–प्रेमी एवं विद्वान व्यक्तियों का रहना आवश्यक है। इतना ही नहीं, योग्य, अध्ययनशील, संवेदनशील तथा सच्चरित्र शिक्षकों का होना भी उतना ही जरूरी है। इसके अतिरिक्त सम्पन्न एवं सुव्यवस्थित पुस्तकालय भी इस दिशा में अत्याधिक सहायक होते हैं।

(16) आशावादी तथा रचनात्मक नैतिक स्तर – सामान्यतः आज देखा जाता है कि विद्यालय के प्रबंधकों एवं शिक्षकों में आशावादी दृष्टिकोण का अभाव है। प्रायः सभी में निराशावादी और उत्साहहीन भावना का समावेश हो गया है। इसके कारण विद्यालय–प्रबंधन में प्राण और उत्साह लेशमात्र भी देखने को नहीं मिलता। अतः विद्यालय–प्रबंधन की सफलता तथा सुदृढ़ता के लिए विद्यालय–प्रबंधकों एवं शिक्षकों में आशावादी तथा रचनात्मक नैतिक स्तर का प्राबल्य होना अरिवार्य है।

(17) निर्दोष विद्यालय शिक्षाक्रम – यह विद्यालय प्रबंधन का बहुत बड़ा अंग है। इसके ढीला–ढाला एवं दोषपूर्ण होने से बड़ा ही घातक फल होता है। शिक्षाक्रम यदि बोझिल, अनुपयुक्त, अमानवीय है तो विद्यालय का प्रबंधन सुन्दर हो ही नहीं सकता। आज के प्रबंधन की अशांति एवं अव्यवस्था वर्तमान पाठ्यक्रम के दोषपूर्ण होने के कारण भी है। अतः विद्यालय–शिक्षाक्रम का प्रगतिशील एवं दोषमुक्त होना आवश्यक है।

कक्षा प्रबन्धन के लिए आवश्यक बातें

वर्तमान समय में काम करते समय अध्यापक को कुछ ध्येय अपने सम्मुख रखने पड़ते हैं। उनको प्रयत्न करना होता है, जिससे छात्रों को कुछ विषयों का बोध हो जाए और साथ ही उनको चित्रकारी, सुलेख आदि कलाओं का भी अभ्यास हो जाए। ये काम उनको इस तरह करने होते हैं कि बालकों में उक्त विषय सम्बन्धी अधिक ज्ञान प्राप्त करने की रूचि उत्पन्न हो जाये और उनको अपने ज्ञान के विस्तार करने की युक्ति भी मालूम हो जाए । उसे बालकों की बौद्धिक शक्तियों के विकास की ओर भी ध्यान देना होता है। इसलिए उनको हर विषय इस प्रकार पढ़ाना होता है कि उन विषयों का बोध प्राप्त करते समय बालक अपनी विचार–शक्ति, कल्पना, निर्णय, निरीक्षण और अन्य शक्तियाँ सुदृढ़ होती जाए। उसको कक्षा में छात्रों को इस प्रकार बैठाना होता है कि उनकी शारीरिक उन्नति में किसी तरह भी बाधा न पहुँचे। इसी प्रकार उसको इस ओर भी ध्यान देना होता है कि छात्रों में कोई भी बुरी आदत उत्पन्न न होने पाये, जो बुरी आदतें पाठशाला में आने के पहले ही उनमें पैदा हो गई हैं, वे एक–एक करके छूट जाए और उनमें अच्छी आदतों का प्रादुर्भाव हो जाए।

जिस प्रकार बिना उचित प्रबन्धन के किसी भी पाठशाला का काम सुचारू ढंग से नहीं चल सकता, उसी तरह अच्छे प्रबन्धन के बिना किसी कक्षा का काम अच्छी रीति से नहीं चल सकता है और उपर्युक्त ध्येयों की पूर्ति भी नहीं हो सकती है। किसी कक्षा का उचित प्रबन्धन निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहता है –

1. **अध्यापक का व्यक्तित्व**
2. **कक्षा में छात्रों की परिस्थिति का अनुकूल होना –** बालक कक्षा में ध्यानपूर्वक तभी काम कर सकते हैं जब कमरे में पर्याप्त प्रकाश तथा स्वच्छ वायु हो, बालकों के बैठने के लिए उचित तथा पर्याप्त स्थान हो, चटाइयाँ, डेस्क, स्टूल अथवा कुर्सियाँ ठीक रीति से रखी गई हो, उनको बहुत समय तक एक ही प्रकार बैठने को बाध्य न किया जाए, वे इस तरह बैठाए जाए कि सब छात्र सरलता से श्यामपट, नक्शे आदि को देख सकें, अध्यापक की बातों को सुन सकें और अध्यापक भी हर छात्र को सुगमता से देख सके। हर घण्टे की अवधि छात्रों की अवस्था के अनुसार हो और समय–तालिका (टाइम टेबिल) नियमानुसार बनाया गया हो।

3. शासन – कक्षा में बालक अधिक–से–अधिक लाभ तभी प्राप्त कर सकता है जब किसी अनुचित काम को करने का अवसर ही न दिया जाए और अगर इस प्रकार की कोई घटना कक्षा में हो जाए तो उसका तुरन्त ही निवारण किया जाए।

4. उचित पाठन–विधि का प्रयोग – सुप्रबन्धन की आवश्यकता इसीलिए होती है कि कक्षा में पठन–पाठन काम उचित रीति से हो सके। यह तभी हो सकता है जब पाठ को रोचक बनाया जाए और हर विषय

को छात्रों की मानसिक अवस्था का ध्यान रखते हुए विधिपूर्वक पढ़ाया जाए ताकि जो कुछ पढ़ाया गया है, उसका शुद्ध तथा स्पष्ट बोध छात्रों को हो जाए।

अध्यापक – पाठशाला में अध्यापक की कर्तव्य परायणता पर ही शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति निर्भर है उसको इस काम में सफल बनाने के अभिप्राय से किसी भी पाठशाला का उद्देश्य तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक कि उसमें काम करने वाले अध्यापक अपने कर्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन नहीं करते।

अध्यापक के कर्तव्य – अध्यापक के कर्तव्य निम्नलिखित भागों में विभाजित किये गए हैं :–

1. **बालकों के क्षमता की वृद्धि करना** – शिक्षा विभाग की ओर से हर कक्षा के लिए विषय तथा पुस्तक नियत है। अध्यापक का यह कर्तव्य है कि नियत समय में इन विषयों का स्पष्ट ज्ञान छात्रों को करा दे और अधिक अंक प्राप्त करने की अभिरूचि उनके मन में उत्पन्न कर दें।
2. बालकों में बौद्धिक शक्तियों का सुधार करना।
3. छात्रों में जो बुरी आदतें पैदा हो गई हैं उन्हे दूर करना।
4. छात्रों को स्वास्थ संबंधी नियमों से परिचित कराना।

अध्यापक के गुण

शरीरिक गुण –

1. व्यक्तित्व का प्रभावशाली होना
2. स्वर, आँखों तथा कानों का दोष रहित होना
3. स्वच्छता प्रेमी होना

मानसिक गुण –

1. स्थान और काल के अनुसार यथाशीघ्र निर्णय लेने की शक्ति का होना।
2. पढ़ाए जा रहे विषयों, उनके पढ़ाने की विधि तथा मनोविज्ञान का आवश्यक ज्ञान होना।
3. अपने विचारों को स्पष्ट तथा प्रभावशाली रीति से प्रगट करने की योग्यता का होना।
4. नवीन पुस्तकों, समाचार पत्रों को पढ़ने एवं नवीन विधियों को जानने हेतु तत्पर होना।

इसके आलावा एक अध्यापक में आचार व्यवहार संबंधी गुणों का होना आवश्यक है जैसे छात्रों के प्रति प्रेम, सत्यनिष्ठा, दृढ़ता एवं चंचल प्रकृति के छात्रों के साथ व्यवहार की समझ होना आवश्यक है।

अभ्यास के प्रश्न

(1) सामाजिक विज्ञान में शिक्षण सामग्री को कितने भागों में बांटा जा सकता है।

(2) सामाजिक विज्ञान में मॉडल द्वारा शिक्षण कैसे सम्भव है।

(3) सामाजिक विज्ञान शिक्षण की दृष्टि से एक अच्छे मानचित्र की विशेषता बताइए।

(4) एटलस से शिक्षण के प्रमुख लाभ बताइए।

(5) दृश्य–श्रव्य सामग्री द्वारा सामाजिक विज्ञान शिक्षण कैसे सम्भव है।

(6) चलचित्र प्रयोग से शिक्षण कार्यों में होने वाले लाभ को लिखिए।

(7) अंग्रेजी शासन का भारतीय जनजीवन पर प्रभाव को कक्षा आठवीं के छात्रों को पढ़ाते समय किन–किन सामग्रियों का उपयोग करेंगे और कैसे? समझाइए।

(8) सामाजिक विज्ञान शिक्षण में कक्षा 7 वीं के छात्रों को इतिहास या भूगोल पढ़ाते समय ब्लैक बोर्ड का उपयोग आप किस प्रकार करेंगे? समझाइए।

(9) सामाजिक विज्ञान शिक्षण में दृश्य–श्रव्य सामग्री के विभिन्न उपयोगों को विस्तार पूर्वक समझाइए?

****

इकाई – 9

सामाजिक विज्ञान में मूल्यांकन

मूल्यांकन केवल शैक्षिक प्रक्रिया का ही नहीं, वरन् जीवन की प्रत्येक प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंश है। हमारे जीवन का प्रत्येक क्षेत्र मूल्यांकन की अपेक्षा करता है। मूल्यांकन के अभाव में हमारी समस्त क्रियाएँ मूल्यहीन बन सकती है। क्योंकि मूल्यांकन में सफलताओं, असफलताओं, कठिनाइयों आदि का यथेष्ट रूप से निर्धारण हो जाता है, जिसके परिणाम स्परूप हम भविष्य के लिए सतर्क हो जाते हैं। अध्ययन और अध्यापन के पश्चात् विद्यार्थी और शिक्षक दोनों यह जानना चाहते हैं कि जो कार्य पूर्ण किया गया है उसका क्या परिणाम रहा है शिक्षक अपने कार्य में कहाँ तक सफल रहा है, इसके लिए परीक्षा का आयोजन किया जाता है। आजकल परीक्षा के स्थान पर मूल्यांकन/आकलन शब्द का प्रयोग किया जा रहा है इस अध्याय में मूल्यांकन के विविध पक्षों की चर्चा करने के पश्चात सामाजिक विज्ञान व सामाजिक अध्ययन शिक्षण में मूल्यांकन के महत्व, उद्देश्य, उसके पद, प्रश्न पत्र और परीक्षण के साथ–साथ प्रयोगात्मक अंश का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

मूल्यांकन का अर्थ

मूल्यांकन से आशय मूल्य के अंकन से है। इसकी सहायता से किसी पाठ्यक्रम में निहित उद्देश्यों और मूल्यों की जाँच की जाती है। आर.के. कपूर के शब्दों में "मूल्यांकन ज्ञान को जाँचने तक ही सीमित नहीं होना चाहिए, वरन इसके द्वारा छात्रों की समझदारी, कौशल, कृतियाँ तथा रूचियों की भी जाँच की जानी चाहिए।"

मोफात "मूल्यांकन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और यह छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि की अपेक्षा अधिक है। यह व्यक्ति के विकास में अधिक रूचि रखता है। यह व्यक्ति के विकास को उसकी भावनाओं विचारों तथा क्रियाओं से सम्बन्धित वांछित व्यवहार परिवर्तनों के रूप में करता हैं।"

मूल्यांकन के उद्देश्य

1. मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जो निरंतर चलते रहती है जिससे छात्र सीखने को उन्मुख रहता है।
2. मूल्यांकन के आधार पर छात्रों के सामाजिक और ज्ञानार्जन के साथ–साथ रूचियों, कुशलताओं, व्यवहारों आदि में हुए परिवर्तनों की परख सम्भव है।
3. मूल्यांकन के आधार पर विद्यार्थी अध्ययन के तरफ अग्रसर होते हैं।
4. मूल्यांकन से अध्यापक की प्रभावशीलता का पता चलता है।
5. मूल्यांकन बहुमुखी होता है।
6. पाठ्यक्रम में सुधार लाने में भी मूल्यांकन आवश्यक है।
7. शैक्षिक मूल्यांकन शिक्षक को अपने छात्रों के व्यक्तियों के रूप में जानने में सहायता प्रदान करता है।

सामाजिक विज्ञान विषय में मूल्यांकन किन बिन्दुओं पर हो – विद्यार्थियों के किन उपलब्धियों का आकलन करें ?

1. पाठ की मुख्य बातों को याद रखना – हमें यह स्वीकार करना होगा कि शिक्षण का उद्देश्य किन्हीं निश्चित तथ्यों को याद रखना नहीं बल्कि समाज को देखने व समझने के तरीके विकसित करना है और

उसके अभ्यास देना है। इसके लिए कुछ न्यूनतम बातों को निर्धारित करना होगा जिन्हें याद रखने की अपेक्षा हो और जिन्हें याददाश्त परीक्षण वाले प्रश्नों से आंका जाए।

2. पाठ के मुख्य अवधारणाओं को समझना और उपयोग करना – सामाजिक विज्ञान में समाज के विश्लेषण के लिए अवधारणाओं को औजारों के रूप में उपयोग किया जाता है। इनकी मदद् से हम सामाजिक अनुभवों व प्रक्रियाओं का वर्गीकरण, तुलना आदि करते और विवरण देते हैं। सामाजिक विज्ञान अध्ययन का एक प्रमुख उद्देश्य है इन अवधारणाओं की सपष्ट समझ और उन्हें उपयोग करने की क्षमता का विकास करना। हर पाठ में कई अवधारणाओं का उपयोग तो करते हैं मगर कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाओं को विकसित भी करते हैं। सूचीबद्ध करके हमें उसका आकलन करना उपयोगी होगा इससे यह ज्ञात हो कि विद्यार्थी किस हद तक इन्हें समझकर उपयोग कर पाते हैं।

3. तर्क, तुलना, विश्लेषण समालोचना आदि करना – ये विश्लेष्णात्मक कुशलताएँ हैं जिनके आधार पर हम किसी सामाजिक परिस्थिति को समझते हैं, उसके कार्यकारण संबंधों पर विचार करते हैं, उसे दूसरी परिस्थितियों से तुलना करके उसकी विशेषताओं को पहचानते हैं और उसके गुण दोषों को पहचान कर विवेचना करते हैं। इसके लिए पाठों में प्रस्तुत विषयवस्तुओं के संदर्भ में विचार करने के अभ्यास दिये जा सकते हैं जिन्हें तार्किकता और वास्तविक आधारों को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थियों को विश्लेषण करना होगा।

4. मानचित्र, चित्र, तालिका रेखाचित्र आदि पढ़ना और बनाना – ये कुछ बुनियादी तरीके हैं जिनके माध्यम से सामाजिक विज्ञान की जानकारी और विश्लेषण प्रस्तुत किए जाते हैं। अतः विद्यार्थियों से अपेक्षा है कि वे इन्हें पढ़ने तथा उनके उपयोग से संबंधित कुशलताएँ हासिल करेंगे। इसके लिए प्रश्न पत्र में नक्शे, चित्र, तालिका आदि देने की आवश्यकता है।

5. किताबों की बातों को अपने अनुभवों से जोड़कर देखना – यह हमारे शिक्षण का एक प्रमुख उद्देश्य है कि जो कुछ भी हम पढ़ते हैं उसे हम अपने जीवन अनुभव से जोड़कर देखें और उसकी प्रासंगिकता को परखें या फिर अपने लिए उसके महत्व को अपने अनुभव से जाँचे पहचाने कि वह कितना भिन्न या समान है। यह जानें और उसके कारणों पर विचार करें। विद्यार्थी यह किस हद तक और कितनी गहराई से कर पाते हैं, इसे आंकने की आवश्यकता है।

6. किसी अनुच्छेद की मुख्य बातों को पढ़कर व्यक्त करना – भले ही यह एक भाषाई कौशल है मगर इसे सामाजिक विज्ञान के साहित्य के संदर्भ में विशेष रूप में विकसित करने की आवश्यकता है। इन विषयों की अभिव्यक्ति की अपनी शैली होती है जिसे समझकर उसके मुख्य कथन, उसके समर्थन में दिए गए तर्क और साक्ष्यों व उदाहरणों को पहचानना एक महत्वपूर्ण कुशलता है। इसके लिए लगातार पाठ के विषयवस्तु को अपने शब्दों में दोहराना, और उसके विभिन्न पक्षों को अलग करके बताना, तथा एक विस्तृत विवरण के निष्कर्ष को संक्षेप में कहना इन कुशलताओं का आकलन किया जाना चाहिए।

7. विषयवस्तु को अपने शब्दों में तथा अपनी प्रादेशिक या मातृभाषा में व्यक्त करना – यह एक कुशलता है जिसकी मदद से विद्यार्थी पाठ के विषयवस्तु को आत्मसात कर सकते हैं। उस पर मुक्तरूप से विचार कर पाते हैं। अपनी बात को व्यक्त कर पाते हैं।

8. विषयवस्तु को नाटक, पोस्टर, चित्र आदि के माध्यम से व्यक्त करना।

9. नये ज्ञान का सृजन करना – रचनावादी शिक्षण में निहित है कि विद्यार्थी सतत् खुद अपने ज्ञान का सृजन करते हैं। इसी प्रक्रिया को और पुख्ता बनाने में सामाजिक विज्ञान शिक्षण मददगार हो सकता है। विद्यार्थियों से अपेक्षा है कि वे पाठ्यक्रम के किसी विषय के संदर्भ में खुद से जानकारी खोजें, उसे जाँचें परखें

और उनके आधार पर कुछ निष्कर्ष पर पहुँचें। उसे व्यवस्थित प्रस्तुत करें और एक–दूसरे की प्रस्तुती की समीक्षा करें। इस हेतु शिक्षक उन्हें अवसर प्रदान करे।

10. स्वतंत्र चिंतन और अभिव्यक्ति – पाठ्यपुस्तक से हटकर किन्तु उससे संबंधित विचार/कल्पना का विश्लेषण करना।

मूल्यांकन के क्षेत्र एवं प्रकार –

1. संज्ञानात्मक क्षेत्र (Scholastic Area) - इसके अंतर्गत प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर पढ़ाए जाने वाले विषयों का मूल्यांकन किया जाता है जो बच्चों के मानसिक विकास में मद्द करते हैं। इन क्षेत्रों का मूल्यांकन फारमेटिव एवं समेटिव दोनों प्रकार से किया जाता है।

2. सह–संज्ञानात्मक क्षेत्र (Co-Scholastic Area) - इस क्षेत्र के अंतर्गत सह–शैक्षिक अर्थात् खेलकूद, योगा, साहित्यिक, सांस्कृतिक गतिविधियों आदि को शामिल किया जाता है, जिसके माध्यम से बच्चों का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक एवं संवेगात्मक विकास होता है। इसके अन्तर्गत मूल्यांकन के क्षेत्र को निम्नांकित वर्गों में विभाजित कर बच्चों का मूल्यांकन किया जाता है।

सह संज्ञानात्मक क्षेत्र		
(अ) सह–शैक्षिक	**(ब) व्यक्तिगत एवं सामाजिक गुण**	**(स) शारीरिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य**
1. साहित्यिक 2. सांस्कृतिक 3. सृजनात्मक 4. खेलकूद, योगा 5. स्काउट–गाइड, रेडक्रास	1. नियमितता 2. समयबद्धता 3.स्वच्छता 4. अनुशासन/कर्तव्यनिष्ठा 5. सहयोग की भावना 6. नेतृत्व की क्षमता 7. अभिवृत्ति	वर्ष में एक बार प्रत्येक बच्चे का शासकीय चिकित्सक द्वारा शारीरिक जाँच कराना, ऊँचाई और वजन, देखना, दिव्यांग बच्चों के स्वास्थ्य और सुविधा की व्यवस्था।

सामाजिक विज्ञान में मूल्यांकन व्यवस्था

सामाजिक विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों के अनुरूप उसकी मूल्यांकन प्रणाली होनी चाहिए। मूल्यांकन के उद्देश्य केवल विद्यार्थियों को नंबर देकर उत्तीर्ण या अनुतीर्ण घोषित करना नहीं है बल्कि विद्यार्थियों को बेहतर सीखने में मदद करना है। मूल्यांकन के निम्नलिखित उद्देश्य आमतौर पर माने जाते है –

1. विद्यार्थी कितना सीख पाये हैं यह आकलन करने के लिए ताकि उसके आधार पर आगे की शिक्षण के तरीके तय किए जाएँ। (शिक्षण के लिए फीडबैक)।
2. विद्यार्थी को खुद जानने के लिए कि वह क्या सीख गया और उसे आगे क्या प्रयास करना है। (विद्यार्थी के लिए फीडबैक)।
3. विद्यार्थियों के प्रयासों व उपलब्धियों को सराहने और संतुष्टि जताने कि लिए। (एप्रिसिएशन)

4. समुदाय को बताने के लिए कि शिक्षक विद्यार्थियों को कितना सिखा पाए (शिक्षक और स्कूल की जवाबदेही)
5. विद्यार्थियों के स्तरीकरण के लिए – कौन बेहतर है और कौन कमतर है। (ग्रेडिंग)
6. क्या विद्यार्थी ने उस पाठ्यक्रम के ज्ञान, कौशल और मनोदशा को प्राप्त किया या नहीं यह घोषणा करने के लिए। (सर्टिफिकेशन)

उपर्युक्त अंश में हमने मूल्यांकन के उद्देश्यों तथा मूल्यांकन के बिन्दुओं पर चर्चा की। यह मूल्यांकन हम कैसे करें – उदा.

शुरू में मूल्यांकन के उद्देश्य बताये गए हैं उनमें से कई ऐसे हैं जिन्हें शिक्षक कक्षा शिक्षण के दौरान अनायास ही कर सकते हैं। कुछ ऐसे उद्देश्य हैं जिन्हे औपचारिक तरीको से करके दस्तावेजीकरण करना जरूरी है – इनमें भी कुछ बातें ऐसी है जिन्हें दो या तीन घंटे की परीक्षा द्वारा किया जा सकता है और कुछ लंबे समय के क्रियाकलापों द्वारा यहाँ हम इन तीन तरह के मूल्यांकन प्रक्रियाओं की चर्चा करेंगे।

मूल्यांकन के प्रकार –

1. कक्षा में लगातार चलने वाली मूल्यांकन गतिविधियाँ – इन गतिविधियाँ को इकाई के शिक्षण के साथ जोड़ा जा सकता है। इकाई शिक्षण के दौरान या उसके अन्त में। ये अनौपचारिक होंगे और इनमें नंबर या ग्रेड देने की आवश्यकता नहीं है न ही किसी प्रकार के दस्तावेजीकरण करने का, इनका मुख्य उद्देश्य यह देखना होगा कि विद्यार्थी विषय की मुख्य बातों को समझ गए या नहीं, विद्याार्थियों के प्रयासों को सराहना, उनका हौसला बढ़ाना, उन्हें फीडबैक देना और उनके अध्ययन को सुदृढ़ करने में मदद करना। मूल्यांकन के कई तरीके जो औपचारिक परिक्षाओं में नहीं हो सकते हैं, उन्हें यहाँ जगह दी जा सकती है, जैसे सामूहिक गतिविधि, स्व–आकलन, आपसी आकलन, मौखिक कार्य, पुस्तकालय या इंटरनेट का उपयोग आदि। वास्तव में ये मूल्यांकन के साथ–साथ सार्थक शैक्षणिक गतिविधियाँ भी हैं।

2. इकाईवार मूल्यांकन गतिविधियाँ – प्रत्येक इकाई के लिए निर्धारित कालखण्ड अवधि में इनके लिए कुछ निश्चित कालखण्ड दिए जा सकते हैं। किस इकाई के साथ कौन–सी गतिविधि उपयुक्त होगी। यह शिक्षक ही तय करें।

निम्नलिखित गतिविधियों में से उपयुक्त को छांटकर प्रत्येक इकाई के समाप्ति के बाद करवाएँ –

1. लघु टेस्ट देना और आदर्श उत्तर के आधार पर विद्यार्थी स्वयं तथा दूसरे का मूल्यांकन करें।
2. उपयुक्त पाठों को छात्रों की टोलियों के प्रस्तुतीकरण के माध्यम से कराना ताकि शिक्षण के दौरान ही मूल्यांकन भी हो जाए।
3. छात्रों की टोलियों को विभिन्न कार्य देना जैसे – सर्वे, लघुनाटिका, पोस्टर, प्रदर्शनी आदि।
4. समूहों में बांटकर एक–दूसरे को अध्याय के विभिन्न अंशों पर सवाल बनाकर प्रतियोगिता आयोजित करना।
5. किन्हीं बिन्दुओं पर अतिरिक्त सामग्री (पुस्तकें, नेट, अखबार आदि) देखकर नोट्स लेकर कक्षा में प्रस्तुत करना।
6. अपनी मातृभाषा में पाठ के विभिन्न अंशों के सारांश प्रस्तुत करना और एक–दूसरे के प्रस्तुती की समीक्षा करना।
7. इस तरह की अन्य गतिविधियाँ जो बच्चों के बौद्धिक विकास में सहायक हो अपनाई जा सकती है।

3. वार्षिक मूल्यांकन गतिविधियाँ – बच्चे की क्रमोन्नति और स्तर वृद्धि हेतु प्रमाण पत्र की आवश्यकता होती है। अतः मूल्यांकन द्वारा कक्षावार या स्तरवार निर्धारित पाठ्यक्रम में उसने अपेक्षित कौशलों को प्राप्त किया अथवा नहीं आंका जाता है। इसके लिए लिखित परीक्षा का आयोजन किया जाता है। लिखित परीक्षा के लिए प्रश्नावली निर्माण करते समय शिक्षक द्वारा शिक्षण के उद्देश्य बच्चों में विविध कौशलों को प्राप्त करने के लिए प्रायुक्त विविध तरीके को ध्यान में रखा जाता है।

अभ्यास के प्रश्न

(1) मूल्यांकन से क्या तात्पर्य है।

(2) सामाजिक विज्ञान शिक्षण के दौरान मूल्यांकन के प्रमुख उदेश्य कौन–2 से होने चाहिए।

(3) मूल्यांकन के प्रमुख दो क्षेत्र कौन से है। वर्णन कीजिए।

(4) सामाजिक विज्ञान शिक्षण के समय विद्यार्थियों के मूल्यांकन का क्या आधार होना चाहिए ।

(5) सामाजिक विज्ञान शिक्षण में मूल्यांकन किन बिन्दुओं पर होना चाहिए स्वअभिमत दीजिए।

(6) किसी छात्र का मूल्यांकन करना क्यों आवश्यक है?

(7) स्वमूल्यांकन के लिए निर्धारित आधार बिन्दुओं का चयन करते हुए वर्णन कीजिए।

संदर्भ सूची –

- सामाजिक विज्ञान शिक्षण – डॉ.के.सी. वशिष्ठ
- सामाजिक विज्ञान का शिक्षण शास्त्र – डॉ. मोहन लाल आर्य, डॉ. महेन्द्र प्रसाद पाण्डे, भूपेन्द्र कौर, राजकुमारी गोला, क्रांति मोहन श्रीवास्तव
- छ.ग. में प्रचलित पाठ्यपुस्तक सामाजिक विज्ञान कक्षा – 10
- इतिहास शिक्षण – राम कुमार पचौरी
- राजनीति विज्ञान विश्वकोष– ओमप्रकाश
- राजनीति विज्ञान – एस.गुप्ता (नीलम पब्लिकेशन)
- भारतीय इतिहास 12वीं – एन.सी.ई.आर.टी.
- सामाजिक विज्ञान शिक्षण – आचार्या मंजू शर्मा
- सामाजिक अध्ययन शिक्षण – डॉ. एस.आर. शर्मा
- सामाजिक विज्ञान शिक्षण – ओ.पी.गर्ग, डॉ. संतोष शर्मा
- राजनीति विज्ञान – अपेक्स सिंह देवल, आई.ए.एस.एकेडमी
- राजनीति विज्ञान – प्रतियोगिता दर्पण
- एन.सी.ई.आर.टी. – रेडियो क्रार्यक्रम
- भारतीय अर्थव्यवस्था – रमेश सिंह
- भूगोल शिक्षण की आदर्श विधियाँ – कमलेश्वर वर्मा
- एन.सी.एफ. – 2005

****